दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय
(Centre for Distance & Online Education)
जम्मू विश्वविद्यालय
(University of Jammu)
जम्मू
(Jammu)

पाठ्य सामग्री
Study Material
M.A. (HINDI)

पाठ्यक्रम संख्या 404	**Session- 2024 Onwards**	सत्र – चतुर्थ
Course Code. 404	**Title of Course**	**Semester - IV**
Lesson No. 1 to 20	**Jansanchar Avam Anuvad**	**Unit I to IV**

पाठ्यक्रम शीर्षक
जनसंचार एवं अनुवाद

Prof. Anju Sharma
Co-ordinator
PG Hindi

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू –180006 के पास सुरक्षित है।

http:/www.distanceeducationju.in
Printed and Published on behalf of the Centre for Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, CDOE University of Jammu, Jammu.

M. A HINDI C. No. 404

Course Contributors

Dr. Puran Chand Tandon — Lesson No. 1, 2, 3, 4, 6, 8
Professor & HOD Hindi
University of Delhi

Dr. Anju Sharma — Lesson No. 5, 7, 9, 14
Professor, Department of Hindi CDOE
University of Jammu

Dr. Rajni Bala — Lesson No. 10, 11, 12
Professor & Head
Department of Hindi
University of Jammu

Dr Vandana Sharma — Lesson No. 13 to 16
Asistant Professor. Hindi
Central University Jammu

Dr. Jyoti Rani — Lesson No. 17, 18, 19, 20
Assistant Professor, GDC
Hiranagar Jammu

Course Co-ordinator
Prof. Anju Sharma
CDOE

Teacher Incharge
Dr. Pooja Sharma
CDOE

Review, Proof Reading and Content Editing

Dr. Anju Sharma,

Professor of Hindi, CDOE
UNIVERSITY OF JAMMU.

* All rights reserve. No Part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the CDOE, University of Jammu.

* The Script writer shall be responsible for the lesson / script submitted to the CDOE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility

Course Code : HIN-404 **Title : Jansanchar Avam Anuvad**
Credits : 5 **Maximum Marks : 100**
Duration of Examination : 3 Hrs. **a) Internal= 20**
b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2023, 2024 & 2025

इकाई – एक

जनसंचारः अर्थ, स्वरूप, प्रक्रिया एवं महत्व।

श्रव्य माध्यमः स्वरूप और विशेषताएँ, श्रव्य माध्यमः में भाषा की प्रकृति ।

रेडियो का विकास, रेडियो नाटक ।

दृश्य–श्रव्य माध्यम : स्वरूप और विशेषताएँ।

टी. वी. और सिनेमा का विकास।

टी. वी. और सिनेमा के लिए साहित्यिक विद्याओं के रूपान्तरण की प्रक्रिया ।

पटकथा लेखन

इकाई – दो

कंप्यूटर : परिचय, उपयोग एवं ऐतिहासिक विकास ।

इंटरनेट : परिचय, उपयोग एवं ऐतिहासिक विकास ।

इंटरनेट पोर्टल : हिन्दी के प्रमुख इंटरनेट पोर्टल ।

ई–मेल, डाउनलोडिंग और अपलोडिंग ।

इकाई – तीन

अनुवाद : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप ।

अनुवाद के क्षेत्र : साहित्यिक एवं साहित्येतर अनुवाद

अनुवाद की प्रक्रिया ।

अनुवाद : महत्व एवं सीमाएँ

इकाई – चार

पारिभाषिक शब्द : अर्थ परिभाषा स्वरूप ।

पारिभाषिक शब्द निर्माण के सिद्वान्त ।

पारिभाषिक शब्द निर्माण की समस्या ।

अनुवाद और पारिभाषिक शब्द का सम्बन्ध ।

प्रश्न कोड HIN–404 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा।

मुख्य परीक्षा (External Exam) अंक–80 समय : तीन घण्टा

(क)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार दीर्घ उतरापेक्षी प्रश्न ।	(10 x 4 = 40)
(ख)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार लघु उतरापेक्षी प्रश्न ।	(6 x 4 = 24)
(ग)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार अति लघु उतरापेक्षी प्रश्न ।	(3 x 4 = 12)
(घ)	चार वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेगें ।	(1 x 4 = 4)

....

विषय सूची

क्र.	विषय	आलेख लेखक का नाम	पृष्ठ
1.	जनसंचार अर्थ एवं स्वरूप	प्रो. पूर्ण चन्द टण्डन	01–09
2.	जन संचार की प्रक्रिया एवं महत्व	प्रो. पूर्ण चन्द टण्डन	10–15
3.	जनसंचार माध्यम	प्रो. पूर्ण चन्द टण्डन	16–30
4.	श्रव्य माध्यम स्वरुप और विशेषताएं	प्रो. पूर्ण चन्द टण्डन	31–35
5.	रेडियो का विकास एवं रेडियो नाटक	प्रो. अंजू शर्मा	36–48
6.	दृश्य–श्रव्य माध्यम	प्रो. पूर्ण चन्द टण्डन	49–57
7.	टी.वी. और सिनेमा का विकास	प्रो. अंजू शर्मा	58–65
8.	रेडियो और टी.वी सिनेमा के लिए रुपान्तरण की प्रक्रिया	प्रो. पूर्ण चन्द टण्डन	66–77
9.	पटकथा लेखन	प्रो. अंजू शर्मा	78–87
10.	कम्प्यूटर का परिचय (इतिहास)	प्रो. रजनी बाला	88–106
11.	इंटरनेट का सामान्य परिचय	प्रो. रजनी बाला	107–114
12.	हिन्दी कंप्यूटिंग	प्रो. रजनी बाला	115–124
13.	अनुवाद : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप	डॉ. वन्दना शर्मा	125–136
14.	अनुवाद के क्षेत्र–साहित्यिक और साहित्येतर अनुवाद	डॉ. वन्दना शर्मा	137–148
15.	अनुवाद प्रक्रिया	डॉ. वन्दना शर्मा	149–165
16.	अनुवाद : महत्व और सीमाएं	डॉ. वन्दना शर्मा	166–178
17.	पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ परिभाषा और स्वरूप	डॉ. ज्योति रानी	179–185
18.	पारिभाषिक शब्द निर्माण के सिद्धान्त	डॉ. ज्योति रानी	186–191
19.	पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की समस्याएँ	डॉ. ज्योति रानी	192–197
20.	अनवाद और पारिभाषिक शब्द का संबंध	डॉ. ज्योति रानी	198–206

Course Code - 404 **Lesson No. 1**

Unit-I

जनसंचार अर्थ एवं स्वरूप

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 अर्थ एवं स्वरूप

1.4 तत्व

1.5 जनसंचार के कार्य

1.6 जनसंचार की बाधाएं

1.7 राष्ट्रीय विकास में जनसंचार की भूमिका एवं सम्भावनाएं

1.8 सारांश

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.10 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

संचार समाज की मानसिक अवस्था, वैचारिक चिंतन की प्रवृति संस्कृति तथा जीवन की विभिन्न दिशाओं को नियंत्रित करने में अपनी महती भूमिका निभाता है, वहीं वह व्यक्ति को समाज के साथ जोड़ता भी है, आज प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने मानव जाति को विश्व ग्राम में परिवर्तित कर दिया है। इस पूरे अध्याय का उद्‌देश्य विद्यार्थियों को संचार के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष का बोध करवाना है।

1.2 प्रस्तावना

यह अकाट्‌य सत्य है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और संचार सामाजिकता की पहली शर्त। भाव और

विचार के परस्पर आदान–प्रदान की विभिन्न प्रक्रियाओं और अनेक माध्यमों के द्वारा ही जनसंचार की परिकल्पना की गई है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य समाज के लोगों के बीच अपने भावों और विचारों को बातचीत के माध्यम से ही अभिव्यक्त करता है। इसलिए संचार के बिना मनुष्य–समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। संचार संस्कृत की 'चर' धातु से निर्मित शब्द है इस धातु का अर्थ 'चलना' होता है। यह 'सम्' उपसर्ग और 'आ' प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ सम्यक ढंग से चलना होता है। समाचार–पत्र , लिखना–पढ़ना, रेडियो–टेलीविजन पर कार्यक्रमों को देखना–सुनना, नाटकों को देखना, नेताओं के भाषण, इंटरनेट पर सूचनाएँ आदि जनसंचार के अंतर्गत आती हैं। संचार एक ऐसी जटिल प्रक्रिया का परिणाम है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक लोगों के बीच अर्थपूर्ण संदेशों का आदान–प्रदान किया जाता है। ये संदेश संप्रेषक और प्रापक के बीच सामंजस्य और समझदारी बनाते हैं। पल–प्रतिपल व्यक्ति और समाज के बीच बढ़ता सामंजस्य और विरोध ही संचार के विकास का प्रमुख कारण रहा। वर्तमान समय में संचार के विकसित और नवीनतम रूपों ने संचार के कार्यों, उद्देश्यों को भी विकसित किया है। जनसंचार के अंतर्गत तीन प्रकार के माध्यम आते हैं – प्रिंट माध्यम, श्रव्य माध्यम एवं दृश्य–श्रव्य माध्यम।

1.3 अर्थ एवं स्वरूप

संचार शब्द संस्कृत की 'चर्' धातु से निकला है, जिसका अर्थ चलना या संचरण करना है। अंग्रेजी में इसके लिए कम्यूनिकेशन शब्द चलता है यह शब्द लैटिन के कम्यूनिटास से जुड़ा है – जिसका अर्थ होता है – मनुष्य का मनुष्य के साथ व्यवहार, भाईचारा, मैत्रीभाव, सहगामिता एवं न्यायपरायणता।

लैटिन भाषा की Communicare क्रिया द्वारा निर्मित अंग्रेजी शब्द Communication वर्तमान सन्दर्भों में 'संचार' का पर्याय बनकर स्वीकृत हुआ है। सच यह है कि 'संचार' एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सार्थक सन्देशों का संप्रेषण ही कहलाता है। इसकी विविध परिभाषाओं से पता चलता है कि विचारों, अनुभवों, तथ्यों एवं ज्ञानपरक संरचनाओं का ऐसा आदान–प्रदान, जिससे दोनों पक्षों को संदेश का सहजता से सामान्य ज्ञान हो सके तथा जिस प्रक्रिया के माध्यम से, संप्रेषक और संग्राहक के मध्य सामंजस्य तथा जागरूकता उत्पन्न हो सके, 'संचार' कहलाता है। इसके सम्बन्ध में विचार करने वालों में प्रमुख हैं – हावलैण्ड लूमिक और बीगल, जे.पॉल, लीगन्स, मैगीनसन, कौकीन और शॉ आदि।

आज बिना संचार के कोई कार्य नहीं हो सकता। टीड के अनुसार 'तरह–तरह के मस्तिष्कों को एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के समीप लाना इसका लक्ष्य होता है।' इसके अभाव में प्रशासनिक समन्वय स्थापित नहीं हो सकता है। प्रभावी संचार–व्यवस्था के अभाव में प्रभावकारी नियंत्रण, पर्यवेक्षण और नेतृत्व नहीं हो सकता है। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से 'संचार' से अभिप्राय सूचना या समाचार देना है। ज्ञान के प्रचार–प्रसार के अर्थ में इसका प्रयोग किया जाता है। लोक प्रशासन में इसका कुछ विस्तृत अर्थ है। मिलट के अनुसार सांझे उद्देश्य की मिली–जुली समझदारी संचार है। इससे विचारों की समझदारी होती है। संचार–प्रक्रिया स्रोत और श्रोता दो छोरों के मध्य संचालित होती है।

जनसंचार से आशय है मास (Mass) मीडिया (Media) इसलिए जनसंचार हेतु जन–माध्यम जैसे – समाचार (पत्र), रेडियो, टेलीविजन आदि आवश्यक होते हैं, जो जनसमुदाय को उनकी रुचि के अनुरूप प्रभावित करते हैं। यह व्यक्तिवाद का विरोधी है।

परिभाषाएँ

1. **जोसेफ डिनिटी** – "जनसंचार बहुत से व्यक्ति में एक मशीन के माध्यम से सूचनाओं, विचारों और दृष्टिकोणों को रूपान्तरित करने की प्रक्रिया है।"

2. **डी.एस. मेहता** – "जनसंचार का अर्थ है जन संचार माध्यमों – जैसे रेडियो, दूरदर्शन, प्रेस और चलचित्र द्वारा सूचना, विचार और मनोरंजन का प्रचार–प्रसार करना।"

3. **जार्ज ए. मिलर** – "जनसंचार का अर्थ सूचना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना है।"

4. **जवरीमल्ल पारेख** – "जनसंचार का अर्थ है जन के लिए संचार के माध्यम। इसमें जनता न तो निष्क्रिय भागीदार होती है और न ही प्रत्येक प्रेषित संदेश को आसानी से स्वीकार कर लेती है, बल्कि इन माध्यमों को प्रभावित भी करती है और प्रभावित भी होती है। ..... आज के विकसित प्रौद्योगिकी के युग में व्यक्ति अकेले घर बैठे फिल्म देख सकता है और घर बैठे ही दुनिया से सम्पर्क कर सकता है।"

5. **"Communication is an exchange of understanding."** — Coffin and Shaw.

6. **Eodwin emery** — "Mass communication is the art of transmiting information, ideas and attitudes from one person to another."

7. **Keval J. Kumar** — "Halt communication and the life processes wither and die."

टीड – का कहना है कि संचार का लक्ष्य समान विषयों पर मस्तिष्कों में मेल स्थापित करना है।

लारेंस ए एप्ली – के अनुसार संचार वह प्रक्रिया है – जिससे एक व्यक्ति अपने विचारों से दूसरे को अवगत कराता है।

लुई ए. एलन – का कहना है कि एक व्यक्ति के मस्तिष्क को दूसरे से जोड़ने का पुल संचार है।

थियो हेमन – का कथन है कि एक व्यक्ति से दूसरे की संरचनाएँ एवं समझ हस्तांतरित करने की प्रक्रिया संचार है।

न्य मैन एवं **समर** का कहना है कि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच तथ्यों, विचारों, सम्मतियों अथवा भावनाओं का आदान–प्रदान संचार है।

एफ.जी.मेयर – के अनुसार माननीय विचारों और सम्मतियों का शब्दों, पन्नों एवं संदेशों के जरिए आदान प्रदान संचार है।

1.4 संचार के तत्त्व

(i) **भाषा की बोधगम्यता** – सीधी, सरल, स्पष्ट एवं व्यावहारिकी भाषा इसका प्रथम तत्त्व है। इसके साथ कलात्मक भी हो। संचार माध्यमों में प्रचलित शब्दावली का प्रयोग हो, जो भाषिक क्षेत्र में प्रचलित हो। आवश्यक हो तो देशज शब्दों का भी प्रयोग हो। पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त हो। प्रचलित विदेशी शब्द भी प्रयुक्त किया जाय। कृत्रिम भाषा न हो, न पंडिताऊ।

(ii) **सम्प्रेषण की समस्या** – संचार–माध्यमों में सम्प्रेषण की समस्या बहुत बड़ी होती है। इसमें सभी क्षेत्रों से सूचनाएँ मिलती हैं। इसके साथ संचार का उद्देश्य है प्राप्त जानकारी का सर्वत्र पहुँचना। संचार–व्यवस्था वक्ता–श्रोता या दाता और ग्रहीता के बीच माध्यम का कार्य करती है। अतः इसके लिए संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग आवश्यक है। सरल, स्पष्ट, अभिधामूलक, एक अर्थ को देने वाली भाषा हो, जिसको श्रोता सुनते ही समझ ले। उसमें प्रसाद गुण हो।

(iii) **मानकीकरण** – संचार माध्यमों में भाषा के मानक रूप का प्रयोग होता है। साहित्यिक भाषा का भी नहीं। इसमें तो विधा या माध्यम के अनुरूप भाषा हो, सर्व जन प्रचलित और संप्रेषणीय हो। हर माध्यम की मानक भाषा होती है।

(iv) **आधुनिकीकरण** – संचार–माध्यमों का तत्काल महत्त्व होता है। इसलिए इसकी शब्दावली प्रचलित शब्दावली होनी चाहिए। संचार–माध्यम नित्य नवीन सूचनाएँ पहुँचाते हैं। होने वाले आविष्कारों की भी सूचना इनसे दी जाती है। नये आविष्कार के लिए नयी शब्दावली का प्रयोग होना आवश्यक है। अतः संचार माध्यम में नवीन शब्द ग्रहण की क्षमता होनी चाहिए। इसकी भाषा अपने आप में समसामयिक हो। बोलचाल की हो। कविता, विवेचना और कथा की भाषा न हो। भाषा सहज और आकर्षक हो।

1.5 जनसंचार के कार्य

जनसंचार के प्रमुख कार्य अधोलिखित हैं :–

1. **सूचना का आदान–प्रदान** – विश्व की घटनाओं, सामाजिक गतिविधियों, जनमानस की गतिविधियों की सूचना का आदान–प्रदान जनसंचार माध्यम से ही होता है। यह जनमानस की समस्याओं को सरकार और सरकार की उपलब्धियों को जनता तक पहुँचाता है। आविष्कार, विकास–सम्बन्धी सूचनाओं से यह जनसामान्य को अवगत कराता है।

2. **मनोरंजन** – जनसंचार के विविध माध्यम आज मनोरंजन के प्रमुख साधन हैं। विविध प्रकार से ये जनमानस का मनोरंजन कर रहे हैं। इससे सहज मानसिकता का निर्माण हो रहा है।

3. **मूल्यांकन** – जनसंचार मूल्यांकन करता है – जिसके आधार पर प्रशासन/प्रशासक आदेश एवं निर्देश देते हैं। सुझाव, प्रतिवेदन, सिफारिशों, कार्मिकों के कार्य की निन्दा या प्रशंसा तथा मेमो, आदि मूल्यांकन

के ही रूप हैं। प्रशासक इनका सम्प्रेषण कर प्रशासन को प्रभावी बनाने का प्रयास करता है।

4. **आज्ञा देना** – प्रशासक आदेश देने, कार्य की रीति निश्चित करने तथा अधीनस्थों को निर्देश देने का कार्य जनसंचार करता है। जब वह किसी को इस बात का संचार करता है कि क्या कार्य करना है या कौन सा कार्य किस प्रकार करना है तो वह निर्देश कहा जाता है। यह संचार उच्च से निम्न की ओर चलता है।

5. **प्रभावित और प्रोत्साहित करना** – संचार लोगों को प्रभावित एवं प्रोत्साहित करने का कार्य करता है। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्रभावित और प्रोत्साहित करने के लिए संचार की व्यवस्था की जाती है।

6. **अन्य कार्य** – सम्बन्ध और पहचान का कार्य, संकेत का कार्य, पुनरावलोकन व स्पष्ट करने का कार्य, शिष्टाचार बरतने का कार्य, समारोह आदि करने का कार्य।

1.6 जनसंचार की बाधाएं

(i) **भाषा** – संचार की अपनी भाषा नहीं होती है, व्यक्ति की भाषा से ही इसका कार्य चलता है, पर सभी व्यक्तियों की एक भाषा नहीं होती है। इसलिए संचार में बाधा आती है। कभी–कभी भाषा जटिल भी हो जाती है।

(ii) **संचार की इच्छा का अभाव** – संचार एक निर्जीव माध्यम है। इसकी कोई अपनी संवेदना नहीं होती, विवेक नहीं होता, यह जड़ संदेश का वाहक या डाकिया है।

(iii) **आकार तथा दूरी की बाधा** – संचार में स्वरूप और दूरी सम्बन्धी बाधाएँ आती हैं – जिससे सन्देश को आने–जाने में बाधा होती है। सन्देश या सूचना के स्वरूप बदलते रहते हैं।

(iv) **भिन्नताएँ** – व्यक्ति–व्यक्ति में भिन्नता होती है। इससे भी सूचना के आदान–प्रदान में बाधाएँ आती हैं। सम्प्रेषण के लिए किसी–न–किसी स्तर पर समानता आवश्यक है।

(v) **अन्य बाधाएँ** – संदेश का अर्थ विकृत करने तथा पारस्परिक समझ न पैदा होने देने वाली बात भी संचार मार्ग में बाधा का कार्य करती है। कर्मचारियों के बीच मधुर सम्बन्धों का अभाव भी इस पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। एक दूसरे के प्रति मन में चलने वाली दुर्भावना और गलतफहमी भी इसके अच्छे प्रभाव को बाधित करती है। यांत्रिक दोष से भी संचार–कार्य में कठिनाई उत्पन्न होती है।

बाधाओं को दूर करने के उपाय

1. जहाँ तक सम्भव हो सके सम्बन्धित व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से संदेश, आदेश, निर्देश और सूचनाएँ आदि दी जाएँ।

2. जो भी संदेश दिया जाय, वह बोधगम्य अर्थात् सरल और सुबोध भाषा में हो।

3. संघटन में कार्यरत सभी व्यक्तियों के बीच मधुर एवं मानवीय सम्बन्धों का विकास किया जाय।

4. संघटन में प्रबन्ध के स्तरों में कमी होनी चाहिए, जिससे संचार को कम–से–कम स्तरों से गुजरना पड़े।

5. समय, परिस्थिति और आवश्यकता के संदर्भ में संचार के उपर्युक्त–से–उपर्युक्त साधनों अथवा माध्यमों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

1.7 राष्ट्रीय विकास में जनसंचार की भूमिका एवं सम्भावनाएं

जनसंचार आज जन–जीवन से इतने व्यापक तौर पर जुड़ चुका है कि किसी भी राष्ट्र के विकास में उसकी भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गई है। विश्व के अनेक देशों में आज रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा जैसे माध्यमों का उपयोग शिक्षा के गुणात्मक सुधारों के लिए किया जा रहा है। जनसंचार विशेषज्ञों के वर्ग का ऐसा मानना है कि जनसंचार माध्यम हमारे भीतर काल्पनिक सोच पैदा करते हैं जिससे विषय के प्रति रुचि पैदा होती है। हमें कुछ और नया सीखने की प्रेरणा मिलती है।

समाचार–पत्रों, रेडियो और टेलीविजन कार्यक्रमों में विशिष्ट और योग्य व्यक्तियों के विचार शामिल होते हैं जिसका प्रसार आम व्यक्ति तक पहुँचता है। टेलीविजन और फिल्मों के कारण बच्चों और युवाओं में फैशन, चकाचौंध और प्रसिद्धि की चाह भी बढ़ती है। नौकरी और व्यवसाय के बारे में भी रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार–पत्र और सूचनाएँ प्रसारित–प्रकाशित करते रहते हैं जिससे युवावर्ग या व्यापारी वर्ग को काफी मदद मिलती है।

रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, सूचना और खबरों के साथ जनसंचार माध्यमों के द्वारा लोगों का मनोरंजन भी होता है। विज्ञापन द्वारा रेडियो में राष्ट्रीय एकता तथा बचत की भावना पैदा की जा सकती है।

इसके माध्यम से लोगों में जागृति भी पैदा होती है। जनसंचार माध्यम के द्वारा स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, टीकाकरण, सन्तुलित आहार तथा कृषि आदि से सम्बन्धित जानकारियाँ दी जाती हैं। यह समाज सुधार का कार्य भी करता है। नशाबन्दी, परिवार नियोजन, दहेज प्रथा आदि विषयों पर कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को जाग्रत किया जाता है। जिससे समाज सुधार हो सके।

प्रकृति प्रकोप से उत्पन्न त्रासदी के समय जनसंचार माध्यम प्रभावी भूमिका का निर्वाह करते हैं। बाढ़, अकाल, भूकम्प या युद्ध से सम्बन्धित कार्यक्रमों के प्रसारण द्वारा लोगों में सहानुभूति एवं सहायता का भाव जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जनसंचार माध्यम आज जनता के इतने करीब आ चुका है कि विश्व के किसी कोने में बैठा हुआ आदमी मिनटों में पूरी दुनिया की खबरों से वाकिफ हो जाता है। जनसंचार ने पूरे विश्व को भूमण्डलीकृत कर दिया है।

जनसंचार की दृष्टि से 21वीं शती विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें नित नए–नए आविष्कार और अनुसंधान हो रहे हैं। संचार–व्यवस्था में हो रहे परिवर्तन एवं विकास की तीव्रता के कारण अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त

हुई हैं तथा उनमें विकास की और भी सम्भावनाएँ बढ़ी हैं।

आज संसार में कई विकसित देशों में अन्तरिक्ष में उपग्रह छोड़ने की होड़ मची है। इसमें विकासशील देश भी पीछे नहीं हैं। इस दृष्टि से भारत का भी एक सन्तोषजनक प्रगतिपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। लगभग सौ से अधिक देशों में इन्हीं संचार उपग्रहों द्वारा टेलीविजन सन्देश भेजे और प्राप्त किए जाते हैं। इनमें हजारों टेलीफोन चैनल हैं जिन पर अलग–अलग सन्देश भेजे जाते हैं। इनमें बहुत से रेडियो और टेलीविजन चैनल भी हैं। संचार उपग्रहों के कार्यक्रमों में अब तक सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम इंटलसेट संचार उपग्रहों का रहा है। ये व्यापारिक उपग्रह हैं जिनके 109 राष्ट्र सदस्य हैं और इन उपग्रहों द्वारा समस्त विश्व में लगभग 500 से अधिक केन्द्र एक–दूसरे से जुड़े हैं। कृत्रिम संचार उपग्रह की सहायता से टेलीफोन, रेडियो और टेलीविजन सन्देशों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजना बिल्कुल ही आसान हो गया है। उपग्रहों की मदद से केबल टी.वी का लाभ भी मिल रहा है।

वर्तमान में विश्व में ऐसे संचार उपग्रहों का निर्माण भी हो रहा है जिनमें सैकड़ों टेलीविजन चैनल और लाखों टेलीफोन चैनल होंगे। इस समय विश्व के कई देशों में टेलीविजन के अतिरिक्त चैनलों पर शैक्षिक कार्यक्रम का प्रसारण हो रहा है। भारत में दूरदर्शन पर जो शैक्षिक कार्यक्रम आज प्रसारित किए जा रहे हैं। उपग्रह की सहायता से निकट भविष्य में उन्हें भी टेलीविजन के अतिरिक्त चैनल पर प्रसारित करने की सम्भावनाएँ हैं। कुल मिलाकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि निकट भविष्य में जनसंचार के विकास का मार्ग निरन्तर गतिशील होगा और इसके विभिन्न आयामों में अनेक सम्भावनाएँ विकसित होंगी।

1.8 सारांश

मनुष्य की विशिष्ट जैवकीय रचना, विचार – प्रक्रिया तथा सांस्कृतिक गुणों के सम्मिश्रण ने उसकी संचार–शक्ति को अभूतपूर्व विकास का वर्तमान प्रारूप प्रदान किया है। वस्तुतः वर्तमान विश्व का समस्त प्रशासन, जनसम्पर्क, सूचना प्रसारण और विपणन मुख्यतः जनसंचार पर ही निर्भर है। अतएव इस दशक में द्रुत संचार के अनेक उपकरण विकसित हो गए हैं। अब तक जिसे पत्रकारिता कहते थे, वह भी अब 'जनसंचार' रूप में परिणत हो गयी है।

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

2. जनसंचार के तत्वों एवं प्रमुख कार्यों पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

3. जनसंचार की बाधाएं क्या हैं और उन्हें दूर करने के उपायों को स्पष्ट करें।

....

....

....

4. जनसंचार के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रीय विकास में जनसंचार की भूमिका और सम्भावनाओं पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

1.10 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग – दंगल झाल्टे

....

Course Code - 404 **Lesson No. 2**

Unit-I

जन संचार की प्रक्रिया एवं महत्व

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 संचार की प्रक्रिया

2.4 जनसंचार के कार्य/महत्व

2.5 सारांश

2.6 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप जनसंचार की प्रक्रिया को समझते हुए मनुष्य के जीवन में जनसंचार का क्या महत्व है। इस लक्ष्य से पूर्ण रुप से अवगत हो सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

'जन' शब्द का अर्थ बड़ी संख्या में एकत्र लोगों के लिए प्रयुक्त होता है। यह अंग्रेजी शब्द 'मास' के पर्याय–रूप में जाना जाता है। यह व्यक्तिवादिता की पूर्ण समाप्ति का द्योतक है। 'संचार इस मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। देखा जाए तो 'संचार' में जब 'जन' विशेषण को जोड़ा जाता है तो 'जनसंचार' बनता है। अर्थात् जनसंचार की प्रक्रिया विस्तृत स्तर तक फैले समूह तक होती है तो वह जनसंचार कहलाती है। जनसंचार में संदेश प्रेषित करने वाले और संदेशों को प्राप्त करने वाले में किसी भी प्रकार का संबंध

नहीं होता फिर भी यह जनसमुदाय की रुचि और हितों को ध्यान में रखता है तथा सामाजिक जीवन की दिशाओं को नियंत्रित करने में मुख्य भूमिका निभाता है। जनसंचार में सूचनाओं के विश्लेषण, सामाजिक ज्ञान एवं मूल्यों के प्रेषण, मनोरंजन, सामाजिक जागरूकता, राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रसार आदि कार्य सम्मिलित होते हैं।

2.3 संचार की प्रक्रिया

संचार की प्रक्रिया विभिन्न तत्वों के आधार पर संप्रेषक, संप्रापक और संदेश के बीच संतुलन बैठाने की व्यवस्था है। संचार की प्रक्रिया को इस प्रारूप के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

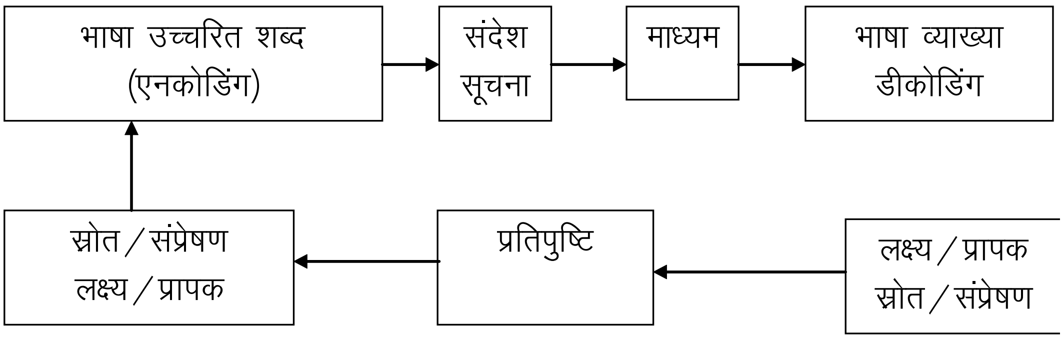

1. **संप्रेषक–** संचार की प्रक्रिया के लिए संचार के दो महत्त्वपूर्ण तत्वों में संप्रेषक और प्रापक को संचार के ध्रुव कहा जा सकता है। संप्रेषक अर्थात् संदेश भेजने वाले द्वारा संप्रेषित किए गए संदेश ही प्रापक अर्थात् प्राप्तकर्ता तक पहुँचते हैं। संप्रेषक संदेश का स्रोत है और प्रापक लक्ष्य। संदेश को प्राप्तकर्ता तक पहुँचाने के लिए संप्रेषक की भूमिका सूत्रधार की तरह होती है जिसका उद्‌देश्य संदेश को ऐसा स्वरूप प्रदान करना है जिसे लक्षित प्रापक आसानी से ग्रहण कर सके। एक आदर्श संप्रेषक लक्षित प्रापक तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए विभिन्न माध्यमों का सहारा लेता है। प्राप्तकर्ता तक संदेश सहजता से पहुँच सके इसके लिए संप्रेषक उसी माध्यम का सहारा लेता है जिसमें संदेश प्राप्तकर्ता संप्रेषक के द्वारा भेजे संदेश के अर्थ को समझ सके। जैसे नेत्रहीन व्यक्ति के लिए भेजे जाने वाले संदेश के लिए ब्रेल लिपि, अनपढ़ व्यक्ति के लिए सहज और सरल भाषा, बच्चों के लिए बाल मनोविज्ञान को दृष्टिगत रखते हुए उसी के अनुरूप भाषा आदि।

2. **संदेशः** संदेश से अभिप्राय उस बात से है जो संप्रेषक प्रापक के लिए प्रेषित करता है। संदेश के लिए मुख्य रूप से तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

   (क) **संदेश की भाषा–** इस भाषा में भेजे जाने वाले संदेश मौखिक, लिखित अथवा सांकेतिक हो सकते हैं। संप्रेषक अपने भावों, विचारों, अथवा मतों को भाषिक स्वरूप प्रदान करते हुए इनकी एनकोडिंग (कूट लेखन) करता है और प्राप्तकर्ता उस संदेश के कोडों के समूह की डीकोडिंग (कूट व्याख्या) कर उसका

अर्थ प्राप्त करता है।

(ख) **संदेश की विषय–वस्तु–** संप्रेषक द्वारा भेजे जाने वाले संदेश की सामग्री को संदेश की विषय–वस्तु कहा जाता है। संप्रेषक को इस बात का भली–भांति ज्ञान होना चाहिए कि वह जिस संदेश को संप्रेषित कर रहा है, उसकी मूल प्रकृति क्या है ?

(ग) **संदेश का प्रस्तुतीकरण–** विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप संदेशों के स्वरूप द्वारा उनके प्रभाव को सशक्त किया जा सकता है।

3. **माध्यम–** माध्यम से तात्पर्य उस सेतु से है जो संप्रेषक और प्रापक के बीच संदेश को पहुँचाने का कार्य करता है। यह संप्रेषक पर निर्भर करता है कि वह संदेश प्रभावी रूप से प्रापक तक पहुँचाने के लिए किस माध्यम का चयन करे। संचार के विभिन्न माध्यमों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता हैं–

लिखित– समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पोस्टर, पर्चे आदि।

श्रव्यात्मक– रेडियो, टेपरिकॉर्डर लाउडस्पीकर, स्टीरियो, मोबाइल आदि।

दृश्य–श्रव्य– टेलीविज़न, फिल्म, कम्प्यूटर, मोबाइल, नाटक आदि।

निश्चित रूप से प्रत्येक माध्यम प्रत्येक व्यक्ति तक अपनी पहुँच नहीं बना पाता। इसलिए संदेश की प्रकृति और उसके उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर ही संप्रेषक को सही माध्यम का चयन करना चाहिए। सही माध्यम के चयन द्वारा ही संदेश के संप्रेषण को सफल बनाया जा सकता है।

4. **प्रापक/प्राप्तकर्ता–** संचार प्रक्रिया के एक छोर पर जहाँ संप्रेषक होता है वहीं दूसरे छोर पर संदेश को प्राप्त करने वाला प्रापक। संचार के विभिन्न माध्यमों के आ जाने से प्रापक को श्रोता या दर्शक भी कहा जाता है। सामान्यतया प्रापक को निष्क्रिय माना जाता है, लेकिन ऐसा होता नहीं है। किसी भी माध्यम से प्राप्त संदेश की अंतर्वस्तु का परीक्षण–विश्लेषण करके वह ही अपनी प्रतिपुष्टि देता है।

5. **प्रतिपुष्टि/फीडबैक–** संचार की सफलता तभी है जब संदेश प्राप्त करने वाला उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इसी प्रतिक्रिया को सैद्धान्तिक शब्दावली में प्रतिपुष्टि कहते हैं।

संचार की प्रक्रिया में इन उपर्युक्त तत्वों में से प्रत्येक का अपना स्थान और महत्व है। किसी एक तत्व के आधार पर संचार की सफलता या असफलता को लक्षित नहीं किया जा सकता। सभी तत्वों के सामंजस्य से ही संदेश सही तरीके से संप्रेषित हो पाता है।

2.4 जनसंचार के कार्य/महत्व

वर्तमान समय में संचार के विकसित और नवीनतम रूपों ने संचार के कार्यों और उद्देश्य को भी विकसित किया है। जहां संचार समाज की मानसिक अवस्था, वैचारिक चिंतन की प्रवृत्ति, संस्कृति तथा जीवन को

विभिन्न दिशाओं को नियंत्रित करने में अपनी महती भूमिका निभाता है वहीं वह व्यक्ति को समाज के साथ जोड़ता भी है। मुख्य रूप से संचार के कार्य या उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं–

1. **सूचनाओं का संग्रह तथा प्रचार–** संचार का मुख्य कार्य सूचनाओं का संग्रह एवं प्रसार करना है। प्रत्येक दिन समाचार–पत्र, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर आदि माध्यमों द्वारा समाज की विविध घटनाओं, आपात परिस्थितियों, त्रासदी घटनाओं, नवीनतम खोजों, वैज्ञानिक प्रगति, सामाजिक उन्नति, राजनीतिक स्थितियों आदि सूचनाओं से समाज को परिचित कराता है।

2. **सामाजीकरण–** संचार के द्वारा ही समाज में रहने वाले लोगों का सामाजीकरण होता है। व्यक्ति और व्यक्तियों के समूह के बीच आपसी सहयोग और साझेदारी के लिए आवश्यक है कि इनके बीच संचार बना रहे।

3. **सामाजिक ज्ञान एवं मूल्यों का प्रेषण–** संचार के द्वारा केवल सूचनाएं ही संप्रेषित नहीं की जाती बल्कि समाज की प्रत्येक गतिविधि और जीवन–धारा के अनसुलझे प्रश्नों, उनके कारणों तथा परिणामों के विषय में भी समाज को परिचित कराया जाता है। समाज इस ज्ञान को अर्जित कर अपनी जीवन की दिशा को तय कर सकता है।

4. **मनोरंजन–** मानव जीवन की नीरसता और तनावमुक्त वातावरण में संचार विभिन्न माध्यमों द्वारा जन–समुदाय का मनोरंजन भी करता है। ये माध्यम विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा मानव जीवन को सरस बनाते हैं। गीत, संगीत, फिल्म, कविता, नाटक, धारावाहिक, वृतचित्र, रूपक, कार्टून आदि के द्वारा समाज को मनोरंजन के साथ–साथ अनेक संदेश भी संप्रेषित करते हैं।

5. **राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की दृढ़ता–** भारत विभिन्न वर्गों, जातियों, मतों, संप्रदायों, और विचारधाराओं का देश है, उसके बावजूद भी भारत को यदि धर्मनिरपेक्ष देश कहा जाता है तो उसमें संचार की महती भूमिका भी है। संचार माध्यमों द्वारा अनेक भाषाओं में ऐसे संदेशों का प्रकाशन या प्रसारण किया जाता है जो समाज को अपने राष्ट्र के प्रति एक होने के लिए प्रेरित करते हैं।

6. **सांस्कृतिक उन्नयन–** संचार राष्ट्र के सांस्कृतिक उन्नयन में सहायक होता है। राष्ट्र की महानतम उपलब्धियों को विश्व में प्रचारित–प्रसारित करने के साथ–साथ वह संस्कृति के सभी प्रतिमानों के विकास के लिए अपना योगदान देता है।

संचार उपर्युक्त कार्यों एवं उद्देश्यों के अतिरिक्त जनमत का निर्माण करने में भी अपनी महती भूमिका निभाता है। वह समाज की सोच को प्रभावित करता है। वह लोगों को अपनी परंपरा और वर्तमान के बीच सामंजस्य बिठाने में सहयोग देता है, वह प्रकृति और समाज के बीच भी एक सेतु का कार्य करता है। यदि संचार न हो तो मनुष्य मृत है।

2.5 सारांश

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों, तथ्यों, अनुभवों एवं प्रभावों का इस भाँति आदान – प्रदान होता है, जिससे दोनों को सन्देश के विषय में सामान्य ज्ञान होता है। इस प्रक्रिया द्वारा सम्प्रेषक और संग्राहक के मध्य सामंजस्य तथा जागरुकता पैदा की जाती है और जनता के ज्ञान, विचार और वृत्ति को निर्मित विकसित एवं परिवर्तित किया जाता है।

2.6 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

1) संप्रेषण– संदेश भेजने वाला

2) प्रापक– संदेश प्राप्त करने वाला

3) प्रतिपुष्टि ;थ्ममकइंबाद्ध–प्रापक की प्रतिक्रिया

4) सामाजीकरण–सामाजिक हितों के लिए व्यक्तियों का परस्पर सहयोग और साझेदारी

5) प्रेषण–संदेश भेजना या पहुँचाना

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 निम्न शब्दों के बारे में बताइए–

(क) संप्रेषक – ....

(ख) प्रापक – ....

(ग) संदेश की भाषा – ....

(घ) संदेश का माध्यम – ....

(ङ) प्रतिपुष्टि – ....

2 जनसंचार के महत्व पर प्रकाश डालिए ।

....

....

....

....

....

3 जनसंचार की प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिए ।

....

....

....

....

....

....

2.8 पठनीय पुस्तकें

1) भाषा–प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

2) संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्र प्रकाश मिश्र, द्वितीय संस्करण–2006, संजय प्रकाशन, दिल्ली

3) जन पत्रकारिता, जन संचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, संजय प्रकाशन, दिल्ली

4) जनसंचार के सामाजिक संदर्भ – जवरीमल्ल पारेख, संस्करण–2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

....

Course Code - 404 **Lesson No. 3**

Unit-I

जनसंचार माध्यम

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 जनसंचार माध्यमों का परिचय

3.4 जनसंचार माध्यमों की भाषा

3.4.1 जनसंचार माध्यमों में भाषा का महत्व

3.5 सारांश

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप –

– विभिन्न जनसंचार माध्यमों से अवगत होंगे।

– जनसंचार माध्यमों की भाषा और उसके महत्व को जान सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

जनसंचार दो शब्दों के मेल से बना है – जन अर्थात् जनता और संचार मतलब किसी बात को आगे बढ़ाना, चलाना या फैलाना। जनसंचार के विशेषज्ञ विद्वान् ए. मिलर ने 'Language and Communication' में कहा है कि जनसंचार का अर्थ सूचना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना है।

यदि हम किसी विचार या जानकारी को किसी भाषा के माध्यम से जनसमूह तक पहुँचाते हैं तो इस प्रक्रिया को जनसंचार कहते हैं। जनसंचार का उद्देश्य खबरों को समाज के सभी तबकों तक पहुँचाना है।

3.3 जनसंचार माध्यमों का परिचय

जनसंचार का मूल अर्थ है – सब लोगों के लिए वस्तुओं के संचार या संप्रेषण की व्यवस्था। प्रौद्योगिक युग के पहले जनसंचार की कल्पना ही नहीं थी। व्यक्ति भाषण द्वारा अधिक–से–अधिक लोगों तक पहुँच पाता था, परन्तु आज रेडियो, टेलीविजन, समाचार–पत्र–पत्रिका तथा जनसंचार के अन्य माध्यम से करोड़ों लोगों तक बड़ी आसानी से पहुँच जाता है। कम्प्यूटर तकनीकी के कारण इण्टरनेट तक की पहुँच हो गयी है। जनसंचार के प्रमुख माध्यम हैं – मुद्रण, श्रव्य, दृश्य–श्रव्य, इण्टरनेट आदि। जनसंचार के अनेक उपकरण हैं। जिन्हें हम मुख्य रूप से तीन भागों में रख सकते हैं – (i) मुद्रित, (ii) इलेक्ट्रानिक, (iii) नव इलेक्ट्रानिक, मैक्लुहन ने सभी संचार माध्यमों को दो श्रेणियों में बाँटा है – (i) हॉट (Hot), (ii) कोल्ड (Cold)। उनके अनुसार संचार माध्यमों को इन श्रेणियों में बाँटना सूचना की मात्रा और पाठक, श्रोता या दर्शक से ध्यान या माध्यम में लीन होने की माँग पर निर्भर करता है, जैसे हस्तलिखित भाषा को पढ़ने से पाठक को ज्यादा ध्यान लगाना पड़ता है, जबकि मुद्रित माध्यम से वह कम लीन होकर भी ज्यादा पढ़ सकता है। इसी प्रकार हस्तलिखित पत्र में अधिक सूचनाएँ होती हैं, क्योंकि उसमें लेखक की मनःस्थिति आदि भी झलक जाती है। मुद्रित माध्यम से इतनी तल्लीनता की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि फोटो आदि की एकरूपता के कारण से उसमें सूचनाएँ हस्तलेख से कम होती हैं, लेकिन मुद्रित माध्यम के ही दो प्रकार के अखबार और किताब की तुलना करें, तो अखबार कम तल्लीनता की माँग करता है।

आधुनिक युग में संचार साधनों तक जनता की पहुँच वाले माध्यमों को हम तीन प्रमुख कोटियों में बाँट सकते हैं –

(i) सृजनात्मक माध्यम – साहित्य, रंगमंच, फिल्में।

(ii) जनसंचार माध्यम – रेडियो, टेलीविजन, समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ।

(iii) शैक्षणिक माध्यम – शिक्षाप्रद फिल्में, कम्प्यूटर, इण्टरनेट।

वास्तविकता है कि स्पष्ट विभाजन नहीं किया जा सकता है। मुख्य प्रकार हैं – (i) मुद्रित माध्यम, (ii) दृश्य माध्यम। इसको इस प्रकार भी समझा जा सकता है – (i) मुद्रित माध्यम, (ii) अमुद्रित माध्यम।

(i) मुद्रित माध्यम

प्रमुख मुद्रित माध्यम हैं – पुस्तक, समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, हैण्डबिल, पोस्टर, विज्ञापन आदि। इनकी अपनी विशेषताएँ और सीमाएँ हैं। सूचना प्रौद्योगिकी में आयी क्रांति का प्रभाव मुद्रित माध्यमों पर भी पड़ा है। माध्यमों के क्रम में मुद्रण प्रथम प्रौद्योगिकी है – जिसने संचार को काल और दिशा की सीमाओं का अतिक्रमण करने

की क्षमता प्रदान की। अन्य संचार माध्यमों के साथ इसका सम्बन्ध भी होता है। इस माध्यम के विकास का अपना स्वस्थ और लम्बा इतिहास है। परस्पर व्यवहार के लिए मानव ने भाषा की सृजना की। रेखाचित्रों के माध्यम से विचार प्रकट किये जाने लगे। ये आड़ी–तिरछी रेखाएँ धीरे–धीरे आकार में ढलने लगीं और ये विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करने लगीं। लेखन–कला का विकास मानव की कला की अद्भुत उपलब्धि है। इस प्रकार मनुष्य ने अपनी भावनाओं को लिखित रूप देकर स्थायी बनाने लगा। यही लिखित भाषा यांत्रिक विस्तार में जाकर मुद्रित भाषा बन गयी। लिखित भाषा के दो रूप सामने आये – (i) अन्तर्वैयक्तिक– सम्प्रेषण में बोला जाने वाला रूप। इसमें व्यक्तिगत पत्र आदि आते हैं। (ii) समूह संचार में प्रयुक्त होने वाली भाषा की जगह स्थापित हुआ। यह सबसे सशक्त और स्थायी रूप है। अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ इसके प्रमाण हैं। इसी रूप के विस्तार के रूप में हमें मुद्रित माध्यम प्राप्त हुआ है। यांत्रिक पद्धति ने इसमें सहयोग किया। इससे एक पाण्डुलिपि या हस्तलेख की अनेक प्रतिलिपियाँ बनने लगीं।

सबसे पहले चीन और जापान में मुद्रण कला का विकास हुआ। 712 ई. में चीन में ब्लाक प्रिंटिंग का आरम्भ हुआ। गुटनबर्ग के लकड़ी के अक्षरों से छापे खाने का आरम्भ हुआ और उस समय भी पुस्तक के रूप में जो पहली मुद्रित सामग्री बाहर आई उसका प्रसार सीमित था। कालान्तर में छापाखाना प्रौद्योगिकी का विकास हुआ और मुद्रित सामग्री के व्यापक प्रसारण की संभावनाएँ बनीं। अब हम चाहें जितनी प्रतियाँ छाप सकते हैं आज मुद्रित माध्यम के विभिन्न रूप हमारे सामने आ रहे हैं, जैसे पुस्तक, समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, परचे (हैण्डबिल), पोस्टर और विज्ञापन, कम्प्यूटर ने मुद्रण कला में अद्भुत चमत्कार ला दिया है। माइक्रोफोन टेपरिकार्डर आदि।

इनके अतिरिक्त अत्याधुनिक व्यवस्था भी कार्य कर रही है, जैसे इलेक्ट्रानिक टेलीग्राफ, टेलीप्रिण्टर, टेलेक्स, फैक्स, इण्टरनेट आदि।

पुस्तक – मुद्रित माध्यम का यह सबसे स्थायी और उपयोगी रूप है। मुद्रण प्रौद्योगिकी के विकास की मूल आवश्यकता ही हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से हुई। पुस्तक का अस्तित्व मोटे तौर पर 15वीं शताब्दी में गुटनबर्ग की यांत्रिक मुद्रण व्यवस्था के समय से ही माना जा सकता है। इसके पूर्व इसका पाण्डुलिपि रूप ही था।

भारत में मुद्रण का प्रारम्भ गोवा में 1556 ई. मुहा और उसके बाद यह प्रौद्योगिकी तटीय शहरों से होती हुई कलकत्ता तक पहुँची। किसी भारतीय भाषा में छपने वाली पहली पुस्तक बंगला भाषा की व्याकरण की पुस्तक थी।

19वीं शताब्दी में पुस्तक प्रकाशन में अनेक सुधार हुए। फोटोग्राफी के आविष्कार के कारण पुस्तकों की रूप सज्जा (Designing) में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। आज हम सुन्दर आकर्षक आवरणों की पुस्तक छाप रहे हैं। फोटो, टाइप, सेटिंग और कालान्तर में डेस्क टाइप पब्लिशिंग के कारण पुस्तकों को आकर्षक

ले आऊट और फोंट प्रजातियाँ मिलीं – जिनसे उनको और भी आकर्षक ढंग से प्रकाशित करना सम्भव हो गया।

समाचार–पत्र – समाचार–पत्र मुद्रित माध्यम का एक सशक्त रूप है। इसकी संख्या पुस्तकों से बहुत अधिक होती है। यह मुद्रण प्रौद्योगिकी का सबसे ज्यादा उपयोग समाचार छापने के लिए ही होता है। इसमें प्रयुक्त होने वाला कागज एक विशेष प्रकार का होता है – जिसको न्यूज पेपर कहा जाता है। न्यूज प्रिंट अन्य मुद्रण से सस्ता होता है। भारत में रोज लगभग 5638 समाचार–पत्र छपते हैं। कुछ समाचार पत्रों के दो, तीन, चार संस्करण छपते हैं। इतनी मात्रा में छपने वाले समाचार पत्रों की कुल प्रसार संख्या पाँच करोड़ से भी अधिक है। भारतीय समाचार पत्रों का एक स्वस्थ इतिहास है।

पत्रिकाएँ – पत्रिकाएँ मुद्रित माध्यम का वह प्रकार है – जो समाज में पुस्तकों और समाचार पत्रों के बीच की संचार–आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। पत्रिकाएँ जहाँ समाचार पत्रों की तरह सामयिकता से जुड़ी होती हैं – वहीं अपने आकार और स्वरूप के अतिरिक्त पाठ्य–सामग्री के धरातल पर पुस्तकों के समान संग्रहणीय भी होती हैं। पत्रिकाएँ गम्भीर चिंतन, सामाजिक–राजनीतिक घटनाओं के विस्तृत विश्लेषण के लिए सशक्त माध्यम हैं।

आधुनिक भारत के निर्माण में पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान है। राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, भाषिक सांस्कृतिक, कला आदि के क्षेत्र में इनके योगदान को नहीं नकारा जा सकता है। आजादी के पूर्व और पश्चात इनकी अहम भूमिका रही है। इन्होंने सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व किया है।

भारत दुनिया के उन दस देशों में से है – जहाँ सबसे अधिक समाचार–पत्र छपते हैं और सबसे अधिक पुस्तकों का प्रकाशन होता है। जहाँ तक अंग्रेजी की पुस्तकों के प्रकाशन का प्रश्न है – भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। 2001 ई. के आँकड़ों के अनुसार हमारे यहाँ 5638 दार्शनिक समाचार पत्र, 18582 साप्ताहिक, 6881 पाक्षिक और 14, 634 मासिक पत्र निकालते हैं। इनके अतिरिक्त मिले–जुले 3590 समाचार–प्रकाशन होते हैं। इस प्रकार कुल प्रकाशनों की संख्या 55,550 हैं। इनमें पुस्तक प्रकाशन के आँकड़े शामिल नहीं हैं।

परचे, पोस्टर और विज्ञापन – मुद्रण प्रौद्योगिकी ने संदेशों के प्रचार–प्रसार के लिए पुस्तक, समाचार–पत्र, पत्रिकाओं आदि के साथ अन्य मुद्रित माध्यमों को भी जन्म दिया – जिन्होंने मुनादी, ढोल पीटने और मजमा लगाकर चीजें बेचने जैसे माध्यमों का स्थान लिया। दीवाली पर लगाये जाने वाले पोस्टर और भीड़ में बाँटे जाने वाले परचे जहाँ मुद्रण का उपयोग करते हुए शब्दों का स्थान लेते हैं, वहीं अखबारों और पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले विज्ञापन मुद्रित माध्यम की सशक्त प्रयुक्ति बन गये हैं।

परचों का प्रयोग राजनीतिक, कार्यक्रमों की सूचना, व्यापारिक सूचना, चलचित्र सूचना आदि के लिए किया जाता है। दुकान खुलने आदि की घोषणा में भी इनका उपयोग होता हे। आजकल इनको समाचार पत्र–पत्रिकाओं के बीच में रखते हैं, जनकेंद्रों पर बाँटते हैं, दिवारों पर चिपकाते हैं, सार्वजनिक केंद्रों पर

रख देते हैं, बाँटते हैं।

विज्ञापन का प्रारम्भ मुद्रित माध्यमों से ही हुआ। पत्रिकाओं, समाचार पत्रों में ये छपते हैं। आज भी विज्ञापन से सबसे अधिक आमदनी पत्र–पत्रिकाओं की होती है। दूरदर्शन और रेडियो पर भी इनका उपयोग होता है।

कम्प्यूटर – मुद्रण तकनीक में सबसे अधिक और क्रांतिकारी परिवर्तन कम्प्यूटर के विकास के कारण हुआ, 1984 का वर्ष इसमें एक स्मरणीय वर्ष है। जब स्टीव जाब और स्टीव बोस्नियॉक ने बाजार में ऐसा कम्प्यूटर उतारा जो न केवल सीखने में आसान था, बल्कि जिसे मेज पर रखी हुई छपाई की मशीन कहा जा सकता था। यहाँ से मुद्रण के संसार में डेस्क टॉप पब्लिशिंग की कल्पना ने जन्म लिया। इससे सूचना प्रौद्योगिकी के मेल से दुनिया को बड़ी तेजी से संरचना और आँकड़ों के प्रसारण की सुविधा मिली। इसके साथ ही कम्प्यूटर ने पाठ, दृश्य और श्रव्य को भी स्वीकृति करने के प्रयास में सफलता प्राप्त की है। इससे मल्टीमीडिया युग का प्रारम्भ हुआ। चित्रों और चलचित्रों के साथ–साथ ध्वनि को अंकों में बदलने की तकनीक से सूचना के अन्तरराष्ट्रीय संजाल अर्थात् इण्टरनेट को एक नया रूप मिला। इसे हम ग्राफिक वेब कह सकते हैं।

इन नयी खोजों ने प्रेस के स्वरूप को बदला और आज हम मुद्रित शब्द के जिस आधुनिक स्वरूप की ओर बढ़ रहे हैं। उसे वेब प्रकाशन कहते हैं। इस प्रकार के प्रकाशन में कागज का उपयोग ही नहीं होता। सम्पूर्ण समाचार–पत्र या पत्रिका पाठकों को अपने कम्प्यूटर स्क्रीन पर पढ़ने को मिल जाती है। इतना ही नहीं आप इस नये समाचार–पत्र को सुन भी सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इसमें छपे चित्रों को चलचित्रों के समान देख भी सकते हैं। इस प्रकाशन की एक और सुविधा है कि इसे पाठक अपनी तरह से पढ़ सकता है। अतः इसका पाठ इण्टरेक्टिव होता है।

कम्प्यूटर के माध्यम से हिन्दी के प्रयेग एवं विकास को दृष्टि में रखकर इलेक्ट्रानिकी आयोग, ई.सी.आई. एल. हैदराबाद, बिरला इन्स्टीटयूट, टेक्नोलॉजी एण्ड साईंस, फिलानी तथा टाटा ब्रदर्स ने कम्प्यूटर के प्रोटोटाइप बनाए हैं।

हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर्स लिमिटेड ने संचार की सुविधा के लिए इलेक्ट्रानिक टेलिप्रिंटर्स बनाए हैं।

माइक्रोफोन, टेपरिकार्डर – रेडियो में माइक्रोफोन के आने से यह लाभ हुआ है कि उससे बिना बल लगाये अपनी बात दूर–दूर पहुँचाने में सहायता मिली। विद्युत रेडियो में दूसरी क्रांति टेपरिकार्डर के कारण आई। टेपरिकार्डर के कारण स्थल पर जाकर रिकार्डिंग करना सम्भव हो सका। इससे कार्यक्रमों को संपादित करना भी सम्भव हो सका। जब घण्टों की रिकार्डिंग को सम्पादित कर कुछ ही मिनटों में रिपोर्ट आदि के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। रिकार्डर ने अभिनेताओं की आवश्यकता भी घटा दी है। अब खेतों में, कलकारखानों में, कार्यालयों में, रंगमंचों पर और यहाँ तक कि चलते वाहनों में रिकार्डिंग हो सकती है इस सुविधा के कारण रेडियो डाक्यूमेंट्री प्रस्तुत करना सम्भव हुआ। इससे रेडियो की विश्वसनीयता भी

बढ़ी है। टेपरिकार्डिंग की सहायता से डबिंग, सम्पादन और ध्वनि प्रभाव को जोड़ने में सुविधा मिलती है। इसी प्रकार 'मोंटाज' बनाने से कार्यक्रमों का प्रभाव बढ़ा है। टेपरिकार्डर ने रेडियो को नाटकीयकरण का नया शस्त्र प्रदान किया। इसमें यथार्थता की उत्तेजना है। यह यथार्थ सरलता के कारण अधिक प्रभावी ढंग से उभरता है।

टेलीग्राफ–टेलीप्रिंटर, टेलेक्स, फैक्स – ये दूरसंचार के अत्यन्त प्रचलित साधन हैं। इन साधनों को उपयोगी बनाने के लिए संदेशो को तार अथवा रेडियो की तरंगो द्वारा भेजा जाता था। टेलीग्राफ का ही विकसित रूप टेलीप्रिंटर है। टेलेक्स टेलीप्रिंटरों को नियंत्रित करने के लिए बनाये गये केंद्र हैं। फैक्स टेलीग्राफी के क्षेत्र में अति आधुनिक उपलब्धि है। टेलीप्रिंटर दूर संचार के क्षेत्र में वरदान सिद्ध हुआ है। इसे तारघरों, समाचारपत्र कार्यालयों और सरकारी संस्थानों में लगाया जाता है। यह बिजली से चलने वाला ऐसा यन्त्र है जो टाइप द्वारा टेलीग्राफ परिपथ पर अथवा रेडियो तरंगों द्वारा सन्देश भेजने और प्राप्त करने का कार्य करता है। इस यंत्र पर एक ही बार में कईं संदेश एक साथ भेजे जा सकते हैं। देखने में यह एक टाइपराइटर जैसा प्रतीत होता है, लेकिन इसकी आंतरिक संरचना जटिल होती है। इसमें एक 'की बोर्ड' (Key Board) या कुंजीपटल होता है – जिसमें अंग्रेजी के 26 अक्षर हिन्दी के मात्रा सहित लगभग 66 अक्षर 09 तक संख्याएँ तथा विराम, कॉमा आदि चिन्ह होते हैं। जैसे ही ऑपरेटर उचित कुंजी (Key) को दबाता है, वैसे ही विद्युत स्पन्द उत्पन्न होती है जो तार या रेडियो तरंगों की सहायता से सन्देश पहुँचाने वाले स्थान पर लगे टेलीप्रिंटर तक पहुँच जाती है। वहाँ उस मशीन पर लगे कागज के रोल पर अपने आप टाइप हो जाती है। इस प्रकार इसमें सन्देश लिखित रूप में प्राप्त होता है। समाचार–पत्र के लिए यह सबसे बड़ा संसाधन है।

फैक्स – एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें चित्र, आकृतियों की हूबहू नकल या फोटो कॉपी एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से भेजी जाती है। इस तकनीकी को फैंसी माईल, टेलीफोटो, ट्रान्समिशन, टेलीकापियर आदि नामों से भी जाना जाता है। इण्टरनेट विश्वभर में फैले कम्प्यूटरों का एक व्यवस्थित जाल है। इसके माध्यम से सूचनाओं का आदान–प्रदान कराया जाता है, इनका ज्ञान भण्डार विशाल है। यह सभी कम्प्यूटर संचार तकनीकों से आपस में जुड़े होते हैं? इसके उपभोक्ता अपनी मनचाही पुस्तक, इच्छित बाजार सूचनाएँ, मनमाफिक फिल्म, संगीत कुछ ही क्षणो में सुन, पढ़ और देख सकते हैं।

पेजर – यह एकतरफा संदेश प्राप्त करने वाला एक बेतार उपकरण है – जो बैट्री से चलता है। संदेश स्क्रीन पर लिखित रूप में आ जाता है।

(ii) अमुद्रित माध्यम

टेलीफोन – यह ग्रीक भाषा का शब्द है। 'टेली' का अर्थ है दूर और फोन का अर्थ है ध्वनि। अतः टेलीफोन = ध्वनि का दूर तक भेजना। इसका आविष्कार अमरीका के स्वर–शरीर विज्ञान के आचार्य अलेक्जेण्डर गाहक बैल द्वारा सन् 1876 ई. में हुआ। 1877 ई. में अमरीका का ही प्रसिद्ध वैज्ञानिक थोमस अलवा एडिसन

ने इसमें अनेक सुधार किये। कालान्तर में अलग–अलग तारों से जुड़े टेलीफोन से सन् 1923 ई. से डायलिंग सिस्टम, 1941 ई. से पुशबटन सिस्टम विकसित हुआ। 1960 ई. में इलैक्ट्रानिक एक्सचेंज की स्थापना हुई। भारत में सबसे पहले 1881–82 ई. में कलकत्ता शहर में 50 लाइनों वाले टेलीफोन एक्सचेंज की स्थापना की गई। 1913–14 ई. में शिमला में पहला स्वचालित टेलीफोन एक्सचेंज प्रारंभ हुआ। 1960 ई. में लखनऊ और कानपुर के बीच सर्वप्रथम एस.टी.डी. सेवा प्रारम्भ की गई। आज यह व्यवस्था घर–घर व्याप्त है। टेलेक्सा, फैक्स, इण्टरनेट आदि प्रणालियाँ इसके बिना क्रियान्वित नहीं की जा सकती हैं। आज इसकी विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं।

इण्टरकॉम – इण्टरकॉम टेलीफोन के अंतर्गत मुख्य टेलीफोन से अन्य टेलीफोन जुड़े होते हैं – जिससे व्यक्ति को मुख्य टेलीफोन के पास उठकर नहीं आना पड़ता है।

एस.टी.डी. – एस.टी.डी. सबर क्राइबर ट्रैक डायलिंग का संक्षेप है। एस.टी.डी. का सामान्य अर्थ है – घुमा–घुमाकर काल करने वाले ग्राहक। इस प्रणाली में ग्राहक ऐसे टेलीफोन से, जिसमें एस.टी.डी.सुविधा हो, के द्वारा नम्बर घुमाकर मनचाहे उक्त सुविधा वाले स्थान पर बात कर सकता है। इसकी सीमा देश तक ही है।

आई.एस.डी. – इसकी सीमा विदेशों तक है। अतः यह अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था है। इससे तात्पर्य है – इण्टरनेशनेल सबस्क्राइबर ट्रैक डायलिंग अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय काल डायलिंग द्वारा सम्पर्क। इसके लिए दो '00'का कोड है। जैसे यू.के. का कोड है 44 उसके बाद शहर का कोड जैसे लन्दन का 1 कोड है, इसके बाद वांछित व्यक्ति का नम्बर। इस प्रकार स्थिति आती है – 00441 ......

वीडियोफोन – वीडियोफोन, दूरसंचार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके माध्यम से ध्वनि के साथ चित्र भी जाता है। अर्थात् फोन के साथ कैमरा लगा रहता है।

सेल्युलर टेलीफोन – सेल्युलर टेलीफोन वॉकी टॉकी के आकार का यंत्र है। इसको सेल्युलर मोबाइल रेडियो भी कहते हैं। सेल्युलर टेलीफोन पद्ध में एक बड़े क्षेत्र को सैल्स या छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है। हर क्षेत्र का अपना ट्रांसमीटर होता है। इस व्यवस्था से एक ही समय में एक ही आवृत्ति (फ्रीक्वैंसी) पर अनेक लोग वार्तालाप कर सकते हैं। आपदा काल में इसका विशेष उपयोग होता है।

रेडियो – यह संचार का सशक्त माध्यम है। (आगे विस्तार से विचार है।) विश्व में लाखों आकाशवाणी केन्द्र स्थापित हो गये हैं। भारत में 163 केन्द्र हैं। रेडियो तरंगों से ध्वनियाँ जाती हैं।

नव इलेक्ट्रानिक माध्यम

वीडियो टेक्स्ट – यह प्रणाली कम्प्यूटर से संचालित होती है। कम्प्यूटर के माध्यम से पाठ्य सामग्री टी. वी. स्क्रीन पर मूल रूप से उपस्थित होती है। यह प्रणाली अखबारों, पुस्तकालयों एवं अन्य व्यावसायिक

क्षेत्रों में अत्यन्त लोकप्रिय हो रही हैं।

टेलीटेक्स्ट – यह प्रणाली वीडियो टेक्स्ट के समान है। इसमें अन्तर है कि सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति टेलीफोन द्वारा सम्पर्क स्थापित करता है। टेलीटेक्स केन्द्र के कम्प्यूटर से सम्पर्क स्थापित हो जाने पर सूचना प्राप्त हो जाती है और कनेक्शन पुनः कट जाता है।

इलेक्ट्रानिक मेल – यह पत्र–प्रेषण की अधुनातन तीव्र प्रणाली है। इस प्रणाली में कम्प्यूटर द्वारा पत्र प्रेषित किये जाते हैं। पत्र की सारी सामग्री प्राप्तकर्ता के टी.वी. स्क्रीन पर प्रदर्शित हो जाती है। इसको प्रिंट भी किया जा सकता है।

रेडियो डाटा पेजिंग सर्विस – यह सेवा आकाशवाणी के एफ.एम. ट्रांसमीटरों के द्वारा चुने हुए शहरों में उपलब्ध है। इसके माध्यम से संदेश भेजने के लिए सबसे पहले पेजिंग ऑपरेटर को फोन करना पड़ता है। आपरेटर आपसे आपका कोड नम्बर पूछकर उसको पी.सी.टी. (पेजिंग कण्ट्रोल टर्मिनल) में फीड कर देगा। पी.सी.टी. से आपका संदेश उपग्रह अथवा केबल की सहायता से आल डी.एस.एन. काडर में पहुँचेगा। यह एन कोड इस संदेश को इन्कोड करके एफ.एम. ट्रांसमीटर में डाल देता है और पेजर 'बीथ' ध्वनि बजाकर अपने अधिकारी को सतर्क कर देता है – जिससे सम्बन्धित अधिकारी बटन दबाकर तुरन्त संदेश पढ़ लेता है। यदि पढ़ने में बाधा हो, तो उसे मेमोरी में डाला जा सकता है।

टेलीकान्फ्रेंस – इससे तात्पर्य है – दूरसंचार साधनों द्वारा दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक साथ विचार विमर्श करना। यह क्रिया टेलीफोन, टेलीविजन, कम्प्यूटर के द्वारा सुलभ हो पाई है। इसके तीन प्रकार प्राप्त होते हैं – (i) ऑडियो कान्फ्रेंस, (ii) वीडियो कान्फ्रेंस, (iii) कम्प्यूटर कान्फ्रेंस।

इन साधनों के अतिरिक्त दिन–प्रतिदिन दूर संचार के क्षेत्र में नवीनतम खोजें हो रही हैं। संचार उपग्रहों ने इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3.4 जनसंचार माध्यमों की भाषा

जनसंचार माध्यमों की भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो कि जनसंचार के विभिन्न माध्यमों के लिए प्रयुक्त होती है। सवाल यह है कि क्या जनसंचार के सभी माध्यमों में एक ही भाषा का प्रयोग होता है या उनमें कुछ अन्तर होता है? इसका उत्तर 'हाँ' और 'नहीं' दोनों में दिया जा सकता है। हाँ इस अर्थ में कि जिस हिन्दी भाषा का प्रयोग हम अपने रोजमर्रा के जीवन में करते हैं, उसे ही हम समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों में पढ़ते हैं। उसे ही हम रेडियो पर सुनते हैं फिल्म तथा टेलीविजन पर भी सुनते हैं। यदि इन माध्यमों में एक–सी भाषा का प्रयोग न होता तो किसी भी व्यक्ति के लिए अलग–अलग माध्यमों में प्रयुक्त होने वाली भाषा को समझना मुश्किल हो जाता। फिर भी माध्यम बदलने के साथ–साथ भाषा में भी थोड़ा अन्तर अवश्य हो जाता है। सामान्य रूप से हम जिस प्रकार रोजमर्रा की जिन्दगी में जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उसे ही भाषण के क्रम में या पुस्तक लेखन के क्रम में नहीं करते। उन दोनों के लिए भाषा–प्रयोग

की दृष्टि से थोड़ा अन्तर अवश्य हो जाता है। उसी प्रकार जो भाषा समाचार–पत्रों में प्रयुक्त होती है वही रेडियो लेखन में प्रयुक्त नहीं होती। यही बात अन्य दृश्य माध्यमों पर भी लागू होती है। भाषा में यह अन्तर माध्यम की विशिष्टता के कारण आता है। इस अन्तर को हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं।

मुद्रित माध्यमों की भाषा

इसके अन्तर को समझने के लिए दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. दुनिया में समाचारों को जानने–समझने से लेकर मनोरंजन के माध्यम तक बदल रहे हैं। इसी का नतीजा है कि इण्टरनेट अब समाचार, विचार जानने और मनोरंजन का तीसरा सबसे बड़ा माध्यम हो गया है। पहले और दूसरे स्थान पर टी.वी. और रेडियो है जबकि समाचार–पत्र और पत्रिकाओं का स्थान चौथा और पाँचवाँ हो गया है। एक ताजा मीडिया सर्वेक्षण में प्रकाशकों का भय पचास प्रतिशत घरों में सही साबित हुआ है। चौंकाने वाली बात यह है कि यह बदलाव सिर्फ युवकों या सम्पन्न लोगों के ही बीच नही आया है बल्कि प्रायः हर वर्ग के लोग इसकी पकड़ में आए हैं। सर्वेक्षण करने वाले फाय वीक का कहना है कि यह बहुत बड़ा बदलाव है और इससे इण्टरनेट के बढ़ते प्रभाव का पता चलता है। आम लोग अखबार पढ़ने में जितना समय लगाते हैं उससे तीन गुना अधिक समय इण्टरनेट पर लगा रहे हैं। शाम के वक्त यह औसत छह गुना तक पहुँच जाता है। सर्वेक्षण के अनुसार प्रकाशकों के लिए सबसे बड़ी चिन्ता की बात यह है कि विज्ञापनदाता 16 से 34 आयु वर्ग के किशोरों को अपना सबसे बड़ा टारगेट मानते हैं और इस आयुवर्ग के लोग अखबारों या पत्रिकाओं की तुलना में पन्द्रह गुना अधिक समय इण्टरनेट पर बिताते हैं।

2. हिन्दी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी उपन्यास लेखन की परम्परा समृद्ध रही है। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की जटिलता से सामाजिक नैतिकता और पाप–पुण्य की अवधारणा अक्सर कठघरे में खड़ी हो जाती है। जैनेन्द्र से लेकर मृदुला गर्ग तक ने बड़ी बारीकी से दाम्पत्य के बनते–बिगड़ते स्वरूप को अपने–अपने तरीके से परिभाषित और विश्लेषित किया है। कृष्णा अग्निहोत्री का नया उपन्यास 'मैं अपराधी हूँ' मध्यवर्गीय स्त्री का एक ऐसा महाआख्यान है जिसमें कम–से–कम चार पीढ़ियों के संघर्ष और यातना से साक्षात्कार होता है। यह साक्षात्कार मार्मिक और भयावह है, यद्यपि विकास का माडल लेखिका का आलोच्य है। आलोच्य ही नहीं, सभ्यता समीक्षा की तरह जगह–जगह सतेज और गतिमान है, लेकिन सतह पर भोगवाद के विविध रूपतामक दृष्टान्त हैं। ऊपरी चमक–दमक से कोई बेअसर नहीं है और भीतर का खोखलापन देर तक अदृश्य भी नहीं रहता। तेज रफ्तार से भाग रही सभ्यता में सुख क्षणिक है और उसका सार है लूट–खसोट। इससे केवल मानवीय सम्बन्ध ही आहत और उद्विग्न नहीं होते, बल्कि आत्यन्तिक मनुष्यता भी लहूलुहान नजर आती है।

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों की तुलना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पहला उद्धरण समाचार का है जबकि दूसरा पुस्तक समीक्षा का। पहले उदाहरण में समाचार की भाषा में सूचना का प्राबल्य है जबकि दूसरे उदाहरण में सूचना के साथ–साथ लेखक का अपना मत भी सन्निहित है।

पहले उदाहरण की भाषा वस्तुपरकता और तथ्यात्मकता के अनुकूल है जबकि दूसरे उदाहरण में तथ्य से अधिक समीक्षक ने अपनी बात कहने पर जोर दिया है।

समाचार की भाषा में बात को स्पष्ट और सरल ढंग से कहने पर जोर है। इसमें क्लिष्ट और आलंकारिक शब्दों के प्रयोग से बचा गया है। पुस्तक समीक्षा की भाषा में समीक्षक (लेखक) के अपने विचारों को पेश करने पर बल है। इसके साथ ही लिखने वाले के लेखन की शैली का अपना अन्दाज भी देखने को मिलता है।

समाचार–पत्रों की भाषा में इस बात का ध्यान रखना जरूरी होता है कि उसे पाठकों का विशाल वर्ग पढ़ता है जिसमें भाषा, ज्ञान, अभिरूचि और संस्कारों के विभिन्न स्तर होते हैं। लेकिन पुस्तक समीक्षा की भाषा में स्तर की दृष्टि से भेद हो जाता है। यहाँ पर समीक्षक (लेखक) यह मानकर चलता है कि पाठक मूल पुस्तक से पूर्व परिचित है अथवा जिस पुस्तक के विषय में वह लिख रहा है उसके तथ्यों को पढ़कर पाठक लेखकीय मान्यताओं से सामंजस्य बिठाने में सक्षम है। इसलिए इसकी भाषा में थोड़ी जटिलता भी आ जाती है। जो सामान्य से परे है। लेखक यह मानकर चलता है कि उसके पाठक केवल प्रबुद्ध वर्ग के ही लोग हैं जिनकी रुचि रचना द्वारा सामान्य से विलग कुछ विशेष की तलाश करना है।

श्रव्य माध्यमों की भाषा

श्रव्य माध्यमों की भाषा से तात्पर्य उस माध्यम से है जिसमें सन्देश को सुनकर उसके सम्पूर्णत्व का अर्थ ग्रहण किया जाए। वर्तमान समय में इस माध्यम ने नाटक और रेडियो द्वारा प्रसारित नाटक की भाषा में थोड़ा अन्तर होता है। चूँकि मंच पर दिखाए जाने वाले नाटक में सारे दृश्य दर्शकों के सामने होते हैं इसलिए उन्हें समझने में दिक्कत नहीं होती, पर रेडियो पर खेले जाने वाले नाटक ध्वनि के माध्यम से श्रोताओं तक पहुँचते हैं। उन्हें समझने के लिए श्रोता को कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। इसलिए रेडियो के लिए लेखन करने वाले को इस बात का ध्यान रखना होता है कि वह भाषा का ऐसा प्रयोग करे जिसे सुनकर पाठक अपनी कल्पना के सहारे एक दृश्य बिम्ब का साक्षात्कार कर सके। इसमें ध्वनि (sound) के द्वारा प्रभाव (effect) उत्पन्न किया जाता है। जैसे, हमें यह बताना है कि किसी मुहल्ले में आग लगी है और लोग भाग रहे हैं। इस बात को यदि सामान्य रूप से कह दिया जाएगा तो श्रोता के मन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। पर रेडियो प्रसारित करने के लिए इसमें ध्वनि का सहारा लेना पड़ेगा। वाद्य यन्त्रों के द्वारा ऐसा प्रभाव पैदा करना होगा कि सुनने वालों को लगे कि वह आग लगने का दृश्य अपने भीतर महसूस कर रहा हो। मसलन ध्वनि द्वारा ऐसा प्रभाव डालना होगा जिसमें लगे कि आग की लपटों से निकलने वाली आवाज और लोगों के भागने–दौड़ने, चीखने–चिल्लाने, आग बुझाने की प्रक्रिया में किया जाने वाला प्रयास, दमकल गाड़ी के आगमन, उसकी घण्टी बजने की आवाज – इन सब बातों को ध्वनि के माध्यम से दृश्य बनाने का प्रयास किया जाता है।

रेडियो नाटक में भी प्रमुखता संवादों की ही होती है लेकिन अन्य ध्वनियों और संगीतों का इस्तेमाल करके

वह असर पैदा किया जाता है जो मंच पर नाटक देखते हुए पैदा होता है। इसमें बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाता है।

दृश्य माध्यमों की भाषा

संचार माध्यमों में मुद्रित और श्रव्य माध्यमों के अतिरिक्त दृश्य माध्यमों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें भी श्रव्य का प्रयोग होता है। जैसे कि सिनेमा या टेलीविजन। दोनों दृश्य के साथ–साथ श्रव्य माध्यम भी हैं। परन्तु इसमें श्रव्य का प्रयोग उसी रूप में नहीं होता जिस रूप में रेडियो या मुद्रण की भाषा में होता है। दृश्य माध्यमों में दृश्य साथ में होने के कारण शब्दों के द्वारा वस्तु, स्थिति और भाव का वैसा वर्णन करने की जरूरत नहीं होती जैसे मुद्रित या श्रव्य माध्यमों में होती है। दृश्य माध्यम में हमारे सामने सब घटित घटनाएँ या क्रियाएँ संचालित होती रहती हैं। उसे हम हू–ब–हू वैसे ही देखते हैं। उदाहरण स्वरूप रेडियो और टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले क्रिकेट और फुटबाल की कमेंट्री को देख सकते हैं। जैसे कि जब रेडियो द्वारा हम क्रिकेट या फुटबाल की कमेंट्री सुनते हैं तो उससे यह पता नहीं चलता कि खेल कैसा चल रहा है। कोई खिलाड़ी किस स्थान से कैसे बॉल को मार रहा है, बॉल कितना ऊँचा उठा है, कैसे कोई अपने सिर से बॉल को मार रहा है आदि–आदि। या फिर क्रिकेट में कोई बॉलर कितनी दूरी से बॉल फेंकने के लिए कितनी तेजी से दौड़ रहा है। या बॉल फेंकते वक्त उसकी मुद्रा कैसी है। बॉल को बैटिंग करने वाला किस प्रकार मार रहा है, बाल किस दिशा में कितनी तेजी से जा रहा है या किसी ने उसे किस प्रकार कैच किया है। इन तमाम बातों की जानकारी रेडियो पर कमेंटेटर द्वारा बड़ी तेजी से दी जाती है। परन्तु सुनकर हम घटित दृश्यों का अनुमान भर ही लगा सकते हैं, प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकते। टी.वी. पर हम उक्त तमाम घटनाओं और क्रियाओं को अपनी आँखों के सामने होते देखते हैं। इसलिए इसकी कमेंट्री भी धीमी गति से होती है। उसके लिए यह जरूरी नहीं कि वह खेल के हर क्षण का पूरा विवरण पेश करे। वह खेल का पूरा वर्णन करने के बजाय उस पर अपनी राय ज्यादा ज़ाहिर करता है।

किसी भी मुद्रित या श्रव्य माध्यम में उक्त विचारों को यदि दृश्य माध्यम के द्वारा प्रसारित करना होता है तो उसकी भाषा में भी बदलाव करना होता है। उस मुद्रित या श्रव्य की भाषा को दृश्य माध्यम की भाषा के अनुरूप करना होगा। जैसे, नीचे हम कहानी के एक अंश को दे रहे हैं। इसमें मुद्रित, श्रव्य और दृश्य माध्यमों को ध्यान में रखकर भाषा सम्बन्धी विचार किया जा सकता है।

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा, सहना आया है। लाओ, जो रुपए रखे हैं उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाडू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली, तीन ही तो रुपए हैं, दे दोगे तो कम्बल कहाँ से आवेगा? माघ–पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर दे देंगे। अभी नहीं। हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया कम्बल के बिना हार में रात को वह किसी तरह सो नहीं सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो

सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी–भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठा सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला ला दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा। मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली, कर चुके दूसरा उपाय जरा सुनूँ तो कौन उपाय करोगे! कोई खैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर–मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए। मैं रुपए न दूँगी – न दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला, तो क्या गाली खाऊँ?

मुन्नी ने तड़पकर कहा, गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है,?

उपर्युक्त उदाहरण में मुद्रित और श्रव्य माध्यमों की भाषागत विशेषता वर्तमान है। इसकी भाषा सरल, सुस्पष्ट एवं ग्राह्य है जिससे पाठक को न तो कहीं पढ़ने में कोई कठिनाई होती है और नहीं समझने में। सुनकर भी कोई आदमी कहानी के परिवेश को समझ सकता है। लेकिन इसी बात को जब टी.वी. पर या फिल्म में दिखलाना हो तो फिल्म निर्देशक कहानी के उस अंश को पात्रों की भाव–भंगिमा के माध्यम से प्रदर्शित कराएगा जिसे संवाद के रूप में व्यक्त नहीं किया गया हो। संवाद अंशों को पात्रों के द्वारा कहलवाया जाएगा।

यहाँ पर हल्कू और उसकी पत्नी (मुन्नी) के बीच जो बातचीत हो रही है उसे ही दृश्य माध्यम में पेश किया जा रहा है। इसलिए इसमें कहानी के अन्दर भी संवाद की भाषा पात्रों के अनुरूप लिखी गई है। इस भाषा में यह ध्यान रखा गया है कि बोलते समय भाषा का जो स्वरूप होता है, संवादों में भी वैसी ही भाषा प्रतिबिम्बित हो।

दृश्य माध्यम की भाषा की यह खासियत है कि इसकी भाषा बोलचाल के इतने करीब होती है कि सुनने वाले या देखने वाले को समझने में कोई कठिनाई न हो। इसमें दृश्य के साथ संवाद की भाषा का पूरा तालमेल होता है।

3.4.1 जनसंचार माध्यमों में भाषा का महत्त्व

सामान्य लोगों के लिए भाषा का प्रयोग – जनसंचार माध्यमों में भाषा का बहुत महत्त्व है। जनसंचार के माध्यमों – मुद्रित, श्रव्य और दृश्य में भाषा का प्रयोग अति सावधानी से किया जाना चाहिए। सामान्य तौर पर समाचार–पत्रों में एक ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए जिसे पढ़ने में सर्वसाधारण को कोई कठिनाई न हो। ऐसा इसलिए भी जरूरी है कि हिन्दी आज सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। यह देश की सम्पर्क भाषा भी है। सिनेमा और टी.वी. के जरिए इसका क्षेत्र और भी व्यापक हो गया है। न केवल हिन्दी प्रदेशों में बल्कि गैर हिन्दी भाषी प्रदेशों में भी इसका प्रचार–प्रसार काफी विस्तृत हुआ है। आज सिनेमा

और टी.वी. आदि के प्रसारण से इसका प्रभाव हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषा–भाषियों पर भी काफी बढ़ा है। इसलिए संचार माध्यमों में हिन्दी का प्रयोग करते हुए इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि इसके पाठक, श्रोता और दर्शक वैसे लोग भी हैं जिनका हिन्दी ज्ञान सामान्य स्तर का है।

सम्प्रेषण की क्षमता

जनता की भौगोलिक, शैक्षिक और सामाजिक स्तर में विभिन्नताएँ होती हैं। इन विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर जरूरी है कि संचार माध्यमों में भाषा का प्रयोग रचनात्मक ढंग से किया जाए। इसके लिए जरूरी है कि संचार की भाषा सहज और सरल हो। यदि भाषा में दुरूहता होगी तो समाचार–पत्र पढ़ने वाले, रेडियो सुनने वाले और सिनेमा या टी.वी देखने वाले दर्शकों के समक्ष बात को समझने में निश्चित रूप से कठिनाइयाँ होंगी। और यदि वे समझने में असफल रहेंगे तो सम्प्रेषण की समस्या खड़ी हो जाएगी। इसलिए आवश्यक है कि जनसंचार माध्यमों में प्रयोग की जाने वाली भाषा में सहजता और सरलता हो ताकि उसमें सम्प्रेषण की क्षमता बरकरार रह सके।

संचार माध्यमों की भाषा के स्वरूप में बदलाव

संचार माध्यमों की भाषा के स्वरूप में बदलाव भी नितान्त आवश्यक है। संचार के तीनों माध्यमों में भाषा का एक ही स्वरूप प्रभावी नहीं माना जाएगा। इसके लिए आवश्यक है कि कार्यक्रम विधा और उसके विषय में अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया जाए। जैसे कि समाचार–पत्र की भाषा और सम्पादकीय की भाषा का स्वरूप एक ही नहीं होगा। रेडियो में प्रसारित होने वाली वार्ता, समाचार, फीचर, नाटक आदि के लिए अलग–अलग भाषा का प्रयोग आवश्यक है। ठीक उसी तरह टेलीविजन के लिए भी भाषा–प्रयुक्ति में सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। इसके लिए आवश्यक है कि विधा के अनुरूप भाषा के स्वरूप में भी बदलाव लाया जाए।

भाषा प्रयोग में सावधानियाँ

संचार माध्यमों में लिखित और उच्चरित दोनो भाषाओं का प्रयोग होता है। इस दृष्टि (sound) से दोनों में अन्तर भी है। रेडियो और टेलीविजन में हमेशा उच्चरित भावना का प्रयोग होता है जबकि समाचार–पत्रों में लिखित भाषा का। श्रव्य और दृश्य माध्यमों की भाषा को हम सुनकर या देख–सुनकर अर्थ ग्रहण करते हैं लेकिन समाचार–पत्र को पढ़कर उसका अर्थ समझा जाता है। समाचार–पत्र में यह अवसर होता है कि हम जिस बात को न समझें उसे दुबारा–तिबारा पढ़ सकते हैं, परन्तु श्रव्य या दृश्य माध्यमों में प्रायः ऐसे अवसरों का अभाव होता है। इसलिए इसके लेखन में अतिशय सावधानियों की जरूरत है। जैसे :

(i) इन माध्यमों में प्रयुक्त होने वाली भाषा सरल, सहज और सम्प्रेष्य हो।

(ii) वाक्य–विन्यास जटिल न हो।

(iii) क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से बचा जाना चाहिए।

(iv) उच्चारणगत शुद्धता होनी चाहिए।

(v) वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों से बचना चाहिए। इसके साथ ही वर्तनी का एक मानक प्रयोग किया जाना चाहिए।

3.5 सारांश

सारांश के तौर पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों ने विकास के कई आयाम प्रस्तुत किए, जिसमें मुद्रित, श्रव्य और दृश्य माध्यमों की शुरूआत हुई। संचार माध्यमों की भाषा वही नहीं होती जो आमतौर पर हम बोलचाल में इस्तेमाल करते हैं। रोजमर्रा की जिन्दगी में भी लिखने और बोलने के लिए दो भिन्न–भिन्न भाषायी रूपों का प्रयोग होता है। मुद्रित और श्रव्य माध्यमों में एक–सी भाषा का प्रयोग नहीं होता। इसी प्रकार श्रव्य और दृश्य माध्यमों में भाषा–प्रयोग की दृष्टि से भिन्नता होती है। यह भिन्नता विधा और विषय के अनुसार होती है। लेकिन सबसे अहम बात यह है कि चाहे विधागत भिन्नता हो या विषयगत भिन्नता यह जरूरी है कि सबकी भाषा में सरलता और सहजता होनी चाहिए। भाषा में अलंकारिता नहीं होनी चाहिए। क्लिष्ट और दुरूह शब्द–प्रयोग से बचना चाहिए। लम्बे और जटिल वाक्य–विन्यास से भाषा में बोझिलता आती है। शिल्प–प्रयोग में भी सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार के माध्यमों का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

2. जनसंचार माध्यमों में प्रयुक्त होने वाली भाषा पर टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

3. जनसंचार माध्यमों में भाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए भाषा के बदलते स्वरूप एवं भाषा प्रयोग की सावध ाानियों पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

3.7 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग– दंगल झाल्टे

....

Course Code - 404 **Lesson No. 4**

Unit-I

श्रव्य माध्यम स्वरुप और विशेषताएं

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 श्रव्य माध्यम (अर्थ एवं स्वरूप)

4.4 श्रव्य माध्यम में भाषा की प्रकृति

4.5 सारांश

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य श्रव्य माध्यमों का विस्तृत परिचय देना है, जिससे अध्ययनरत विद्यार्थियों को श्रव्य माध्यमों विशेषतः रेडियो के इतिहास एवं विकास, उसकी भाषागत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त हो सके, जिसे आधार बनाकर वे स्वयं को विषय में निपुण बना सकें।

4.2 प्रस्तावना

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के अंतर्गत आने वाले श्रव्य माध्यम भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मुद्रित माध्यमों के पश्चात् आधुनिक संचार साधनों में श्रव्य माध्यमों का ही स्थान आता है। श्रव्य माध्यमों के अंतर्गत प्रमुख रूप से रेडियो, ऑडियो कैसेट, टेपरिकॉर्डर आदि को सम्मिलित किया जाता है। श्रव्य माध्यमों का अनेक प्रकार से समाचार और साहित्य के कार्यक्रमों के प्रसारण में प्रयोग किया जाता है। इनका उद्देश्य समाज के सुदूर से सुदूर क्षेत्रों में सूचनाओं, ज्ञान इत्यादि का प्रसारण करना है। बहुत हद तक श्रव्य माध्यमों ने एक जन

माध्यम के रूप में समाज का चेहरा बदलने में भी बड़ी भूमिका निभाई है। श्रव्य माध्यमों में सबसे महत्त्वपूर्ण रेडियो के प्रसारण का आविष्कार 1901 में इटली के मारकोनी नामक वैज्ञानिक ने किया था। प्रथम वाक् संकेत अटलांटिक के पार आलिंग्टन, वर्जीनिया और पेरिस के बीच सन् 1915 में भेजे गए। भारत में रेडियो का आगमन पराधीन भारत में ही हो गया, धीरे–धीरे इसका विकास हुआ। श्रव्य माध्यम में प्रयुक्त होने वाली भाषा का भी अपना विशेष महत्त्व है। यह इस प्रकार की होनी चाहिए कि श्रोताओं को अधिक एकाग्रचित होने की आवश्यकता न पड़े एवं सुनते समय कोई चित्र मस्तिष्क में उभरकर सामने आ जाए। अनेक साहित्यिक विधाओं का भी श्रव्य माध्यमों में रूपांतरण किया जा चुका है। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है रेडियो नाटक। जिसे मन का थियेटर कहा जाता है क्योंकि उसकी मूल प्रवृत्ति विचारपरक, मनोविश्लेषणात्मक है और यदि विचार, कथा या प्रस्तुतीकरण में गहराई नहीं है, तो रेडियो नाटककार को अपने श्रोता को खो देने के खतरे बढ़ जाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं तथ्यों पर विस्तार से विचार विमर्श करेंगे।

4.3 श्रव्य माध्यम (अर्थ एवं स्वरूप)

माध्यम के संबंध में विचार करते ही सवाल यह उठता है कि माध्यम कितने प्रकार के हैं एवं उनका स्वरूप क्या है ? माध्यम का स्वरूप उन उपकरणों से ही तय होता है, जिनका उपयोग माध्यम के रूप में किया जाता है। आज संचार माध्यम के तीन प्रमुख प्रकार हैं–

1) **शब्द–संचार माध्यम अथवा मुद्रण माध्यम–** समाचार पत्र–पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पम्फलेट्स आदि।

2) **श्रव्य संचार माध्यम–** रेडियो, आडियो कैसेट, टेपरिकॉर्डर आदि।

3) **दृश्य संचार माध्यम–** टेलीविजन, विडियो कैसेट, फिल्म आदि।

यहाँ पर हम श्रव्य माध्यमों के अर्थ एवं स्वरूप की विस्तृत चर्चा करेंगे।

श्रव्य संचार माध्यम – श्रव्य माध्यम ध्वनि पर आधारित जन संचार माध्यम होते हैं। यह श्रवणेन्द्रिय के जरिए विश्व को करीब लाते हैं। महानगर हो, नगर हो, गांव, कस्बा, खेत–खलिहान हो, जंगल हो, पहाड़ हो, नदी का किनारा या स्कूल– कॉलेज, बस–कार, टैक्सी, कहीं भी श्रव्य माध्यमों जैसे रेडियो की आवाज सहज रूप से आपके कानों तक पहुँचती है। सस्ता, सुविधाजनक और लोकप्रिय इस माध्यम से हज़ारों मीलों की दूरी भी समाप्त हो जाती है। यू कहें कि भूमंडलीकरण के इस दौर में सारा विश्व आपके करीब आ जाता है, करोड़ों–करोड़ लोग ज्ञान और मनोरंजन के एक साधन रेडियो द्वारा लाभ उठा सकते हैं। रेडियो प्रसारण जनसंचार का सर्वाधिक शक्तिशाली संचार माध्यम है। भारत जैसे विकासशील देश में ऑल इंडिया रेडियो की सूचना देने, शिक्षित करने तथा मनोरंजन करने के माध्यम के रूप में अत्यधिक महत्ता है। जनसेवा प्रसारक के रूप में राष्ट्र के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया में यह अपना योगदान दे रहा है।

वर्तमान में दसवीं पंचवर्षीय योजना में इसके मुख्य बिंदु इस प्रकार निर्धारित किए गए हैं–

- सीमांत एवं पहाड़ी क्षेत्रों में मीडिया वेब प्रसारण सेवा का विस्तार।
- एफ.एम रेडियो प्रसारण को देश की आधी आबादी तक पहुँचाना।
- निर्माण तकनीक को बेहतर करने के लिए डिजिटल तकनीक का प्रयोग करना तथा रेडियो को इंटरएक्टिव बनाना।
- AIR सेवाओं को इंटरनेट पर उपलब्ध कराना ।
- जनसेवा प्रसारण की भूमिका को और बेहतर बनाने हेतु बेहतर कार्यक्रमों का निर्माण करना।

4.4 श्रव्य माध्यम में भाषा की प्रकृति–

श्रव्य माध्यमों में संदेश देखे नहीं बल्कि सुने जाते हैं। इसलिए श्रोता अपना कोई भी कार्य करते हुए इसे सुन सकता है। भारतीय संदर्भ में यह श्रमजीवी जन के लिए अत्यंत उपादेय है जिसमें श्रम करता हुआ व्यक्ति अपना कार्य रोके बिना जानकारी प्राप्त कर सकता है, मनोरंजन कर सकता है। निरक्षर और दृष्टिहीन व्यक्तियों के लिए रेडियो एक वरदान है। श्रव्य माध्यम होने के कारण रेडियो की भाषा भी अति विशिष्ट है, क्योंकि समाचार पत्र में छपे समाचार, पुस्तकों में छपी सूचनाओं को पाठक अनेक बार पढ़ सकता है, यदि उसे कोई बात/शब्द समझ नहीं आती तो वह पुनः प्रिंट कॉपी को पढ़ सकता है, परंन्तु श्रव्य माध्यमों के साथ यह संभव नहीं है, इसलिए श्रव्य माध्यमों की भाषा में स्पष्टता होनी चाहिए। स्पष्टता का अर्थ है कि वाक्य छोटे–छोटे एवं सारगर्भित होने चाहिए। मौखिक संप्रेषण पुनरावृत्ति की मांग करता है ताकि श्रोता के लिए सूचनाएँ बोधगम्य हो जाए।

- सूचना में प्रयुक्त व्यक्ति का नाम बार–बार लिया जाए।
- सर्वनाम से काम न चलाया जाए क्योंकि श्रोता आसानी से नाम को भूल सकते हैं।
- वाक्य जटिल और संयुक्त न हो।
- कर्ता, कर्म, क्रिया के बीच में दूरी न हो।
- शब्दों के माध्यम से चित्र निर्माण की क्षमता होनी चाहिए ताकि श्रोता अपनी कल्पना से उन दृश्यों को समझ सकें।
- गंभीर से गंभीर विषय को अत्यंत सरल, सहज और संवादात्मक शैली में प्रस्तुत करना चाहिए। पांडित्यपूर्ण शैली श्रोताओं को वार्ता से विमुख कर देगी।

उपर्युक्त, निम्नलिखित, उपरोक्त आदि शब्द रेडियो की भाषा के लिए बिल्कुल अर्थहीन हैं, क्योंकि रेडियो में स्थान की नहीं बल्कि समय की संकल्पना होती है, इसलिए ऊपर–नीचे के स्थान पर पहले और बाद में इस तरह के शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

4.5 सारांश

श्रव्य माध्यमों में रेडियो संचार का एक सशक्त माध्यम है। जो लोगों को पारस्परिक अनुभवों द्वारा परस्पर जोड़ता है। यह ऐसे विषय प्रदान करता है, जिन पर संवाद हो सके। यह माध्यम जनसामान्य का आवश्यक कारक बन चुका है। चाहे हम घर हों या बाहर, कहीं जा रहे हों या कोई काम कर रहे हों, रेडियो एक साथी एवं सहयोगी का कार्य करता है। मात्र शिक्षित ही नहीं, निरक्षर व्यक्ति भी इस माध्यम से आत्मीयता रखते है। हमारे देश में ही नहीं बल्कि विश्व के प्रायः हर देशों में रेडियों प्रसारण की स्थिति में क्रान्तिकारी प्रगति हुई है। इस जनमाध्यम को आज एक व्यापक समाज रुचिपूर्वक अपना चुका हैं।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. श्रव्य माध्यम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भाषा की प्रकृति पर विचार करें ।

....

....

....

....

....

....

2. श्रव्य माध्यम से आप क्या समझते हैं ।

....

....

....

....

....

....

....

4.6 पठनीय पुस्तकें

1) फीचर लेखन – डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. सुनील कुमार तिवारी, संजय प्रकाशन, दिल्ली

2) भाषा–प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

3) संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्र प्रकाश मिश्र, द्वितीय संस्करण–2006, संजय प्रकाशन, दिल्ली

4) जन पत्रकारिता, जन संचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, संजय प्रकाशन, दिल्ली

5) हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम (भाग–1) – संपादित डॉ. वेद प्रताप वैदिक, संस्करण–1997, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली

6) रेडियो और दूर–दर्शन पत्रकारिता – डॉ. हरिमोहन, प्रथम संस्करण–1997, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली

7) मीडिया लेखन–कला – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, डॉ. पवन अग्रवाल, संस्करण–2001, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ

8) जनसंचार के सामाजिक संदर्भ – जवरीमल्ल पारेख, संस्करण–2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

Course Code - 404 **Lesson No. 5**

Unit-I

रेडियो का विकास एवं रेडियो नाटक

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्‌देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 रेडियो का विकास

5.4. रेडियो नाटक

5.5 साहित्यिक विधाओं का रेडियो में रूपांतरण

5.6 निष्कर्ष

5.7 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

5.8 लघु–उत्तरीय प्रश्न

5.9 दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

5.10 पुस्तक सुझाव

5.11 पठनीय पुस्तकें

5.1 उद्‌देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य श्रव्य माध्यमों का विस्तृत परिचय देना है, जिससे अध्ययनरत विद्यार्थियों को श्रव्य माध्यमों विशेषतः रेडियो के इतिहास एवं विकास, उसकी भाषागत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त हो सके, जिसे आधार बनाकर वे स्वयं को विषय में निपुण बना सकें।

5.2 प्रस्तावना

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के अंतर्गत आने वाले श्रव्य माध्यम भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मुद्रित माध्यमों के पश्चात् आधुनिक संचार साधनों में श्रव्य माध्यमों का ही स्थान आता है। श्रव्य माध्यमों के अंतर्गत प्रमुख रूप से रेडियो, ऑडियो कैसेट, टेपरिकॉर्डर आदि को सम्मिलित किया जाता है। श्रव्य माध्यमों का अनेक प्रकार से समाचार और साहित्य के कार्यक्रमों के प्रसारण में प्रयोग किया जाता है। इनका उद्देश्य समाज के सुदूर से सुदूर क्षेत्रों में सूचनाओं, ज्ञान इत्यादि का प्रसारण करना है। बहुत हद तक श्रव्य माध्यमों ने एक जन माध्यम के रूप में समाज का चेहरा बदलने में भी बड़ी भूमिका निभाई है। श्रव्य माध्यमों में सबसे महत्त्वपूर्ण रेडियो के प्रसारण का आविष्कार 1901 में इटली के मारकोनी नामक वैज्ञानिक ने किया था। प्रथम वाक् संकेत अटलांटिक के पार आलिंग्टन, वर्जीनिया और पेरिस के बीच सन् 1915 में भेजे गए। भारत में रेडियो का आगमन पराधीन भारत में ही हो गया, धीरे–धीरे इसका विकास हुआ। श्रव्य माध्यम में प्रयुक्त होने वाली भाषा का भी अपना विशेष महत्त्व है। यह इस प्रकार की होनी चाहिए कि श्रोताओं को अधिक एकाग्रचित होने की आवश्यकता न पड़े एवं सुनते समय कोई चित्र मस्तिष्क में उभर कर सामने आ जाए। अनेक साहित्यिक विधाओं का भी श्रव्य माध्यमों में रूपांतरण किया जा चुका है। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है रेडियो नाटक। जिसे मन का थियेटर कहा जाता है क्योंकि उसकी मूल प्रवृत्ति विचारपरक, मनोविश्लेषणात्मक है और यदि विचार, कथा या प्रस्तुतीकरण में गहराई नहीं है, तो रेडियो नाटककार को अपने श्रोता को खो देने के खतरे में बढ़ जाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं तथ्यों पर विस्तार से विचार विमर्श करेंगें।

5.3 रेडियो का विकास

रेडियो प्रसारण का आविष्कार 1901 में इटली के मारकोनी नामक वैज्ञानिक ने किया था। प्रथम वाक् संकेत अटलांटिक के पार आलिंग्टन, वर्जीनिया और पेरिस के बीच सन् 1915 में भेजे गए। प्रारंभ में प्रसारण मात्र कौतूहल था। बाद में इसने खेल का दर्जा लिया। ऐसा शायद इसलिए रहा कि पहले शब्द नहीं थे मात्र मोर्स कोड की डॉट प्रणाली थी। शब्दों द्वारा रेडियो प्रसारण का प्रयोग 1933 ई. में जर्मनी ने किया था। यह प्रसारण युद्धजनित तैयारी हेतु प्रयोग किया जाता रहा। 1920 ई. के आसपास से यूरोप, अमेरिका और एशिया में काफी शोध कार्य किए गए जिसके परिणामस्वरूप रेडियो ने असाधारण प्रगति की। बी.बी.सी. (British Broadcasting Corporation) आज विश्व की सर्वश्रेष्ठ रेडियो प्रसारण संस्थाओं में से एक है। 1923 में इंग्लैंड के डाक विभाग के प्रयासों के फलस्वरूप इसकी नींव पड़ी। 'सूचना', 'शिक्षा' एवं 'मनोरंजन' के लक्ष्यों को बी.बी.सी. ने सामने रखा तथा समय, तथ्य और उच्चारण की शुद्धता पर बल दिया। ठीक इन्हीं उद्देश्यों को भारत में 'आकाशवाणी' ने भी अपनाया।

भारत में इसका आरंभ निजी कंपनियों ने किया था और 1921 में एक संगीत कार्यक्रम का भी इससे प्रसारण किया गया था। आरंभ में भारतीय रेडियो प्रसारण में बी.बी.सी. का भी गहरा सहयोग रहा था। प्रसारण माध्यम के रूप में इसके महत्त्व को उस समय की ब्रिटिश सरकार भी समझती थी। आरंभ में रेडियो के

संबंध में भारतीय जनता ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया था क्योंकि उस समय यह देश स्वाधीनता की अपनी समस्याओं से जूझ रहा था फिर भी जनवरी 1931 से बम्बई केन्द्र से निरंतर कार्यक्रमों का प्रसारण होता था। रात्रि 9.20 से 11 बजे तक भारतीय भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे जिनमें शास्त्रीय संगीत और सुगम संगीत के साथ ही बच्चों के कार्यक्रम शामिल होते थे। रात्रि 9 बजे हिंदी में समाचारों का प्रसारण किया जाता था। 23 फरवरी 1946 को ऑल इंडिया रेडियो, सूचना एवं कला विभाग के अधीन हो गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ऑल इंडियो रेडियो का स्वरूप पर्याप्त रूप से विकसित हो चुका था और 14 रेडियो केन्द्र कार्य कर रहे थे। स्वतंत्र भारत में रेडियो प्रसारण के विकास के लिए वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में एक समिति बनी थी। स्वतंत्र भारत का पहला प्रसारण केन्द्र 1 नवंबर 1947 को जालंधर में खोला गया और फिर यह सिलसिला लगातार चलता रहा। जब जम्मू, पटना, कटक, अमृतसर, शिलांग, नागपुर, विजयवाड़ा, पणजी, इलाहाबाद, अहमदाबाद, मैसूर, हैदराबाद, विशाखापटनम, तूतीकोरिन और कोलंबो तक में भारतीय प्रसारण आरंभ हुआ। रेडियो प्रसारण को पंचवर्षीय योजनाओं में भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। 15 अगस्त 1993 से एक विशेष हिंदी समाचार पूल स्थापित हुआ और राष्ट्रमंडल संगीत प्रतियोगिता कॉमनवेल्थ हैजबाट अस टुगैदर को पहला स्थान मिला। 17 जनवरी 1933 से दिल्ली में एक केन्द्र स्थापित किया गया जहां से फोन इन सेवा आरंभ हुई, जिसके अनुसार कार्यक्रम के बीच में फोन करके प्रश्न पूछना संभव था। 24 फरवरी 1933 से आकाशवाणी दिल्ली में एक एफ.एम. चैनल आरंभ हुआ जो केवल संगीत के लिए समर्पित है।

सन् 2000 में जो 20वीं शताब्दी का अंतिम वर्ष था, अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं को आकाशवाणी ने व्यापक रूप से प्रसारित किया था। 4 नवंबर, 2000 को 23 स्थानों पर आमंत्रित व्यक्तियों के सामने आकाशवाणी के संगीत सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसकी प्रसारण व्यापकता इतनी बढ़ी कि यह लगभग 99 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुँची गई, आज आकाशवाणी का तंत्र विश्व के सबसे बड़े तंत्रो में से एक है।

5.4 रेडियो नाटक

रेडियो नाटक से आशय है, वे नाटक जो रेडियो या आकाशवाणी कार्यक्रम के निमित्त तैयार किये जाते हैं। नाटक को रूपक भी कहा जाता है। ऐसी रचनाएँ जो रेडियो टेकनीक की दिशा में कुछ नये प्रयोगों में लिखी जाती हैं। जब डॉक्यूमेंटरी फिल्मों का आविष्कार हुआ तो उन्हीं के आधार पर रचनाएँ लिखकर प्रसारित की जाने लगीं और वही आगे रेडियो नाटक/रूपक कहलायीं। इनमें सब प्रकार की वास्तविकताओं का नाटकीय रूप उपस्थित किया जाता है।

आकाशवाणी के प्रसारणों में रेडियो नाटकों का प्रमुख स्थान होता है। यह विधा सामान्य श्रोता तथा विशिष्ट वर्ग दोनों में लोकप्रिय हुई है। रेडियो रूपक तथा वृत्त रूपक ऐसी विधाएं हैं – जिनमें नैरेशन नाटक, भेंटवार्ता, संगीत, कविता तथा ध्वनि–प्रभाव आदि सभी प्रकार की श्रवण शैलियों का उपयोग किया जा सकता

है। नाटक, रूपक तथा विशिष्ट कार्यक्रमों में कलाकार/पार्टी का मुखिया तथा पूर्व प्रसारण तिथि भी दर्शायी जाती है। सब की प्रस्तुति के लिए अग्रिम सूची तैयार कर ली जाती है। जनवरी से मार्च तक की तिमाही अनुसूची गत अक्टूबर से पहले जमा की जाती है; ताकि अनुबन्ध पत्र, पत्र आदि समय से भेजे जा सकें। अनुसूची केन्द्र निदेशक द्वारा अनुमोदित की जाती है। इसमें कार्यक्रम का नाम, शीर्षक, उद्देश्य, विषय, प्रस्तुति–समय, अवधि, आवृत्ति तथा भाग लेने वालों के नाम आदि का पूर्ण विवरण दिया जाता है। रेडियो नाटक 15–30 मिनट तक का हो। 15–20 पृष्ठ से अधिक न हो।

सभी कलाकारों की स्वर परीक्षा होती है। परीक्षा में कलापक्ष तथा प्रस्तुति विशेष पर विशेष ध्यान दिया जाता है। कुछ प्रक्रियाओं के लिए लेखन अनिवार्य होता है। उनमें एक नाटक भी है। रेडियो नाटक भी मूलरूप से नाटककार की रचना होती है। यह एक कहानी रचता है। अलग–अलग पात्रों को गढ़ता है, पाँचों के चरित्रों का विकास करता है। रेडियो नाटक में भी नाटक के सभी गुण होते हैं। नाटक मूलतः संवाद और अभिनय पर आश्रित होता है। प्राचीन काल में जब रेडियो नहीं था, नाटक की रचना मंच पर खेलने के लिए की जाती थी। आधुनिक युग में नाटक मंच पर खेले जाने के अतिरिक्त पढ़ने के लिए मुद्रित भी होने लगे। इन दोनों ही स्थितियों में नाटक में होने वाले कार्यकलाप का संकेत नाटककार संवादों के साथ कोष्ठक में निर्देशों के रूप में लिखते हैं – जो मंच पर अभिनेता की सहायता करते हैं तथा पढ़ने में पाठक को कार्यकलाप समझाने में सहायक होते हैं। रेडियो ने भी नाटक की विधा को अपनाया, किन्तु रेडियो के केवल श्रवणीय होने के कारण नाटक की प्रचलित लेखन–शैलियाँ इसके लिए अपर्याप्त थीं। इसलिए रेडियो नाटक में संवाद के अतिरिक्त नाटक के अन्य कार्यकलापों को भी संवाद और ध्वनियों के माध्यम से अभिव्यक्त करना आवश्यक हो गया। इसकी रचना करते हुए नाटककार को नाटक के ऐसे कार्यकलापों के लिए ध्वनियों और संवादों की कल्पना करनी पड़ती है – जिसके लिए मंच पर ध्वनि या संवाद की कोई आवश्यकता नहीं होती। रेडियो नाटक में नाटककार इन ध्वनियों के लिए निर्देश लिख देता है। अभिनेता और विशेष रूप से प्रस्तुतकर्ता नाटक प्रस्तुत करते हुए सामान्यतः इन निर्देशों का पालन करके नाटक में उन ध्वनियों का प्रयोग करता है – जिनसे नाटक संप्रेषणीय बनता है। इसलिए जिस प्रकार मंत्र के लिए नाटक का लेखन आवश्यक है, उसी प्रकार रेडियो के लिए भी। यहाँ तक कि जब मंच नाटक रेडियो पर प्रस्तुत होना होता है, तो उसका भी पुनर्लेखन आवश्यक हो जाता है।

किसी भी विधा को नाट्य रूप दिया जा सकता है। कथा साहित्य को नाट्य रूप देने में अधिक सुविधा रहती है। 'रामायण' और 'महाभारत' के नाट्य रूप विश्व भर में लोकप्रिय हो रहे हैं। पौराणिक कथाएँ नाट्य रूप में नवजीवन प्राप्त कर रही हैं।

अच्छे लेखन के बाद भी नाटक में पात्रों की उपयुक्त ध्वनियों, अभिनय में भावों के अनुकूल उतार–चढ़ाव और ध्वनि प्रभावों के उपभोग में कुशलता का अभाव रहने पर श्रोता उस नाटक से प्रभावित नहीं होंगे। इसके विपरीत पात्रों के उपयुक्त ध्वनियों, अभिनय में भावों के अनुकूल उतार–चढ़ाव और ध्वनि प्रभावों के कुशल

प्रयोग के उपरान्त नाटक के मूल लेखन में कसावट, उत्सुकता आदि तत्त्वों का अभाव होने पर नाटक श्रोता को प्रभावित नहीं करेगा।

नाटक का विषय, चरित्र और लक्ष्य श्रोता वर्ग के अनुरूप हो। समय सीमा के भीतर नाटक के कथानक, संवाद, चरित्र, देशकाल और वातावरण, भाषा–शैली और उद्देश्य को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करना होता है। इसके आने पर नाट्य विधा को नवजीवन मिल गया है। मनोरंजन के साथ जनमानस के संस्कार और परिष्कार का कार्य नाटक के माध्यम से प्रारम्भ किया गया। एक ओर समसामयिक प्रश्नों, समस्याओं और चुनौतियों के प्रति रेडियो नाटक द्वारा जागरुकता उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है, तो दूसरी ओर ऐतिहासिक, पौराणिक जीवन की स्थितियों ने साक्षात्कार सम्भव बनाने का प्रयास हुआ। उपेन्द्र नाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, गिरिजाकुमार माथुर, विनोद रस्तोगी, केशव चन्द्र वर्मा, हरिश्चन्द्र खन्ना, रेवती शरण शर्मा, चिरंजीत, सिद्धनाथ कुमार, कृष्ण कुमार श्रीवास्तव, सत्येन्द्र शरद और मोहन राकेश ने बड़ी संख्या में रेडियो नाटक लिखकर हिन्दी नाटकों को बहुत बल दिया है।

रेडियो नाटकों के अतिरिक्त रेडियो पर अन्य नाट्य रूप भी प्रस्तुत किये जाते हैं – जिन्हें शिल्प के आध ार पर निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है – रेडियो रूपक, रेडियो रूपान्तरण, झलकियाँ, रेडियो धारावाहिक, काव्य नाटक, संगीत रूपक, रेडियो फैंटसी आदि।

रेडियो नाटक एक उच्चकोटि की साहित्यिक विधा है, जिसके द्वारा विभिन्न विषयों, व्यक्तियों, घटनाओं, भावों, वातावरणों को प्रस्तुत किया जा सकता है। रेडियो नाटक की अपनी सीमाएं एवं सुविधाएँ हैं।

इसकी पहली सीमा है कि यह मात्र माइक के भरोसे है, दूसरी सीमा है कि यह केवल श्रवण को माध्यम बनाता है, इसके पास शब्दों के अलावा कोई साधन नहीं होता, तीसरी सीमा है कि इसका श्रोता अनेक कार्यों में फंसा हो सकता है। दूसरी ओर इसे बहुत–सी सुविधाएं भी प्राप्त हैं। रेडियो नाटक के श्रोताओं को मंचीय नाटक के दर्शकों की तरह प्रकाश, पोशाक, सेट्स आदि पर ध्यान नहीं बंटाना पड़ता है, यानि इसके श्रोता अधिक आत्मीय होते हैं। यह अपने को अधिक प्रभावी बनाने के लिए संगीत आदि का सहारा ले सकता है। रेडियो नाटक में स्मृति–दृश्य, स्वप्न आदि की प्रस्तुति संभव है, जिससे यह अपने श्रोताओं को अधिक विशाल मनोभूमि पर रसबोध करा सकता है। रेडियो–नाटक के लिए किसी हॉल या ओपन थियेटर की जरूरत नहीं होती है। यह रेडियो के अपने स्टूडियो में सस्वर किया जाता है। रेडियो नाटक में सेट आदि के परिवर्तन की जरूरत ही नहीं होती। यहां सब कुछ सस्वर है। रेडियो नाटक के मुख्य तत्व इस प्रकार है :–

(क) **शीर्षक** – रेडियो नाटक का शीर्षक सार–संक्षेप होने के साथ–साथ ऐसा आकर्षक होना चाहिए कि श्रोता सुनकर ही प्रभावित हो जाए।

(ख) **प्रारंभ** – रेडियो नाटक का प्रारंभ काफी सोच समझकर करना चाहिए, क्योंकि प्रारंभ में ही श्रोता तय करता है कि वह नाटक सुने या सेट बंद कर दे।

(ग) **विषय** – विषय अथवा कथावस्तु का चुनाव प्रत्येक लेखक अपनी रुचि के अनुसार करता है, रेडियो संहिता की सीमा के भीतर रहकर जो भी लिखा जाए, नाटक के लिए चुना जा सकता है।

(घ) **दृश्यांतर** – रेडियो नाटक में दृश्यांतर के लिए अधिक रूकावट नहीं होती है, किंतु इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि दृश्य तभी बदला जाए, जब यह एक वातावरण बनाकर अपनी बातें कह चुका हो।

(ङ) **पात्र** – नाटक में पात्रों का सबसे बड़ा महत्त्व है। कहा जा सकता है कि नाटक पात्रों के क्रियाकलाप की ही देन है। इसलिए पात्रों के निर्माण एवं प्रस्तुति के प्रति एक रेडियो नाटक लेखक को अत्यंत सावध ाान रहना चाहिए जहां तक बन पड़े कम पात्र रखे जाएं।

(च) **संवाद** – संवाद संक्षिप्त, सरल और साफ होने चाहिएं। मंच पर हाव–भाव प्रकट हो सकते हैं, परंतु रेडियो नाटक में ऐसा संभव नहीं है, संवाद ऐसा होना चाहिए जो कि पात्रों को पूरी तरह उपस्थित कर सके। पात्रों के आने–जाने की सूचना भी संवादों के द्वारा दी जानी चाहिए, इसमें शब्दों से आकृति उभारी जा सकती है। उदाहरणतः एक आने वाले पात्र के बारे में यह कहना लो! यह कौन अर्जुन आ रहा है? अर्जुन कहने से आगंतुक का एक नक्शा उभर आता है। प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक शब्द साफ–साफ और तथ्यपरक होना चाहिए। संदेश की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। 'नरो वा कुंजरो वा' की स्थिति रेडियो नाटक के लिए ठीक नहीं प्रश्नवाचक, आश्चर्यबोधक, फुसफसाहट वास्तविक लगने चाहिए।

(छ) **ध्वनि संगीत** – संगीत तथा ध्वनि का प्रयोग रेडियो नाटक में मानसिकता की तैयारी के लिए होना चाहिए। इससे भावनात्मक आवेग उत्पन्न किया जाना चाहिए। ध्वनि से चित्रमयता लाने की चेष्टा की जानी चाहिए।

1. **रेडियो नाटक के उपकरण**

रेडियो नाटक में प्रयुक्त होने वाले श्रव्य साधन तीन हैं – (प) भाषा, (पप) ध्वनि, (पपप) स ंगीत। रेडियो नाटक में इनका अधिक कुशल और तकनीकी प्रयोग अपेक्षित होता है।

(i) **भाषा** – नाटक में चरित्र के अनुरूप भाषा का प्रयोग उचित होता है। चौराहे पर खड़े अनपढ़ व्यक्ति की भाषा और किसी पढ़े–लिखे नागरिक की भाषा में अन्तर होता है। यदि लेखन में इस अन्तर को ध्यान में न रखकर दोनों से एक सी भाषा बुलवाई जाये, तो रेडियो में ही नहीं मंच पर भी और पढ़ने में भी वह सारहीन लगेगी, ऐसी भाषा प्रभावशून्य होती है। वह कथ्य को संप्रेषित नहीं कर पाती है। भाषा आम आदमी की होनी चाहिए। विविध पात्रों की भाषा भी विविध हो। सम्बोधन भी प्रासंगिक और पात्रानुसार हो। इसमें पुस्तकीय या शास्त्रीय रूप से बचना चाहिए। यद्यपि, तथापि, कदापि, अतएव, अग्र, पश्च, यथोचित, किंचित, तथोपरि आदि शब्द रूपों से बचना चाहिए। रेडियो, माध्यम बड़ा व्यापक और लचीला माध्यम है। अन्य कार्य

करते, पढ़ते, चलते समय भी लोग इसका उपयोग करते हैं। पण्डित से मूर्ख तक इसके श्रोता होते हैं। इससे इसकी भाषा न जटिल हो, न फूहड़, अश्लील और गँवारु। वाक्य छोटे–छोटे, औपचारिक, सरल, पूर्ण, अभिधा प्रधान व सर्वगम्य हों। इसके साथ भाषा का मानक रूप बने रहना चाहिए। अतः भाषा व्याकरण सम्मत और बोधगम्य हो। इसकी भाषा में दृश्य उत्पन्न करने की शक्ति हो। ध्वनि प्रभाव से भी दृश्य उत्पन्न करने में सहायता मिलती है। अतः इसकी भाषा सरल के साथ–साथ ध्वन्यात्मक, चित्रात्मक और विश्वात्मक हो। इससे परिवेश और पात्रों के मनोभावों का पता चलता है। एक उदाहरण –

शहनाई का स्वर उभरता है। तेज। फिर मन्द चहल–पहल टैक्सी चलने, फिर रुकने का स्वर।

माँ! आओ, बहू, आराम से ...... अरे यह

पल्लू कहाँ से फँस गया ...... यह लो ......।

निकल गया अब आराम से उतरो।

(कुछ स्वर) टैक्सी जाने का स्वर।

ग ग ग

(ii) **ध्वनि** – रेडियो मूलतः ध्वनि माध्यम है। ध्वनि से ही श्रोता सब कुछ जान पाता है। ध्वनि प्रभावों का प्रयोग रेडियो नाटक, रेडियो फीचर, डाक्यूमेंट्री जैसे नाट्य रूपों में किया जाता है। इनका प्रयोग रेडियो–नाटककार या लेखक, परिपार्श्व अथवा वातावरण का निर्माण करने, घटनाचक्र और कार्य व्यापार में सघनता लाने के लिए करता है। रेडियो एक अन्धा माध्यम है – इसलिए इस प्रकार की ध्वनियाँ यह आभास कराने में सक्षम होती हैं कि नाटक का क्रियाकलाप किसी ठोस धरातल पर हो रहा है, हवा में नहीं। दरवाजे का खुलना या बन्द होना, चाय पीते समय कप–प्लेट की आवाज, गोली चलने की आवाज, रेलगाड़ी, मोटर, स्कूटर, टेलीफोन, आँधी–तूफान का प्रभाव, पक्षियों का कलवरव, नदी–नाले, वर्षा आदि ऐसे अनगिनत ध्वनि प्रभाव हैं – जिनसे नाटक को जीवन्त बनाया जा सकता है। अतः ध्वनि–प्रभाव ही वह विशिष्ट घटक है – जिसका प्रयोग रेडियो नाटक पर प्रमुख रूप से नाट्य उत्पादन में करता है। ध्वनि प्रभाव से दृश्यहीनता का अभाव नष्ट हो जाता है, जैस कोई भीतर आने के लिए दरवाजा खटखटाता है, तो अनेक सम्भावनाएँ उत्पन्न होती हैं – लड़का है या लड़की? मिलने आया है या मारने? चोरी छिपे मिलने आया है या खुले आम? जल्दी में है या रुकेगा? ध्वनि–प्रभाव का उपयोग रेडियो नाटक, रेडियो रूपक, वृत्त रूपक (डाक्यूमेण्ट्री) में देखने को मिलता है।

ध्वनि–प्रभाव : (i) सम्पोषक ध्वनि–प्रभाव (ii) स्वतन्त्र अथवा सूच्य ध्वनि–प्रभाव।

(i) **सम्पोषक ध्वनि–प्रभाव** – रेडियो नाटक का आधार संवाद होता है – इसी से कथ्य साकार और सजीव बनता है। यह कार्य दो प्रकार से होता है – (i) ध्वनि प्रभाव प्रयोग से पूर्व, पात्रों की बातों से उसका आभास

करा दिया जाता है। (ii) ध्वनि प्रभाव के आरम्भ होने पर उसके बीच में अथवा उसके अन्त में संवादों द्वारा उसकी पुष्टि कर दी जाती है। ध्वनि के साथ संवाद में उसका उल्लेख हो, तभी पानी, दूध या मदिरा का भेद स्पष्ट होगा। इसी से इनको संपोषक ध्वनि–प्रभाव कहा जाता है। ध्वनि और संवाद एक–दूसरे को कहने वाले हैं।

(ii) **स्वतन्त्र अथवा सूच्य ध्वनि–प्रभाव** – रेडियो–नाटककार ध्वनि–प्रभावों का प्रयोग इस प्रकार करता है कि नाट्य–व्यापार भी चलता है और बीच–बीच में ध्वनियाँ आकर वातावरण का निर्माण भी करती चलती हैं, किन्तु किसी भी संवाद में इनका वर्णन अथवा स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। इससे कथ्य सघन व प्रभावकारी बनता है। उदाहरण के लिए मोहन राकेश के रेडियो नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' का अन्तिम भाग दर्शनीय है। इसमें ध्वनि प्रभाव से कथ्य में गाम्भीर्य और पात्रों की मनोदशाओं (उथल–पुथल) को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। सांकेतिकता को पाठक या श्रोता अपनी प्रतिभा से समझ लेगा, ऐसा माना जाता है। ध्वनि प्रभावों की व्याख्या की लेखक स्वयं नहीं करता, इससे शिथिलता आ जाती है ध्वनि–प्रभाव से पाठक या श्रोता नाटक से सीधे जुड़कर नये–नये सौंदर्य की खोज करता है।

ध्वनि प्रभाव का प्रयोजन – रेडियो नाटककार उन्हीं ध्वनि–प्रभावों का प्रयोग करता है – जो नाट्य व्यापार तथा उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनिवार्य हो। देश–काल और वातावरण के अनुसार ही प्रस्तुति होनी चाहिए।

ध्वनि–प्रभाव के उद्देश्य – (i) वातावरण का निर्माण, (ii) कथा विस्तार, (iii) मनोभावों की अभिव्यंजना।

(iii) **संगीत** – रेडियो नाटक में इसकी अहम् भूमिका होती है। इससे नाटक में सरसता, प्रभावात्मकता, आकर्षण आदि की वृद्धि होती है। वाद्य, संगीत तथा गायन दोनों प्रकार के संगीत का रेडियो नाटक में उपयोग किया जाता है। रेडियो नाटक में संगीत का प्रयोग निम्नलिखित प्रयोजन के निमित्त किया जाता है –

(i) आरंभ, अंत तथा दृश्य परिवर्तन की सूचना देना।

(ii) भावोछी पन तथा अंतर्द्वन्द्व की व्याख्या करना।

(iii) देशकाल का संकेत करना।

(iv) विशिष्ट चरित्रों के व्यक्तित्व का परिचय देना।

(v) वातावरण का निर्माण करना।

संगीत का व्यवहार स्वतंत्र रूप में संवादों की पृष्ठभूमि में और ध्वनि–प्रभाव के साथ मिश्रित रूप में किया जा सकता है।

2. रेडियो नाटक की विशेषताएँ

रेडियो नाटक नाट्यविधा का ही एक रूप है। लेकिन इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं – जिनके कारण यह अन्य से भिन्न हो जाता है, इसका लेखन भी भिन्न हो जाता है –

1. यह दृश्य तत्त्व से मुक्त है, मात्र श्रव्य तत्त्व से युक्त है। यह दृश्य काव्य नहीं हैं।

2. इसकी प्रस्तुति का माध्मय मंच न होकर रेडियो होता है। पात्र और श्रोता का साक्षात्कार नहीं होता है। इसमें दर्शक के स्थान श्रोता होता है।

3. इस विधा में दृश्य तत्त्व नहीं होता – फिर भी श्रव्य–तत्त्व से काम चल जाता है। यह सुनाकर उन रूपों का अनुभव कराता है – जिनको नाटकों में दिखाया जाता है। संवेदना की प्रस्तुति होती है।

4. इसमें मंच–सज्जा, दृश्यबंध, प्रकाश व्यवस्था आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती, न तो दर्शक दीर्घा या ऐसे किसी स्थान की आवश्यकता होती है। दृश्य माध्यम न होने के कारण नाट्य प्रस्तुति की सामूहिक कला से जुड़े व्यक्ति – रंग परिकल्पनाकार, मंच सज्जाकर, प्रकाश व्यवस्थापक आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती है। दर्शक–श्रोता में बदल जाते हैं और नाटक देखने का सामूहिक अनुभव वैयक्तिक अनुभव में परिवर्तित हो जाता है। रेडियो नाटक स्टूडियो में प्रस्तुत होता है और सहायक कर्मियों के रूप में इसे ध्वनि व्यवस्थापकों और संचालकों की आवश्यकता पड़ती है।

5. इससे दृश्य विधान नहीं होता। इससे देश, काल की सीमाओं से मुक्त होता है। जिन दृश्यों को नाटक नहीं दिखा सकता – उनको भी रेडियो नाटक प्रस्तुत कर देता है। अतः मानवीय कल्पनाओं में जो भी संभव है – वह इसमें प्रस्तुत है। इस प्रकार इसमें प्रस्तुति को अभूतपूर्व विस्तार मिला है। 'दि आर्ट ऑफ रेडियो' नामक पुस्तक में मैकह्वाइनी ने लिखा है – "इसने रूप, वर्णन, संवेग एवं विचार की ऐसी सृष्टि संभव कर दी है – जो देश एवं क्षमता की नियंत्रक सीमाओं से नहीं बँधी है। ध्वनि रेडियो ने अपनी प्रकृति से ही लेखक को उसकी कल्पना के सदृश्य विस्तृत क्षितिज प्रदान किया है। व्यावहारिक दृष्टि से इसमें दृश्य–योजना, प्रकाश आदि की भौतिक समस्याएँ नहीं हैं, सौंदर्यपरक दृष्टि से इसके आयाम असीम एवं अपार है।" इसमें सुनने के साथ–साथ बिम्ब बनता जाता है।

6. इसमें श्रोता निजी एकांत में या दो–चार लोगों के बीच सुनता है। ध्वनि व शब्द के माध्यम से संप्रेषित संदेश श्रोता के मानस पटल पर गहरी और अमिट छाप छोड़ता है। प्रत्येक पात्र व स्थिति के साथ वह अपनी निजी अनुभूतियों और पूर्वाग्रहों को जोड़ता है। श्रवण के साथ उसकी कल्पना शक्ति जागृत और सक्रिय होती है। सामान्य नाटक में सामूहिकता का ही प्रभाव छाया रहता है। अनुभूति व कल्पना का महत्त्व नहीं रहता है।

7. श्रोता की कल्पनाएँ चित्र–निर्माण की प्रक्रिया को उद्दीप्त करने में रेडियो नाटक के शब्दों के साथ–साथ ध्वनि–प्रभावों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। रेलवे इंजन की सीटी, रेल चलने की आवाज, विक्रेताओं

की आवाजें आदि मिलकर प्लेटफार्म का स्वरूप, मानस पटल पर बना देती है। इसी प्रकार हवाई अड्डे, बाजार, नदी, झरना, जंगल, तूफान, समुद्रतट, युद्ध आदि के क्रियाकलाप दृश्य बना देते हैं।

8. जीवन के बाह्य व्यापारों के अतिरिक्त अंतर्मन के व्यापारों, मनोवैज्ञानिक गहराइयों में प्रवेश की इसकी अपूर्व क्षमता होती है। पात्र का अंतस श्रोता के अंतस में आ जाता है।

9. रंगमंचीय नाटकों के दृश्य परिवर्तन के लिए मंच पर बहुत अधिक बदलाव लाना पड़ता है। यह समस्या यहाँ पर नहीं होती है।

10. हर्ष, उल्लास, क्रोध, प्रेम, घृणा आदि शब्दों के साथ–साथ चेहरे भी अभिव्यक्त होते हैं। रेडियो नाटक में उन्हें शब्दों से ही व्यक्त करना पड़ता है। पात्र अपने शब्दों से और दूसरे पात्रों के शब्दों से भी किसी प्रिय व्यक्ति के अचानक आ जाने से किसी पात्र के चेहरे पर आए प्रसन्नता के भाव अन्य पात्रों के शब्दों में व्यक्त करने होंगे, जैसे – "उसे देखकर तुम्हारा चेहरा कमल–सा खिल उठा।"

5.5 साहित्यिक विधाओं का रेडियो में रूपांतरण

रेडियो रूपान्तरण का आशय यह है कि जब रंग नाटक, उपन्यास और कहानी को इस श्रव्य माध्यम से प्रसारित करना होता है तो उसे रूपान्तरित करना कहते हैं। रूपान्तरण का अर्थ है श्रव्य माध्यम द्वारा साहित्यिक रचनाओं अथवा किसी भी सृजन को श्रोताओं तक पहुंचाना। रेडियो रूपांतर का अर्थ यह है कि किसी भी रचना को परिवर्तन के माध्यम से रेडियो प्रसारण के उपयुक्त बना देना।

(क) **रंग नाटक का रेडियो रूपांतरण** – रंग नाटक को रेडियो नाटक में रूपांतरित करने के लिए दृश्य–श्रव्य नाटक को श्रव्य रूप में कल्पित करना होता है और इसके लिए रेडियो माध्यम से उस कल्पना का प्रयोग करना आवश्यक है। रेडियो रूपान्तर में संगीत और ध्वनि का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग करना आवश्यक होता है।

(ख) **रेडियो रूपक** – साहित्य में जिन विभिन्न रूपों का रेडियो से प्रसारण होता है, उनमें रेडियो रूपक का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। रेडियो रूपक में ध्वनि को मौलिक, विवेचनात्मक और सृजनात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(ग) **रेडियो फैंटसी** – फैंटसी का अर्थ कल्पना है इसे अतिकल्पनात्मक रूपक भी कहा जाता है, अतिकल्पनात्मक रूपक में व्यंजनात्मक प्रभाव की अधिकता होती है। इसके लिए श्रव्य नाट्य शिल्प का ज्ञान भी आवश्यक है। अतिकल्पनात्मक रूपक की आवश्यकता इस कारण होती है कि वह अभिव्यंजना प्रधान होने के कारण सूक्ष्म रूप से किसी भी विचार को यथार्थ के समान एक संसार का निर्माण कर व्यक्त कर सकता हे।

(घ) **संगीत रूपक** – रेडियो से संगीत रूपक प्रसारित किए जाते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें संगीत

की प्रधानता रहती है। वस्तुतः संगीत रूपक, नाटक या फीचर से भिन्न है और आकाशवाणी पर गीत प्रध ाान रचनाओं के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

(ङ) **अन्य नाट्य–रूप** – अन्य नाट्य–रूपों में एक पात्रीय रेडियो नाटक हो सकता है। जिसमें आत्मालाप यानि एक व्यक्ति के संवाद का निर्माण किया गया हो। यह पात्र के भीतर के अन्तर्द्वन्द्व को व्यंजित कर सकता है। शेक्सपियर और जयशंकर प्रसाद के नाटकों में स्वगतनाट्य या मोनोलोग का बड़ा प्रयोग किया जाता है।

5.6 निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संचार माध्यमों में रेडियो का अपना विशिष्ट स्थान है, जिसने वर्तमान युग में अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट, फेसबुक, व्हाट्स एप के सामने भी अपना अस्तित्व कायम रखा है और भारत की अधिकांश जनता के दिलों पर राज करता है।

5.7 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

1. आकाशवाणी – भारत का राष्ट्रीय रेडियो
2. बी.बी.सी. – ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (ब्रिटेन का प्रमुख रेडियो चैनल)
3. ।प्त् सेवा – ऑल इंडिया रेडियो सेवा
4. फैंटेसी – रोमांचक कल्पना
5. रूपक – एक प्रकार की नाट्य विधा

5.8 लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. श्रव्य माध्यम से आप क्या समझते हैं?
2. निम्नलिखित शब्दों के बारे में बताइए –
   (क) रेडियो नाटक –
   (ख) रेडियो रूपक –
   (ग) रेडियो फैंटेसी –
   (घ) संगीत रूपक –

5.9 दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. रेडियो के विकास का वर्णन कीजिए

....

....

....

2. रेडियो नाटक का वर्णन कीजिए।

....

....

....

3. विविध साहित्यिक विधाओं का रेडियो में रूपांतरण विषय पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

5.10 पुस्तक सुझाव

1. फीचर लेखन– डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. सुनील कुमार तिवारी, संजय प्रकाशन, दिल्ली
2. भाषा – प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण – 2004, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली
3. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्र प्रकाश मिश्र, द्वितीय संस्करण– 2006, संजय प्रकाशन, दिल्ली
4. जन पत्रकारिता, जन संचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण – 2004, संजय प्रकाशन, दिल्ली
5. हिंदी पत्रकारिता, विविध आयाम (भाग–1) – संपादित डॉ. वेद प्रताप वैदिक, संस्करण – 1997, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली
6. रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता – डॉ. हरिमोहन, प्रथम संस्करण – 1997, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली
7. मीडिया लेखन–कला – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, डॉ. पवन अग्रवाल, संस्करण–2001, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ
8. जनसंचार के सामाजिक संदर्भ – जवरीमल्ल पारेख, संस्करण – 2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

5.11 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग – दंगल झाल्टे

....

Course Code - 404 **Lesson No. 6**

Unit-I

दृश्य–श्रव्य माध्यम

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 भूमिका

6.3 दृश्य–श्रव्य माध्यम का अर्थ एवं स्वरूप

6.4 दृश्य–श्रव्य माध्यम में भाषा की प्रकृति

6.5 निष्कर्ष

6.6 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

6.7 लघु–उत्तरीय प्रश्न

6.8 दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

6.9 पुस्तक सुझाव

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.11 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य दृश्य–श्रव्य माध्यमों का विस्तृत परिचय जैसे – भाषागत विशेषताएं, इतिहास, सीमाएँ इत्यादि का परिचय देना है। जिससे विद्यार्थी आधुनिक युग के सबसे सशक्त माध्यम के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकें।

6.2 भूमिका

आधुनिक युग में जनसंचार की बढ़ती भूमिका से कौन इंकार कर सकता है? जैसे–जैसे समाज का विकास

हुआ, उसके साथ–साथ जनसंचार के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक रूप से विकास हुआ है। मानव समाज ने आरंभ से लेकर अब तक जिन संचार माध्यमों का प्रयोग किया है, उनमें प्रमुख हैं :–

(1) शाब्दिक संचार/प्रिंट संचार

(2) श्रव्य संचार

(3) दृश्य–श्रव्य संचार

यदि विभिन्न माध्यमों की तुलना की जाए तो आधुनिक युग में दृश्य–श्रव्य संचार सबसे अधिक प्रभावशाली और सशक्त माध्यम है। दृश्य–श्रव्य समाचार माध्यमों का उद्देश्य समाज पर अपनी पकड़ को और अधिक गहरा बनाना है। जहां श्रव्य माध्यमों में से रेडियो ने अपनी पहुँच अन्य माध्यमों की अपेक्षा अधिक लोगों तक बनाई है। वहीं दृश्य–श्रव्य माध्यमों में टेलीविजन की पहुँच भी सबसे अधिक लोगों तक है। दृश्य माध्यमों में ध्वनि के समावेश द्वारा चित्रों तथा दृश्यों का प्रसारण उसकी प्रमाणिकता के कारण अधिक प्रभावशाली बन जाता है। इसलिए दृश्य–श्रव्य माध्यमों के अन्तर्गत आने वाले टेलीविजन, फिल्म, इंटरनेट, मोबाइल, होम मूवी, डिजीटल केमरा, वीडियो सीडी इत्यादि अत्यधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। दृश्य–श्रव्य माध्यमों का लेखन भी विशिष्ट है, इसके लेखक के लिए यह अनिवार्य है कि वह दृश्यों को बोलने का अपेक्षित अवसर दे, क्योंकि दृश्यों के साथ यथानुरूप शब्दों के प्रयोग द्वारा लेखक अतिरिक्त सूचना, भाव आदि का संप्रेषण भी करता है। यही पद्धति टेलीविजन के अधिकांश कार्यक्रमों के लिए प्रयोग में लाई जाती है। प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं तथ्यों पर विस्तार से विचार–विमर्श करेंगे।

6.3 दृश्य–श्रव्य माध्यम का अर्थ एवं स्वरूप

दृश्य–श्रव्य माध्यमों में ध्वनियों के साथ चित्रों को भी प्रेषित किया जाता है। दृश्य–श्रव्य माध्यम आधुनिक युग में जनसंचार का सबसे प्रभावशाली माध्यम है। इसकी कोई भौगालिक सीमा नहीं है। स्पेस सिमटकर समय में बदल गया है, इसीलिए यह वैश्विक माध्यम हो गया है। दृश्य–श्रव्य माध्यमों के अंतर्गत आने वाले महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं – टेलीविजन, फिल्म, कम्प्यूटर, इंटरनेट मोबाइल, वीडियो, डीवीडी आदि।

(क) **टेलीविजन** – टेलीविजन शब्द 'टेली' तथा 'विज़न' दो शब्दों के योग से बना है। 'टेली' ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'दूरी' होता है। 'विज़न' लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'देखना' होता है। इस प्रकार टेलीविजन का अर्थ हुआ – दूरी से किसी वस्तु को दिखाने वाला। टेलीविजन के माध्यम से चौबीस घंटे घर बैठे विश्व की किसी भी घटना या सूचना को दृश्य–श्रव्य रूप में देखा सुना जा सकता है। इतना ही नहीं मनोरंजन की दृष्टि से आज यह जनता का सबसे चर्चित माध्यम बन चुका है। रेडियो में जहाँ ध्वनि की प्रधानता होती है वहीं टेलीविजन में दृश्य की प्रधानता होती है। ध्वनि वहां केवल सहायक का कार्य करती है। दृश्यों एवं ध्वनि के संयुक्त प्रयोग से टेलीविजन एक प्रभावशाली विधा के रूप में आज संचार जगत में स्थापित है।

(ख) **फिल्म** – कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, कहानी आधुनिक साहित्य में एक अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण विधा है, साहित्य की कई कहानियों को हू–ब–हू सिनेमा में उतारा जाता है। साहित्य की कहानियों के अलावा भी सीधे फिल्मों के लिए कहानियाँ लिखी जाती हैं। यह चलते–फिरते चित्र सीधा दर्शकों के दिल में उतर कर उन पर गहराई से अपनी पकड़ बनाने में सक्षम होते हैं।

(ग) **वीडियो** – वीडियो पर रेडियो तथा टेलीविजन की तरह सरकार का नियंत्रण नहीं है। यह पूरी तरह से एक निजी माध्यम है, जिसके द्वारा जनता का मनोरंजन या ज्ञानवर्धन होता है। इसके अतंर्गत वीडियो केमरा, वी.सी.आर., सी.डी. एवं कम्प्यूटर आदि सामग्री का सहयोग लिया जाता है।

(घ) **कम्प्यूटर** – आज के समय में कम्प्यूटर ने संचार के क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। आज शायद ही समाज का कोई भी ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें कम्प्यूटर की अनिवार्यता न हो। मनुष्य के मस्तिष्क से भी कहीं अधिक तेज़ी से गणना करने वाला कम्प्यूटर तथ्यों को उसे अपने यांत्रिक मस्तिष्क में सहेज कर रखता है। कम्प्यूटर की डिस्क में तथ्यों के भंडारण की क्षमता बहुत अधिक होती है। आवश्यकता पड़ने पर इस क्षमता को और अधिक बढ़ाया जा सकता है। सी.डी., डी.वी.डी., फलॉपी, पेन–ड्राइव आदि के आ जाने से अब महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सरलता से संगृहीत किया जा सकता है और कभी भी उसे प्रयोग में लाया जा सकता है।

(ङ) **इंटरनेट** – कम्प्यूटर तंत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावी साधन इंटरनेट है। नव इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में इंटरनेट ने सूचना क्षेत्र में अद्भुत क्रांति उत्पन्न कर दी है। इंटरनेट पर उपलब्ध सेवाओं में मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं –

(i) **ई–मेल** – यह सेवा सबसे अधिक प्रचलित है। किसी भी संदेश को चन्द क्षणों में विश्व में बैठे किसी भी व्यक्ति तक सहजता से पहुँचाने का यह उपयुक्त माध्यम है। अब तो वेब–केम की सहायता से आपसी बातचीत के रास्ते भी खुल गए हैं।

(ii) **डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.** – इस सुविधा के द्वारा उपभोक्ता अपनी इच्छित सूचना को प्राप्त कर सकता है। 'वर्ल्ड वाइड वेब' नाम की इस सुविधा में कोई भी व्यक्ति चित्र, ध्वनि, संदेश, संगीत, फिल्म आदि के अंशों को सहजता से प्राप्त कर सकता है।

(iii) **होम–पेज** – इस सुविधा के द्वारा कोई भी व्यक्ति, कंपनी और संस्था, अपने विषय में विवरण देकर विज्ञापन कर सकते हैं। इस सुविधा से जानकारी लेने को हिट कहा जाता है।

(iv) **फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्स एप** – आजकल फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्स एप जैसी सोशल–साइट्स के माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान किया जाता है। विशेषकर युवाओं का रूझान इसके प्रति बहुत ज्यादा बढ़ा है। आज राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं पर क्रिया–प्रतिक्रिया हेतु इन सोशल साइटस का उपयोग जबर्दस्त तरीके से हो रहा है।

(v) **मोबाइल** – मोबाइल यूं तो निजी संचार माध्यम है, परन्तु स्मार्टफोन आने से व्हाट्स एप, स्काइप, वी

चैट आदि पर भी गंभीर विचारों का आदान–प्रदान किया जा रहा है।

6.4 विशेषताएँ

भाषा स्वयं में एक माध्यम है जिसका विकास हजारों वर्ष पूर्व संचार माध्यम के रूप में हुआ था। आदि मानव अपनी भावनाओं, विचारों तथा इच्छा–अनिच्छाओं को संकेतों के माध्यम से व्यक्त करता था। धीरे–धीरे उसने अपनी बात कहने के लिए ध्वनि संकेतों का निर्माण किया और कुछ विशिष्ट ध्वनि संकेतों को उसने प्रतीक के रूप में प्रयुक्त करना प्रारम्भ किया। जनसंचार का प्रथम सबसे विकसित माध्यम यह भाषा ही थी, परन्तु उच्चरित भाषा की अपनी सीमाएँ हैं। वह एक निश्चित दूरी तक ही जा सकती है और वर्तमान में सामने उपस्थित मनुष्य को ही संबोधित हो सकती है अर्थात् उस तक ही अपने विचार पहुँचा सकती है। इसके अतिरिक्त भी मानवीय जीवन में बहुत सी संवेदनाएँ ऐसी होती हैं जिनको अभिव्यक्त करने की क्षमता भाषा में नहीं होती।

सभ्यता के विकास ने भाषा को लिपिबद्ध करने की कला विकसित की और इस प्रकार भाषा को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना संभव हुआ। इससे भाषा के स्वरूप की सीमाओं का विस्तार हुआ। अब भाषा देश और काल की सीमाओं को लांघ सकती थी। लिपि के विकास ने जनसंचार माध्यम के दूसरे चरण को शुरू किया। आज हम महावीर और बुद्ध के उपदेशों को पढ़ सकते हैं। आर्यभट्ट के वैज्ञानिक सिद्धांतों का अध्ययन कर सकते हैं। अपने इतिहास और संस्कृति का ज्ञान हमें लिपि के विकास के फलस्वरूप ही हो रहा है। शताब्दियों पूर्व के विचारों का संचार हम तक लिपि माध्यम के द्वारा ही हो रहा है। लिपि माध्यम के और ज्यादा विस्तृत होने का दूसरा चरण कागज के आविष्कार और बाद में मुद्रण के विकास के द्वारा आगे बढ़ा।

उच्चरित भाषा तथा लिखित भाषा के स्वरूप में अत्यधिक अन्तर होता है। उसके प्रभाव में भी अन्तर होता है। जो आनन्द बात सुनने में है वह पढ़ने में नहीं। रजनीश के प्रवचन सुनकर जो प्रभाव आप ग्रहण करेंगे वही प्रभाव उसके प्रवचनों को पढ़कर आप ग्रहण नहीं कर सकते। भाषा के इस अन्तर ने ही आधुनिक संचार माध्यमों को अलग–अलग स्वरूप ग्रहण करने की तकनीक विकसित करने के लिए विवश किया।

भाषा मूल रूप में प्रतीक व्यवस्था ही है। वर्तमान दृश्य–श्रव्य माध्यमों की भाषा का अध्ययन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि भाषा मात्र कुछ शब्द या उच्चरित ध्वनि मात्र तक सीमित नहीं है भाषा यहाँ अपना पृथक व्याकरण रचती है और अपने मूल रूप में ही प्रयोग होती है अर्थात् विचारों, भावनाओं, संवेदनाओं, सूचनाओं आदि को व्यापक जनसमूह तक संप्रेषित करना भाषा का ही कार्य है। आधुनिक संचार माध्यमों के समक्ष जो जनसमूह है वह किसी एक भाषा या संस्कृति का नहीं है। उसकी सबसे बड़ी विवशता है उसका व्यापक जनसमूह, जिस तक उसे अपने उत्पादों को पहुँचाना है। इन संचार माध्यमों की भाषा पर विचार करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ये संचार माध्यम किसके लिए और क्यों कार्य करते हैं तथा इनका लक्ष्य क्या है। भाषा का विकास या उसके मूल स्वरूप को सुरक्षित रखने के

लिए यह प्रतिबद्ध नहीं है और न ही भाषा और समाज के अन्तरसम्बन्धों से इन्हें कोई लेना–देना है। इनका लक्ष्य तो प्रायोजकों के उत्पादों और पूँजीवादी शक्तियों की नीतियों और विचारों को जनसमूह तक पहुँचाना है। इनकी प्रतिबद्धता किसी भाषा या संस्कृति से न होकर साम्राज्यवादी शक्तियों और उनके विकास के प्रति होती है। अतः इनकी भाषा का अपना अलग व्याकरण होता है और उसकी प्रकृति भी अलग होती है।

वर्तमान जनसंचार माध्यम अपनी अलग भाषा को विकसित करते दिखाई दे रहे हैं। यह भाषा न हिन्दी है न अंग्रेजी है और न कोई अन्य भाषा। इनकी भाषा बाजार की भाषा है। इसे हम हाट–बाजार की भाषा भी कह सकते हैं। जिस प्रकार मुगलों और हिन्दुस्तानियों के एक बाजार में माल बेचने और खरीदने की परिस्थिति ने खड़ीबोली और उर्दू को विकसित किया था, उसी प्रकार वर्तमान संचार माध्यम विश्व बाजार के सम्बन्ध में एक नई भाषा का विकास करने की दिशा में अग्रसर है। यह भाषा भी बाजार की शक्तियों के दबाव से विकसित हो रही है।

वर्तमान संचार माध्यमों के पास अत्याधुनिक तकनीक है और इस तकनीक के माध्यम से वे संकेतों और प्रतीकों की नवीन भाषा की रचना कर रहे हैं। उदाहरण के लिए संस्कृति का सम्बन्ध हमारे जीवन और आचरण से था, हमारे विचारों से था, परन्तु इन माध्यमों ने वस्तुओं से संस्कृति का सम्बन्ध स्थापित कर दिया। अब संस्कृति और सभ्यता का सम्बन्ध हमारे–आपके जीवन और आचरण से उतना नहीं है जितना इनकी प्रतीक वस्तुओं से । ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि इन माध्यमों को वस्तुओं का व्यापार करना है, आपके अच्छे विचारों या आचरण का नहीं। इसी प्रकार विज्ञापनों के माध्यम से जीवन के सौन्दर्य और शिवम् को क्रीम, पावडर, चॉकलेट, पेप्सी, पिज्जा और बर्गर तक सीमित कर दिया है। अब सौन्दर्य का प्रतीक नारी का सहज सुन्दर होना नहीं है बल्कि फेयर एंड लवली से पुते चेहरे में सौन्दर्य है।

वर्तमान संचार माध्यम अनेक प्रकार के परंपरागत प्रतीकों के अर्थ बदल रहे हैं और हमारी नई पीढ़ी इन प्रतीकों को ही वास्तविक अर्थ के रूप में ग्रहण कर रही हैं। यह नवीन भाषा का अपना व्याकरण है। इस नई भाषा के स्वरूप का तकनीकी पक्ष भी है।

दृश्य माध्यमों की भाषा शब्दों से कम, कार्य–व्यापारों से अधिक काम लेती है। चूंकि इनके पास अत्यधिक शक्तिशाली कैमरा है जिसके द्वारा यह व्यक्ति के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव परिवर्तन को रेखांकित कर सकती है, उसे कैद कर सकती है और यथावत प्रसारित कर सकती है। अतः यह कार्य–व्यापारों, बिम्बों और बिम्बों के क्रम परिवर्तनों से नए–नए अर्थों को अभिव्यंजित करने की क्षमता रखता है। इसके साथ यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये माध्यम यथार्थ को पुनर्जीवित बहुत कम करते हैं बल्कि यथार्थ का भ्रम अधिक उत्पन्न करते हैं। यथार्थ के भ्रम द्वारा यह व्यापक जनसमूह तक अपने विचारों को पहुँचाते हैं। यह ठीक है कि यह बिम्बों और कार्य–व्यापारों की भाषा का प्रयोग करते हैं, परन्तु यह बिम्ब और कार्य–व्यापार सहज स्वाभाविक बहुत कम होते हैं और प्रायोजित बहुत अधिक। इनके प्रायोजित होने में ही यथार्थ का भ्रम उत्पन्न होता है। जनसमूह इस प्रायोजित होने की वास्तविकता से परिचित होते हुए भी इसके यथार्थ के भ्रमजाल में फँस जाता है और यही इन माध्यमों की शक्ति और सफलता है।

हमारी हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के समक्ष यह एक बड़ी चुनौती है कि वह इन प्रायोजित बिम्बों और कार्यव्यापार के निहितार्थों तथा व्यंजित अर्थों से अपने यथार्थ बिम्बों, प्रतीकों और कार्यव्यापारों से व्यंजित होने वाले अर्थों की रक्षा किस प्रकार करें। चूँकि बिम्बात्मक भाषा बहुत प्रभावशाली होती है इसलिए इसका जनसमूह पर व्यापक प्रभाव होता है। दृश्य माध्यमों की भाषा वास्तव में कैमरे की भाषा होती है। यहाँ बिम्बों का क्रम भी बोलता है। एक ही बिम्ब शृंखला को अलग–अलग क्रम से प्रस्तुत करने पर वह अलग–अलग अर्थ को संप्रेषित करती है। इसके अतिरिक्त दृश्य के साथ–साथ प्रकाश और ध्वनि के प्रभाव का प्रयोग करने की अतिरिक्त सुविधा प्रायोजित कार्यक्रमो में होती है। प्रकाश और ध्वनि प्रभाव भी दृश्य माध्यमों की भाषा के अंग हैं। इनका अलग–अलग तरीकों से प्रयोग करने से संदर्भ के अर्थ बदल जाते हैं। ध्वनि प्रभाव तो दृश्य माध्यमों में अत्यधिक शक्तिशाली भाषा का कार्य करता है। दृश्य माध्यमों की भाषा में रंगों की भी अपनी महत्ता है। यहाँ रंग भी बोलते हैं और कम्प्यूटर ने तो रंगों के लाखों शेड निर्मित कर दिए हैं। प्रत्येक रंग विभिन्न संदर्भों में भिन्न–भिन्न प्रतीकार्थ प्रदान करता है। रंग हमारी संवेदनाओं, भावनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों से भी सम्बद्ध होते हैं। इसलिए इनका प्रयोग भी दृश्य माध्यमों में सशक्त भाषा के रूप में होता है।

दृश्य–श्रव्य माध्यम के लिए लेखन साधारण लेखन से भिन्न एक चुनौतीपूर्ण लेखन है। इसकी सबसे बड़ी शक्ति इसकी बिम्बधर्मिता है। इसके अर्न्तगत टेलीविजन में प्रयुक्त भाषा की प्रकृति में कुछ विशेष गुण होने चाहिए जोकि इस प्रकार हैं :–

(1) **घटना में तारतम्यता** – दृश्य श्रव्य माध्यमों में विषय वस्तु और दृश्यांकित सामग्री में तारतम्यता रहनी चाहिए, अभिप्राय यह है कि जिस विषयवस्तु को आधार बनाकर लिखा जा रहा है, भाषा भी उसी के अनुरूप होनी चाहिए।

(2) **चित्रात्मकता** – टेलीविजन समाचारों अथवा धारावाहिकों में समाचार पत्रों एवं रेडियो की तरह शब्द तो बोलते ही हैं, लेकिन शब्दों की अपेक्षा यहां चित्रों और दृश्यों को बोलने का अधिक अवसर दिया जाता है।

(3) संक्षिप्तता – टेलीविजन के लिए लेखन में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है कि वह समाचारों अथवा धारावाहिकों में जितना अधिक संक्षेप में अपनी बात कहेंगे, भाषा उतनी ही प्रभावशाली लगेगी। टेलीविजन पर दृश्यों को दिखाने का तात्पर्य ही यह होता है कि दर्शक उन दृश्यों के द्वारा घटना या सूचना की वास्तविकता का स्वयं अवलोकन कर सकें।

(4) **ध्वनियों का सार्थक प्रयोग** – दृश्य–श्रव्य माध्यमों में सार्थक अभिव्यक्ति के लिए दृश्यों के साथ–साथ ध्वनियों का कलात्मक उपयोग उन्हें और अधिक प्रभावशाली बना देता है। तर्कसंगत एवं विषय के अनुरूप ध्वनि एवं संगीत का प्रयोग दर्शकों को आकर्षित करता है।

(5) **समय–सापेक्षता** – टेलीविजन में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की अपनी एक समय–सीमा पहले से ही निश्चित होती है। जिसे ध्यान में रखकर ही कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। उदाहरणतः प्याज़ की कीमतें बढ़ने पर आधारित एक हास्य व्यंग्य की प्रस्तुति प्याज़ की कीमतें घट जाने पर प्रभावशाली नहीं रहेगी,

इसलिए दृश्य–श्रव्य माध्यमों में समय के अनुरूप भाषा की प्रवृत्ति एवं उसका प्रसारण अवश्य होना चाहिए।

(6) **सर्वग्राह्य भाषा** – दृश्य श्रव्य माध्यमों में भाषा की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए जिसे अधिक से अधिक लोग आसानी से समझ सकें। छोटे–छोटे वाक्यों में प्रस्तुत इस भाषा में बोलचाल के शब्दों का अधिक प्रयोग होना चाहिए, कुछ प्रचलित शब्द जो अन्य भाषाओं के होते हैं, उनका प्रयोग भी बेझिझक करना चाहिए, जैसे 'कम्प्यूटर' के स्थान पर 'संगणक' का प्रयोग उचित नहीं। इन माध्यमों की भाषा सरल, सुबोध, रोचक एवं स्पष्ट होनी चाहिए।

6.5 निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दृश्य–श्रव्य माध्यम संचार का सबसे सशक्त क्षेत्र है, शब्द के साथ दृश्य माध्यम होने के नाते यह बहुत शक्तिशाली और आकर्षक प्रसार माध्यम है। मीडिया अथवा जनसंचार के तीन प्रमुख उद्देश्य माने गए हैं – मनोरंजन, शिक्षा एवं प्रचार। इन तीनों ही उद्देश्यों को दृश्य–श्रव्य माध्यम बखूबी पूरा करने में पूर्णतः सक्षम हैं।

6.6 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

(1) सर्वग्राह्य – सभी के समझ में आ सकने वाला

(2) वृतचित्र (Documentary) – किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर आधारित शोधपरक लघु फिल्म

(3) पटकथा (Script) – रेडियो, दूरदर्शन, नाटक, धारावाहिक, फिल्म, विज्ञापन आदि के लिए विभिन्न निर्देशों और संकेतों द्वारा लिखी जाने वाली कथा

(4) छायांकन (Cinematography) – विषय वस्तु की प्रभावशाली प्रस्तुति हेतु केमरे के द्वारा विभिन्न कोणों से ली गई चित्र–शृंखला

6.7 लघु–उत्तरीय प्रश्न

(1) दृश्य–श्रव्य संचार माध्यम से आप क्या समझते है?

(2) निम्नलिखित शब्दों के बारे में बताइए –

(क) टेलीविजन –

(ख) फिल्म –

(ग) ई मेल –

(घ) डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. –

(ङ) सोशल साइट्स –

6.8 दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

(1) दृश्य–श्रव्य माध्यम का अर्थ और स्वरूप स्पष्ट करें ।

....

....

....

(2) दृश्य–श्रव्य माध्यम में भाषा की प्रकृति का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

6.9 पुस्तक सुझाव

(1) फीचर लेखन – डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. सुनील कुमार तिवारी, संजय प्रकाशन, दिल्ली

(2) भाषा–प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

(3) संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्र प्रकाश मिश्र, द्वितीय संस्करण ऋ 2006, संजय प्रकाशन, दिल्ली

(4) जन पत्रकारिता, जन संचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण – 2004, संजय प्रकाशन, दिल्ली

(5) हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम (भाग–1) – संपादित डॉ. वेद प्रताप वैदिक, संस्करण – 1997, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली

(6) रेडियो और दूर–दर्शन पत्रकारिता – डॉ. हरिमोहन, प्रथम संस्करण – 1997, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली

(7) मीडिया लेखन–कला – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, डॉ. पवन अग्रवाल, संस्करण–2001, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ

(8) जनसंचार के सामाजिक संदर्भ – जवरीमल्ल पारख, संस्करण–2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) फीचर लेखन – डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. सुनील कुमार तिवारी, संजय प्रकाशन, दिल्ली

(2) भाषा–प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

(3) संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्र प्रकाश मिश्र, द्वितीय संस्करण ऋ 2006, संजय प्रकाशन, दिल्ली

(4) जन पत्रकारिता, जन संचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण – 2004, संजय प्रकाशन, दिल्ली

(5) हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम (भाग–1) – संपादित डॉ. वेद प्रताप वैदिक, संस्करण – 1997, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली

(6) रेडियो और दूर–दर्शन पत्रकारिता – डॉ. हरिमोहन, प्रथम संस्करण – 1997, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली

(7) मीडिया लेखन–कला – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, डॉ. पवन अग्रवाल, संस्करण–2001, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ

(8) जनसंचार के सामाजिक संदर्भ – जवरीमल्ल पारख, संस्करण–2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

6.11 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग– दंगल झाल्टे

....

Course Code - 404 **Lesson No. 7**

Unit-I

टी.वी. और सिनेमा का विकास

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 टी.वी. और सिनेमा का विकास

7.3 टी.वी. नाटक और धारावाहिक

7.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.5 पठनीय पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे –

– टी.वी. और सिनेमा का आरम्भ कब हुआ

– टी.वी और सिनेमा का इतिहास क्या रहा

– टी.वी. नाटक और धारावाहिक में क्या अन्तर है

7.2 टी.वी. और सिनेमा का विकास

टेलीविजन – आधुनिक युग के सबसे लोकप्रिय जनसंचार माध्यम टेलीविजन के दृश्यों को यथार्थ रूप में उभारने की कला का श्रेय जॉन लॉगी बेयर्ड को जाता है। बेयर्ड ने सन् 1925 ई. में टेलीविजन का पहला उपकरण निर्मित किया, जिसके माध्यम से उन्होंने तस्वीरों को प्रभावशाली ढंग से प्रसारित करने में सफलता प्राप्त की। सन् 1926 में बेयर्ड ने ब्रिटेन में टेलीविजन का पहला प्रदर्शन किया। इसके बाद अनेक वैज्ञानिकों ने नए–नए प्रयोग करते हुए आर्थिकॉन, विडीकॉन, प्लूमीकॉन ट्यूबों का विकास किया जिनसे चित्रों को बेहतर तरीके से पर्दे पर प्रसारित किया जा सकता था। तस्वीरों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए मार्कोनी

कंपनी ने भी बेहतर प्रयास किया लेकिन तब तक ध्वनि युक्त दृश्यों का प्रसारण संभव नहीं हो पाया था।

सन् 1930 में ध्वनि युक्त टेलीविजन का प्रसारण संभव हो पाया। इस प्रसारण के उपरान्त सन् 1936 में बी.बी.सी. ने लंदन के अलेक्जेंडर महल में इसका सार्वजनिक प्रसारण किया। इसके बाद फ्रांस में 1938 में, अमेरिका में 1940 में प्रतिदिन कुछ कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाने लगा। सन् 1953 में संयुक्त राज्य में रंगीन टेलीविजन द्वारा प्रसारण किया गया।

भारत में दूरदर्शन की शुरूआत 15 सितंबर, 1959 में यूनेस्को की सहायता से हुई। मनोरंजन, शिक्षा व सूचना के लिए सन् 1965 से नियमित सेवा के प्रसारण के आरंभ के साथ ही भारत में नई संचार क्रांति ने जन्म लिया। विशेष रूप से शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण के उद्देश्य से इस टेलीजिवन ने समाज को विकास की नई दृष्टि दी। धीरे–धीरे भारत में अनेक राज्यों में दूरदर्शन केंद्रों की स्थापना की गई। सन् 1982 से भारत में टेलीविजन पर रंगीन दृश्यों का प्रसारण किया जाने लगा। वर्तमान में भारत में सभी राज्यों में स्थापित अनेक केन्द्रों एवं शक्तिशाली ट्रांसमीटर्स की मदद से लगभग 90 प्रतिशत जनता तक दूरदर्शन की पहुँच बन चुकी है। उपग्रह और केबल क्रांति के कारण भारत में चैनलों की भरमार हो गई है। समाचारों, खेलों और ज्ञान–विज्ञान के लिए अलग चैनलों की व्यवस्था और मनोरंजन से संबंधित कार्यक्रमों की भरमार के कारण जनसामान्य की रुचि टेलीविजन के प्रति बढ़ती जा रही है।

सिनेमा – गतिशील चित्रों के आविष्कार का श्रेय थामस एडिसन को दिया जाता है। इसके कुछ समय बाद डिक्सन ने ईस्टमेन की सेल्युलाइड फिल्म के इस्तेमाल से इन गतिशील चित्रों को सुविधानुसार लंबाई देने में सफलता प्राप्त की। ईस्टमेन ने एडिसन के केमरे पर 15–15 सैकेंड की गतिशील फिल्मों को चलाने में सफलता प्राप्त की। लेकिन इस प्रकार की फिल्मों को चलाने में सफलता प्राप्त की। लेकिन इस प्रकार की फिल्मों को पोर्टेबल केमरे के द्वारा सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने का श्रेय ल्युमिर बन्धुओं को जाता है। ल्युमिर बन्धुओं ने सन् 1895 में पेरिस में लोगों से पैसे लेकर गतिशील चित्रों का प्रदर्शन किया। धीरे–धीरे मूवी केमरे के आगमन और फिल्मों के निर्माण ने इस क्षेत्र को विकास देना आरंभ किया। आरंभ में ये सभी फिल्में मूक होती थीं। लगभग तीस वर्ष बाद इन फिल्मों के साथ संगीत और संवादों का संयोजन करते हुए इन्हें प्रसारित किया जाने लगा। तकनीकी दृष्टि से अत्यधिक जटिल होने के बावजूद भी फिल्मों ने जल्दी ही विश्व में सर्वाधिक सशक्त जन–माध्यम के रूप में अपना स्थान बना लिया। मनोरंजन के क्षेत्र में तो इसका आज भी कोई सानी नहीं है।

भारत में फिल्मों का प्रारंभ सन् 1931 से होता है। जब दादा साहिब, फाल्के ने 'सत्य हरिशचन्द्र' नामक मूक फिल्म का निर्माण कर इसे प्रदर्शित किया। दादा साहिब फाल्के को भारतीय फिल्मों का पितामाह माना जाता है। फिल्म के प्रति उनकी गहरी रुचि और उनका विस्तृत अध्ययन करने के साथ–साथ दादा साहिब ने अनेक पौराणिक फिल्मों का निर्माण भी किया। सन् 1921 में पहली सामाजिक फिल्म के निर्माता धीरेन गांगुली थे, जिन्होंने इंग्लैंड रिटर्न फिल्म बनाई। सन् 1931 तक भारत में बनने वाली फिल्मों की संख्या 270 तक

पहुंच गई। ये सभी फिल्में मूक होने के बावजूद भी अपने कलात्मक कौशल के कारण प्रभावशाली बनीं। सन् 1931 में बनी 'आलमआरा' भारत की पहली बोलती फिल्म थी। पहली रंगीन फिल्म का निर्माण सन् 1932 में 'किसान कन्या' से हुआ। उसके बाद से फिल्मों की दिशा में भारत ने तेज़ी से प्रगति की।

सन् 1948 में बम्बई में 'भारतीय फिल्म डिवीजन' की स्थापना हुई। 1952 में सेंसर बोर्ड के गठन और सन् 1953 में फिल्म पुरस्कारों से इस दिशा में तेजी से उन्नति होने लगी। आज भारत में प्रतिवर्ष सैंकड़ों की संख्या में विभिन्न भाषी फिल्मों का निर्माण होता है। ये फिल्में सभी विषयों पर बनाई जाती है।

7.3 टी.वी. नाटक और धारावाहिक

टेलीविजन पर प्रदर्शित होने वाले किसी भी नाटक को **टेली–प्ले** या **टेलीविजन–नाटक** कहा जा सकता है। परन्तु वास्तव में टी.वी. नाटक का अर्थ है – टेलीविजन माध्यम की शक्ति और सीमा को ध्यान में रखकर लिखा और प्रदर्शित किया गया नाटक। विश्वभर में दूरदर्शन के आरंभिक दौर में टेलीविजन से नाटक का संबंध कालजयी या महत्वपूर्ण समकालीन रंग–नाटकों से ही जुड़ा। शेक्सपीयर के नाटक विश्व के अधिकांश देशों के टेलीविजन पर समान रूप से पसंद किए गए। इंग्लैंड में तो शेक्सपीयर के सम्पूर्ण 37 नाटक छोटे–पर्दे पर दिखाए गए। 1978 से आरंभ हुई यह टी.वी.–नाटक शृंखला वहां लगातार छः वर्षों तक चलती रही। इसी तरह, फ्रांस में मौलियर, मैरीबॉक्स, ग्रीस मं एरिस्ट्रोफेन्स, यूपीडॉरस और जर्मनी में लैसिंग, हॉप्टमन और ब्रेख़्त जैसे जर्मन नाटककारों के साथ–साथ गोल्दोनी, स्ट्रिंडबर्ग, सिंज इत्यादि के नाटक भी बड़े उत्साह से दिखाए और देखे गए। भारत में टी.वी.–नाटक की शुरूआत 'आज का थियेटर' कार्यक्रम के अन्तर्गत समकालीन श्रेष्ठ रंग–नाटकों के प्रदर्शन से ही हुई। एक महीने में एक नाटक दिखाया जाता था, परन्तु दुर्भाग्य से वह योजना जल्दी ही बंद कर दी गई। नाटकों का स्थान रंग–नाटक, कहानी–उपन्यास के टी.वी–रूपांतरों ने ले लिया। लेकिन टी.वी–नाटक के व्याकरण की आधी–अधूरी समझ के कारण यह कार्यक्रम भी लोकप्रिय नहीं हो पाया और जल्दी ही इनका स्थान सीरियल नामक लघु–नाटकों की धारावाहिक शृंखला ने ले लिया। हम लोग, बीबी नातियों वाली, बुनियाद, रामायण, महाभारत से होती हुई यह परम्परा आज के विविध चैनलों पर दिनरात प्रदर्शित हो रहे बेशुमार धारावाहिकों तक आ पहुंची है। इस संदर्भ में एक दिलचस्प तथ्य यह भी है कि कुछ वर्ष पूर्व दूरदर्शन ने टी.वी. पर दुबारा नाटक दिखाने की योजना बनाई थी और विडम्बना यह है कि तब भी लगभग सभी रंग–नाटकों का ही चुनाव हुआ। ब्रेख्त के जन्म–शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में भी उसके छः नाटकों को टी.वी. पर दिखाने के लिए दूरदर्शन ने ब.व. कारंत, अमाल अल्लाना, एम.के. रैना जैसे राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कुशल निर्देशकों को निमंत्रित किया। ज़ाहिर है ये सब भी मूलतः रंग–नाटक ही थे। पश्चिम में भी इस नाट्य–रूप का मौलिक विकास पांचवें दशक के दौरान ही हो पाया और हमारे यहा तो इससे पहले कि एक अलग विधा के रूप में टी.वी. –नाटक लिखे और प्रस्तुत किए जाते – जैसा कि हम देख चके हैं उसने – लघु–नाटकों की धारावाहिक शृंखला – सीरियल का रूप ले लिया। धारावाहिक का प्रत्येक प्रकरण अपने आप में नाटक ही होता है जिसकी अपनी ऐसी चरम–सीमा होती है, जो आगामी कड़ी के प्रति उत्सुकता और कुतूहल पैदा कर दर्शक को

अतृप्त छोड़ देती है। अगला प्रकरण पिछली कड़ी के पात्रों और प्रसंगों को लेकर ही आगे बढ़ता है और दर्शक को एक अनिश्चित या अंतिम अंत पर ले जा कर अगले प्रकरण की प्रतीक्षा में जिज्ञासारत छोड़ देता है।

वैसे तो टी.वी–नाटक या सीरियल का कोई भी विषय हो सकता है, परन्तु भारतीय परिवेश में उसकी एक बड़ी सीमा यह है कि ज्यादातर घरों में एक ही टी.वी. सैट होता है और परिवार के दो–तीन पीढ़ियों के छोटे–बड़े सभी सदस्य मिलकर उसे देखते हैं। सिनेमा में वयस्कों के लिए अलग फिल्में होती हैं और बच्चों के लिए अलग। अन्य फिल्में भी अपनी–अपनी रूचि एवं सुविधा के अनुसार अपनी निजता की रक्षा करते हुए प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार से अलग और अकेला भी देख सकता है। परन्तु टी.वी. एक ऐसा सार्वजनिक माध्यम है, जिसे एक वक्त में सबके सामने और सबके साथ ही देखना पड़ता है। इसलिए इसका विषय ऐसा होना चाहिए जिसे परिवार के सभी सदस्य मिलकर निःसंकोच देख सकें। अब चूंकि अपनी अलग–अलग विशेषताओं एवं कार्यक्रमों वाले अलग–अलग चैनलों की सुविधा ने विषय की इस सीमा को कुछ हद तक कम कर दिया है।

टी.वी.–नाटक चाहे मंच–प्रदर्शन की प्रस्तुति करे चाहे अपने स्टूडियो में अभिमंचित करे – वह हर हाल में रिकॉर्डेड ही होता है। आज माध्यम और रचना–प्रक्रिया की दृष्टि से टेलीविजन सिनेमा का लघु रूप–सा बन गया है। परन्तु आरंभ में ऐसा नहीं था। फिल्म की शूटिंग जहां एक ही कैमरे से, क्रमहीन टुकड़ों के रूप में, अभिनेताओं की डेट एंव टेक और री टेक की सुविधा के साथ, अलग–अलग समय और स्थान पर प्रायः एक लम्बे अरसे में की जाती है। वह एडीटिंग–टेबल पर फिल्म, साउंड ट्रैक और डबिंग के साथ क्रमबद्ध होकर अपना अंतिम रूप प्राप्त करती है। वहीं टी.वी.–नाटक को मंच पर या स्टूडियो में एक ही बार में लगातार दो–तीन या उनसे भी ज़्यादा कैमरों की मदद से रिकॉर्ड किया जाता था। फिल्म की तरह काटछांट या संपादन की यहां कोई सुविधा नहीं होती थी। आउट–डोर दृश्यों को, यदि वह अत्याधिक आवश्यक हों तो, पहले से शूट कर लिया जाता था, और प्रसारण–प्रदर्शन के समय उन्हें भी, बिना किसी विराम या अन्तराल के, यथासमय मूल नाटक के साथ ही प्रदर्शित (ट्रांसमिट) कर दिया जाता था। 1958 में वीडियो–टेप के आगमन ने टी.वी. नाटक की इस रचना–प्रक्रिया को बदलकर सिनेमा के काफी निकट ला दिया। 1980 से हल्के वज़न के कैमरों की बाज़ार में सहज उपलब्धि से नाटक की मंच या स्टूडियो–सीमाबद्धता भी टूट गई। अब टी.वी.–नाटक भी फिल्मों ही की तरह बहुविध तकनीकी सुविधाओं से संपन्न हो गया और इसमें बहुविध इलैक्ट्रॉनिक विशेष–प्रभाव दिखाना भी संभव हो गया।

टेलीविजन –नाटक का कैमरा प्रायः लांग–शॉट नहीं लेता और चरित्रों तथा सारे घटनाक्रम को एक दूरी के साथ प्रस्तुत करता है। उसी दूरी के साथ जो किसी जीवन्त प्रस्तुति में मंच पर खड़े अभिनेता और दर्शक के बीच होती है। टी.वी.–नाटक या धारावाहिक, ठीक रेडियो–नाटक की तरह अनौपचारिक रूप से घर के सदस्यों और रोशनी के बीच आते–जाते, खाते–पीते या गपशप करते हुए देखे जाते हैं। जब जी चाहे

उसे बदल या बंद कर सकते हैं। सिनेमा–टी.वी. के दर्शक के इस परिवेश और उसकी मानसिकता का यह अंतर इनके नाटकों के प्रेक्षक के मन पर पड़ने वाले समग्र–प्रभाव को भी बड़ी दूर तक प्रभावित या निर्धारित करता है। संप्रेषण की दृष्टि से रंग–नाटक (प्रदर्शन) और फिल्म–नाटक का प्रभााव जहां एकाग्र, सघन एवं तीव्र होता है, वहीं रेडियो और टी.वी.–नाटक का प्रभाव खण्डित, उथला और क्षीण होता है।

टेलीविजन के आगमन ने रेडियो के अच्छे लेखक, कलाकार और श्रोता अपनी ओर खींच कर रेडियो के अंधे–रंगमंच को हाशिए पर डाल दिया और टेलीविजन का बहरा–रंगमंच नाटक या सीरियल के बीच आने वाले सम्मोहक विज्ञापनों के अवरोध के कारण ही नहीं, घर के हलचल भरे माहौल और रिमोट से पल भर में उसे बंद करने या चैनल बदलने की सुविधा के कारण भी रस या प्रभाव को खंडित करता रहता है। वह दर्शक को एकाग्र नाट्यानुभव का पूरा संतोष नहीं दे पाता। अपने छोटे परदे के कारण भी टेलीविजन नाटक के पात्रों एवं कार्यव्यापार को ज़्यादातर टुकड़ों में ही दिखा पाता है।

टेलीविजन धारावाहिक :–

फिल्म की तरह धारावाहिक भी टेलीविजन पर प्रस्तुत होने वाली एक विधा है। इसमें लेखन करने के लिए पहले लेखक को विचारों में खोना पड़ता है। भाषा के सागर में नहाना पड़ता है। प्रकृति में भ्रमण करना पड़ता है। मस्तिष्क में प्रकृति के दृश्यों की सीडी बनानी पड़ती है। क्योंकि धारावाहिक मूल रूप से कथा है। इसमें एक नहीं अनेक पात्र होते हैं। कुछ वर्ग प्रधान होते हैं तो कुछ व्यक्तिगत। उनके संबंधों, द्वंद्वों एवं परस्पर टकराहट से कथा आगे बढ़ती है। टेलीविजन धारावाहिक लेखन में विचार, दृश्यानुसार कथा, कथासार, पात्र एवं संवाद प्रमुख पहलू होते हैं। उन पर विचार करना अति आवश्यक है।

विचार :–

धारावाहिक हो या फिल्म विचार इनमें पहला तत्त्व होता है। पर विचार ऐसा हो जिसमें, नवीनता, रोचकता एवं व्यावसायिक दृष्टि हो। विचार एक पृष्ठ का भी हो सकता है और एक पंक्ति का भी। विचार का संबंध वर्ग विशेष से भी हो सकता है और पशु–पक्षियों से भी। विचार आर्थिक पक्ष का ध्यान रखता है और अपने लक्ष्य का भी। विचार स्पष्ट होना चाहिए ताकि व्यापारी को एकदम आकर्षित कर सके। समस्याएं एवं घटनाओं का लेखक से गहरा संबंध होता है। क्योंकि लेखक जिस परिवेश से संबंध रखता है धारावाहिक में मुख्य रूप से वही परिवेश परिलक्षित होता है। पर घटनाएं जितनी तत्त्व परख होंगी धारावाहिक उतना ही लोकप्रिय बन सकता है।

दृश्यानुसार कथा :–

कहानी जिस प्रकार पर्दे पर दिखाई जाती है ठीक उसी प्रकार लेखक को दृश्यों की क्रमबद्धता पर विचार करना चाहिए। क्योंकि पर्दे पर दृश्य ही कहानी की जुबान होती है। यानी दृश्य ही कहानी बताते हैं। दृश्य का छूटना कहानी का टूटना होता है। लेखक दर्शकों की आलोचना का शिकार हो जाता है। इसलिए लेखक

को कहानी के दृश्यों का विभाजन बड़ी सूझबूझ से करना चाहिए। दृश्यों के आधार पर कथाकार कथा लिखता है और निर्देशक निर्देशन करता है।

धारावाहिक लेखन में प्रत्येक एपिसोड की कहानी का उल्लेख करना अति आवश्यक है। एक पंक्ति में दृश्य की कहानी कहना हॉलीवुड में 'वन लाइनर' कहा जाता है। इसके बाद पटकथा लिखी जाती है। वन लाइनर तैयार होने पर पटकथा लेखक को कहानी की पटकथा लिखने में सुविधा होती है। लेखक को इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि पहले एपिसोड तथा बाद के एपिसोड की नाटकीयता में अन्तर न आ जाए। दृश्यानुसार कथा 14–15 पृष्ठों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

कथासार :–

कथासार का मतलब होता है कहानी को संक्षिप्त रूप में लिखना या प्रस्तुत करना। पर फिल्म की अपेक्षा इसमें अनेक नायक–नायिकाएं होती हैं। एक–दूसरे से जुड़ती–बिछुड़ती कई कथाधाराएँ होती हैं। हर कथा महत्त्वपूर्ण होती है। कथा का सार ऐसा होना चाहिए ताकि कामर्शियल ब्रेक से पहले दर्शकों की धारावाहिक के प्रति उत्सुकता बनी रहे। प्रत्येक एपिसोड के अंत में ऐसा नाटकीय मोड़ प्रस्तुत होना चाहिए ताकि दर्शक अगले एपिसोड का इंतजार करें। कथासार में कब, क्या, कहां, कैसा, कौन आदि सब कुछ दिखना तय होता है।

पात्र :–

धारावाहिक वर्षों तक चलने वाली विधा है। इसलिए इसमें आये पात्रों के कर्तव्यों का अच्छी तरह से ध्यान रखना चाहिए। पात्रों की छोटी–बड़ी आदि सभी बातों को लिखना चाहिए। ताकि भविष्य में कोई गलती न हो सके। कहानी का एक केन्द्रबिन्दु होता है जहां इच्छाएं टकराती हैं। यह टकराव ही पात्र के चरित्र में चार चांद लगाता है। इच्छाएं घटनाओं को जन्म देती हैं। आवश्यक विचार उत्पन्न करती हैं। जब तक पात्र द्वंद्वों में नहीं फंसेगा तब तक समस्याएं पैदा नहीं होंगी। द्वंद्व और समस्याएं ही चुम्बक का काम करती हैं। यानी दर्शक को अपनी ओर खींचे रखती हैं। उसे बीच में से उठने नहीं देतीं।

धारावाहिक के पात्रों के स्वरूप, वेशभूषा, विचार, रहन–सहन एवं बोली इत्यादि में भिन्नता होना बहुत आवश्यक है। पर उद्देश्य एक ही होना चाहिए। अपने लक्ष्य के प्रति एक ही धागे में बंधे रहें। पात्रों के व्यक्तिगत एक व्यावसायिक जीवन की टकराहट धारावाहिक में अच्छा रंग जमाती है। पात्रों में सामाजिक नवीनता हो तो दर्शक पर अधिक प्रभाव डालने में अधिक सक्षम हो सकते हैं। आज का दर्शक अपने से तुलना करता है। अपने परिवेश के पात्रों से तुलना करता है।

संवाद :–

धारावाहिक, फिल्म एवं नाटक में संवादों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लगभग चालीस प्रतिशत दर्शक संवाद

सुनता है। अपने परिवेश में आकर दर्शक वैसा ही संवाद बोलता है। संवाद रुचिकर हो। परिवेश के अनुसार सरल भाषा में संवाद होना चाहिए। परिवेश की भाषा में संवाद होगा तो दर्शक पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। इसलिए धारावाहिक के अनुरूप संवाद होने चाहिए। रामायण, महाभारत, ऊँ नमो शिवायः या यूं कहिए कि तत्कालीन चल रहे धारावाहिक कुंती, हेलो इंस्पेक्टर आप बीती के संवाद बहुत अच्छे हैं। पर ध्यान रहे संवाद हमेशा एक से कभी नहीं लिखे जा सकते। एक से संवाद लिखने से लेखक हल्का हो जाता है। जो व्यावसायिक दृष्टि से सही नहीं है।

7.4 अभ्यासार्थ प्रश्न :–

1. टी.वी. और सिनेमा के अन्तर को बताते हुए इसके इतिहास पर प्रकाश डालें।

....

....

....

....

....

2. टी.वी. नाटक और धारावाहिक में अन्तर स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

3 टी.वी. नाटक और धारावाहिक के तत्वों पर प्रकाश डालें।

....

....

....

....

7.5 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग – दंगल झालटे

....

Course Code - 404 **Lesson No. 8**

Unit-I

रेडियो और टी.वी सिनेमा के लिए रुपान्तरण की प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

8.1 भूमिका

8.2 उद्देश्य

8.3 श्रव्य एवं दृश्य–श्रव्य माध्यमों में भाषिक अंतर

8.4 रेडियो नाटक एवं नाटक में अंतर

8.5 रूपांतरण की प्रक्रिया में अंतर

8.6 साहित्य की विधाओं का दृश्य माध्यमों में रुपांतरण

8.7 टेली–ड्रामा, डॉक्यू ड्रामा

8.8 निष्कर्ष

8.9 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

8.10 लघु–उत्तरीय प्रश्न

8.11 दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

8.12 पुस्तक सुझाव

8.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य विद्यार्थियों को संचार माध्यम के दो प्रकारों श्रव्य संचार एवं दृश्य–श्रव्य संचार के मध्य अंतर को स्पष्ट कराना है, जिससे वे दोनों माध्यमों के उद्देश्य और कार्य प्रणाली के अंतर को पहचान सकेंगे।

8.2 भूमिका

संचार की अवधारणा की तरह उसकी प्रक्रिया भी अत्यन्त जटिल है। वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में सूचना तंत्र के विकास ने भी विश्व को गहरे तक प्रभावित किया है। नई–नई तकनीकों के आने से सूचना तंत्र ने आधुनिक जीवन की प्रत्येक गतिविधि को तीव्र गति से विश्व समाज के सामने सहजता से पहुँचा दिया। संचार के दो मुख्य प्रकार हैं– श्रव्य संचार एवं दृश्य श्रव्य संचार, ये दोनों ही प्रकार इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अंतर्गत आते हैं परंतु फिर भी इनमें पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है। यह अंतर भाषा के स्तर पर, प्रस्तुति के स्तर पर, प्रभावित करने के स्तर पर मिलता है। दृश्य श्रव्य माध्यमों में श्रव्य भी शामिल होता है, परंतु उसमें मनुष्य एक से अधिक ज्ञानेन्द्री का प्रयोग करता है। जबकि श्रव्य माध्यमों को सुनते समय व्यक्ति अन्य कार्यों में भी व्यस्त हो सकता है, इसी कारण एकाग्रता के स्तर पर भी दोनों में पर्याप्त अंतर दृष्टिगोचर है? प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं दोनों माध्यमों के बीच के अंतर को स्पष्ट करेंगे जिनसे इन दोनों प्रकारों की अलग–अलग आवश्यकताओं एवं सूक्ष्म बारीकियों को समझने में मदद मिलेगी।

8.3 श्रव्य एवं दृश्य–श्रव्य माध्यमों में भाषा की प्रकृति

श्रव्य माध्यम अपनी प्रकृति एवं भाषा के स्तर पर दृश्य–श्रव्य माध्यमों से नितांत भिन्न होता है। श्रव्य माध्यमों की भाषा इनकी श्रव्यात्मकता के कारण भिन्न होती है। श्रव्य माध्यमों के लिए लेखन इसकी विशेषताओं या सीमाओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। यहां हम श्रव्य माध्यमों के प्रमुख उपकरण रेडियो एवं दृश्य–श्रव्य माध्यम के प्रमुख उपकरण टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले विविध कार्यक्रमों के भाषिक अंतर का सूक्ष्मता से अध्ययन करेंगे।

(i) **रेडियो समाचार** –रेडियो समाचार की अपनी सीमा है, यहाँ दृश्य, हाव–भाव द्वारा कुछ भी दर्शाया नहीं जा सकता। यहाँ सब कुछ लेखक एवं वाचक पर ही निर्भर करता है इसी कारण रेडियो समाचार में ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए जिससे समाचार सुनते समय भ्रम का आभास हो, इसके लिए सरल शब्दों का प्रयोग अधिक सार्थक होता है जैसे 'एवं' या 'व' के स्थान पर 'और' शब्द का प्रयोग अधिक सहज होगा। रेडियो समाचार में समाचार के स्रोत का उल्लेख भी किया जाना चाहिए इससे समाचार की प्रमाणिकता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त रेडियो वाचन सामान्य गति एवं प्रवाहयुक्त होना चाहिए एवं वाचक का उच्चारण साफ़ और मानक होना चाहिए।

(ii) **टेलीविजन समाचार**– 15 सितंबर 1959 को जब दूरदर्शन की स्थापना हुई तब समाचार की प्रस्तुति का स्वरूप बिल्कुल अलग था। आरंभ में टेलीविजन समाचारों में समाचार से संबंधित विजुअल बहुत कम होते थे, परंतु आज प्रतिस्पर्धा की दौड़ में टेलीविजन पर समाचारों की प्रस्तुति का दबाव बहुत अधिक बढ़ गया है। इसी कारण समाचारों की भाषा रेडियो से बिल्कुल अलग हो चुकी है, उनमें संकेतों, एनिमेशन, हाव–भाव, विजुअल क्लिपिंग के साथ तालमेल स्थापित करने वाली भाषा पर बल दिया जाता है।

(2) **रेडियो एवं टेलीविजन नाटक/धारावाहिकों की भाषिक प्रवृत्ति में अंतर–** रेडियो केवल श्रव्यात्मक होने के कारण रेडियो नाटक अथवा धारावाहिकों की भाषा चित्रात्मक और बिंबधर्मी होनी चाहिए जिससे उसके दृश्य के अभाव को पूरा किया जा सके। रेडियो नाटक की भाषा में पर्याप्त नाटकीयता भी होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रेडियो में अभिधात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है। लक्षणा, व्यंजना एवं आलंकारिक भाषा का प्रयोग कुछ विशिष्ट स्थानों पर ही किया जाता है। रेडियो की अपना एक खास शब्दावली भी होती है, जिसका ध्यान रेडियो में प्रसारित कार्यक्रमों के संपादक रखते हैं।

रेडियो नाटक की भाषा का एक उदाहरण–

नल में से पानी की बूँदें टपकने की आवाज़ टप–टप फिर औरतों का पदचाप, पायल की आवाज़

छन–छन–छन।

नारी स्वर– आ गई तुम!

शीतल– हाँ

नारी स्वर– पानी मिला

शीतल– नहीं, आज भी नल में पानी नहीं

क्या होगा हम गरीबों का?

(अंदर से सिसकियों की आवाज)

इस प्रकार श्रव्यात्मकता एवं विभिन्न ध्वनि संकेतों के आधार पर रेडियो के लिए नाटक लिखे जाते हैं।

टेलीविजन धारावाहिकों की भाषा– टेलीविजन धारावाहिकों की भाषा में इस प्रकार के ध्वनि–संकेत देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वहां श्रव्य के साथ–साथ दृश्य भी है । कहावत भी है कि एक चित्र अनेक शब्दों को बोल देता है इसलिए टेलीविजन लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह लेखन के दौरान दृश्यों को बोलने का अपेक्षित अवसर दे, क्योंकि दृश्यों के साथ यथानुरूप शब्दों के प्रयोग द्वारा भावों आदि का संप्रेषण हो जाता है।

(3) **रेडियो कमेंट्री एवं टेलीविजन कमेंट्री में भाषिक अंतर–** कमेंट्री के लिए किसी भी तरह का आलेख पहले से लिखकर तैयार नहीं किया जा सकता, इसे क्षण–क्षण देखकर वक्ता को सीधा बोलना होता है, अतः रेडियो कमेंट्री का विवरण बिंबात्मक एवं चित्रात्मक होना चाहिए जिससे श्रोता उसे सुनकर अपने मस्तिष्क में पूर्ण घटना का एक सजीव चित्र स्थापित कर सके। टेलीविजन कमेंट्री में दृश्यों के साथ भाषा को संबद्ध कर कमेंट्री की जाती है क्योंकि वहां दर्शकों का ध्यान दृश्यों पर अधिक होता है।

(4) **विज्ञापनों में भाषिक अंतर–** श्रव्य माध्यम होने के कारण रेडियो में विज्ञापन की भाषा अधिक संगीतमय

होनी चाहिए जिससे श्रोता विज्ञापन के प्रति आकर्षित हो सकें। टेलीविजन में विज्ञापन की भाषा संगीतमय न भी हो तब भी दृश्यों के कारण दर्शक आकर्षित होते हैं।

8.4 रेडियो नाटक एवं नाटक में अंतर–

नाटक पहले केवल पढ़ने एवं रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए ही लिखे जाते थे लेकिन बदलती तकनीक के कारण आज इन नाटकों का रेडियो पर प्रसारण के लिए रूपांतरण किया जाने लगा। श्रव्य प्रधान होने के कारण रेडियो के लिए रूपांतरित नाटकों से कहीं अधिक विशेष रूप से रेडियो के लिए लिखे जाने वाले नाटक एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में जाने जाते हैं। हिंदी के प्रतिष्ठित रेडियो नाटककार और एक समय में आकाशवाणी के नाटक विभाग में चीफ़ प्रोड्यूसर के रूप में अपनी सेवाएं देने वाले श्री चिरंजीत के शब्दों में रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक के तात्विक मानदण्डों पर खरा नहीं उतरते। उनके कथानुसार रेडियो नाटक पर '.......रंगमंचीय नाटक का अंकों वाला गणित लागू नहीं होता। यदि हम अंकों, दृश्यों और दृश्यबंधों को ही दृष्टि में रखकर बात करें, तो हम कह सकते हैं कि रेडियो नाटक एकांकी भी होता है और अनेकांकी भी। यह एक दृश्य का भी हो सकता है और अनेक दृश्यों का भी। रेडियो नाटक के दृश्यों की लंबाई–चौड़ाई पर भी कोई बंधन नहीं होता। एक दृश्य एक संवाद का भी हो सकता है और दो सौ संवादों का भी।' रेडियोधर्मी नाटक स्थान एवं काल की अन्वितियों के बंधन से भी मुक्त होता है। वहीं टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले अथवा रंगमंचीय नाटकों में यह बंधन होते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो श्रव्य विधा होने के कारण रेडियो नाटककार के लिए रंगमंचीय नाटकों से कहीं अधिक विस्तार की संभावनाएं होतीं हैं। रेडियो नाटक की सार्थकता भी तभी है जब नाटककार शब्दों में ही दृश्यों के अभाव की पूर्ति इस प्रकार कर दे कि श्रोता उस नाटक को सुनकर ही दृश्यों का अनुभव कर सके। जो वस्तु–तत्व उसके सामने प्रत्यक्ष उभकर नहीं आ रहा, उसे श्रोता अपने मन की आँखों से देख सके। अगर कहा जाए कि 'श्रव्य का रंगमंच श्रोता की कल्पना है' तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

रेडियो नाटक एवं नाटक में तात्विक अंतर

1. **रेडियो–नाटक कथानक–** रेडियो नाटक का कथानक इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि श्रोताओं की रुचि उसमें बनी रहे, उसका आरंभ जिज्ञासा एवं कौतूहल उत्पन्न करने वाला होना चाहिए जिससे श्रोता उसे अंत तक सुनें।

   दृश्य नाटक कथानक– नाटकों में दृश्य एवं ध्वनि के मध्य सम्बन्धात्मकता का ध्यान रखकर ही उसे प्रभावशाली बनाया जाता है, वहां पात्रों के मेकअप, दृश्य, छायांकन प्रकाश व्यवस्था का भी पूर्ण ध्यान रखा जाता है।

2. **रेडियो–नाटक पात्र संरचना–** रेडियो नाटक में पात्रों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन जाती है। ये पात्र

ही रेडियो नाटक को जीवन्तता प्रदान करते हैं। इसके बिना कथानक की कल्पना असंभव है। रेडियो नाटक की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह रंगमंच पर अभिनीत किए जाने वाले नाटकों की तरह अपने पात्रों की वेशभूषा या आयु को सामने नहीं दिखा पाता। इसलिए पात्रों के संवादों और उनकी बोलने की शैली के आधार पर ही श्रोता अपने मन में इस पात्र की रूपावृति को बना लेता है। पात्रों की इन आवाजों के माध्यम से ही श्रोता को उसके व्यक्तित्व, प्रवृति, विचारधारा तथा उसकी परिस्थितियों का ज्ञान होता है। किसी भी पात्र के सामाजिक परिवेश और उसकी मनोवैज्ञानिक अवस्था का परिचय भी उसके संवादों की अदायगी से मिल सकता है। विशिष्ट पात्रों को उनके अनुकूल भाषा देकर उन्हें वास्तविक बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

दृश्य नाटक पात्र संरचना– नाटकों के पात्र वेशभूषा दिखा पाते हैं। उन्हें हाव–भाव पर विशिष्ट ध्यान देना पड़ता है, उनकी मौन में भी अभिव्यक्ति छिपी होती है। उनके द्वारा किए गए कार्यों से कुछ शब्दों को बोलने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

3. **रेडियो–नाटक संवाद–** रेडियो नाटक के संवाद बिंबधर्मी, सरल, सहज, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए, जो श्रोताओं को आसानी से समझ आ सकें। सरल संवाद नाटक को अभिनीत करने वाले वाचकों द्वारा आसानी से बोले जा सकते हैं।

दृश्य नाटक संवाद– नाटकों में संवाद दृश्यों के साथ पूर्णतः सम्बद्ध होना चाहिए, यहाँ संवादों में विभिन्न भाव भंगिमाओं की आवश्यकता होती है। ये भाव–भंगिमाएँ ही संवादों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर पाती हैं।

4. **रेडियो–नाटक ध्वनि प्रभाव एवं संगीत नियोजन–** रेडियो नाटक में ध्वनि एवं संगीत का विशिष्ट महत्त्व होता है। हरिश्चन्द्र खन्ना के शब्दों में– ''ध्वनि प्रभाव परिपार्श्व का निर्माण करते हैं। संगीत वातावरण की पुष्टि करता है।''

दृश्य नाटक ध्वनि एवं संगीत– रेडियो नाटक की भांति ध्वनि एवं संगीत दृश्य श्रव्य संचार में भी होता है परन्तु पटकथा में पात्रों के भावों को यथानुरूप प्रस्तुत करने के लिए भावानुसार ध्वनि का प्रयोग उसे प्रभावशाली बनाता है।

5. **रेडियो–नाटक भाषा–** रेडियो नाटक की भाषा चित्रात्मक और बिंबधर्मी होनी चाहिए जिससे दृश्य के अभाव को पूरा किया जा सके।

दृश्य नाटक भाषा– नाटकों की भाषा में चित्रात्मकता एवं बिंबधर्मिता की अनिवार्यता नहीं होती।

इसके अतिरिक्त इन नाटकों में तल एवं दृश्य प्रबंधन, छायांकन एवं प्रकाश व्यवस्था का भी ध्यान रखना पड़ता

है, जिसकी रेडियो नाटक में आवश्यकता नहीं पड़ती।

8.5 रेडियो और सिनेमा रूपांतरण की प्रक्रिया में अंतर–

प्रिंट माध्यमों में लिखी गई उपन्यास, कहानी अथवा नाटक को श्रव्य संचार एवं दृश्य श्रव्य संचार के अनुरूप बनाना ही रूपांतरण कहलाता है। किसी भी विधा को श्रव्य एवं दृश्य–श्रव्य संचार में रूपांतरित करने की प्रक्रिया भिन्न होती है क्योंकि श्रव्य संचार की प्रकृति श्रव्यात्मकता तक सीमित होती है, जबकि दृश्य–श्रव्य संचार में श्रव्य के साथ–साथ दृश्यों पर भी ध्यान देना पड़ता है। इनकी अपनी–अपनी विशिष्टताएँ एवं सीमाएँ हैं।

श्रव्य संचार की विशिष्टता– गद्य की किसी विधा को श्रव्य संचार के लिए रूपांतरित करते समय लेखक को स्थान की व्यवस्था के लिए सोचना नहीं पड़ता केवल ध्वनि प्रभाव उत्पन्न करके ही स्थान का आभास करवाया जा सकता है, जैसे रेल, समुद्र के दृश्यों के लिए वहां जाने की आवश्यकता नहीं, केवल ध्वन्यात्मक प्रभाव उत्पन्न कर इस समस्या से छुटकारा मिल जाता है।

सीमाएँ– श्रव्य माध्यम के रूपांतरण की प्रक्रिया में कई कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ सकता है, जैसे नाटक में जहां मौन एवं चुप्पी दिखलाई गई है अथवा अभिनेता के हाव–भाव को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है, वहां रेडियो लेखक को कुछ अलग सोचना पड़ेगा अथवा ध्वनि एवं संगीत का सहारा लेकर उसकी भरपाई करनी पड़ेगी परंतु उसकी भरपाई पूर्ण हो पाएगी अथवा नहीं यह पूर्णतः नहीं कहा जा सकता, उदाहरणतः नाटक में यदि लिखा हो उसका चेहरा गुस्से से तमतमा उठा, तो इसे दिखाने के लिए रेडियो नाटककार को एक विशेष ध्वन्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करना पड़ेगा।

दृश्य संचार की विशिष्टता– श्रव्य संचार की जो सीमाएं हैं वे ही दृश्य संचार की विशिष्टता में परिणत हो जाती हैं। वहां पर अभिनय का सहारा लेकर नाटक अथवा कहानी में लिखे हाव–भाव को पूर्णतः चित्रित किया जा सकता है। जैसे– उसने भय से अपनी आंखे बंद कर ली। अभिनेता के चेहरे पर भय एवं आंखें बंद करने का दृश्य दिखलाकर इसे पूर्णतः चित्रित किया जा सकता है।

दृश्य संचार की सीमाएँ– श्रव्य संचार की विशिष्टताएं दृश्य संचार की सीमाएं होती हैं। इसमें ऊंचे पहाड़, समुद्र, रेलवे स्टेशन, चलती रेल का दृश्य दिखाना बहुत ही कठिन होता है, रंगमंच पर ऐसे दृश्यों के लिए सेट तैयार करना बहुत ही कठिन है, इसमें बजट का भी विशिष्ट ध्यान रखना पड़ता है।

8.6 साहित्य की विधाओं का दृश्य माध्यमों में रूपान्तरण

कविता, कहानी और उपन्यासों की रचना पाठकों के लिए की जाती है। ये रचनाएं पढ़े–लिखे लोगों के लिए होती हैं। जो व्यक्ति निरक्षर है, उसके लिए इनका कोई मूल्य नहीं। निरक्षर व्यक्ति इन्हें समझ सके तथा

इनका रसास्वादन कर सके, इसके लिए इन विधाओं का दृश्य माध्यमों में रूपान्तरण किया जाता है। नाटक को प्राचीन आचार्यो ने दृश्य विधा कहा है। इसे साक्षर–निरक्षर, पुरुष–स्त्री, बाल–वृद्ध सभी देख सकते हैं और इसका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए कहानी और उपन्यास का नाटक के रूप में रूपान्तरण होता रहा है। प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआं' का नाट्य–रुपान्तरण और इसके पश्चात् टी. वी. रुपान्तरण सफलतापूर्वक हो चुका है, 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी पर टी. वी. फिल्म बन चुकी है। इसी प्रकार प्रेमचंद के उपन्यासों 'गोदान' और 'गबन' पर फिल्में बन चुकी है। रामचरित मानस काव्य है परन्तु इसे आधार बनाकर फिल्में और टी.वी. धारावाहिक बन चुके हैं। इनके अतिरिक्त अनेक उपन्यासों और कहानियों के नाटय–रूपान्तरण किये गये हैं और किये जा रहे हैं। 'महाभोज' उपन्यास का नाट्य–रुपान्तरण स्वयं लेखिका मन्नू भण्डारी ने किया है। इसी प्रकार देवकी नन्दन खत्री के उपन्यास का नाट्य–रुपान्तरण 'काजर की कोठरी' नाम से मृणाल पाण्डे ने किया है।

ये सभी रुपान्तरण करने का एक ही प्रमुख उद्देश्य रहा है कि साहित्य की महान् कृतियों को हिन्दी भाषी साक्षर–निरक्षर पाठक जान सकें तथा उनका रसास्वादन कर सकें। जो प्रभाव आंखों से देखी रचना का दर्शक पर पड़ता है, वह श्रव्य या पठित का नहीं पड़ सकता। पठित या श्रव्य में पाठक या श्रोता को कल्पना करनी पड़ती है जबकि दृश्य में किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं होती। पात्र और घटनाएं दर्शक के सामने होते हैं। घटनाएं उसकी आंखों के सामने घटित होती हैं और पात्र अपने क्रिया–कलाप तथा गतिविधियां उसके सामने करते हुए उसे दिखाई देते हैं। आंखों से देखी गई कोई बात निश्चय ही दर्शक को अधिक प्रभावित करती है। इसीलिए साहित्य की श्रव्य या मुद्रित विधाओं का दृश्य माध्यमों में रुपान्तरण किया जाता है। नाटक की अपनी कुछ सीमाएं हैं। अनेक दृश्यों और घटनाओं को नाटक में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। बड़े–बड़े युद्धों, पहाड़ों, नदियों, झरनें, महलों, सघन वनों, हिंसक पशुओं, पक्षियों, उद्यानों, हत्या, वध, स्नान आदि को नाटक में प्रस्तुंत करना कठिन है तथा नाट्यशास्त्रीय वर्जनाएं भी हैं। ये सभी कार्य फिल्म में सरलता से हो जाते हैं, क्योंकि फिल्म के पास जहां थियेटर की गति और कैमरा है, वहां वह दृश्य और श्रव्य भी है। इन चार विशेषताओं के कारण वह नाटक को पीछे छोड़ जाती है। इसीलिए नाटक के बाद फिल्म के रूप में साहित्य की विधाओं के रूपान्तरण होते रहे हैं। फिल्म को फोटोग्राफिक मीडिया माना जाता है, परन्तु उसमें श्रव्य और दृश्य के गुण भी विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त सात्विक भावों की या अभिनय की अभिव्यक्ति के लिए उसके पास 'क्लोज–अप्स' भी है जिसका प्रयोग फिल्मों में किया जाता है। चेहरे की प्रत्येक मुद्रा और भाव, रेखा और सलवट सभी दर्शक के सामने उभर आती हैं। ये मुद्राएं और भाव नाटक में दूरी पर बैठा दर्शक नहीं देख सकता, परन्तु फिल्म का दर्शक इन्हें देख सकता है। टी. वी., वीडियो में भी इसी तक़नीक का प्रयोग किया जाता है। फिल्म देखने के लिए दर्शक को सिनेमा हाल में जाना पड़ता है जबकि टी.वी और विडियो उसके घर में प्रवेश कर चुके हैं। यहां उसे बटन दबाने की ही आवश्यकता पड़ती है और दृश्य या घटनाएं उसके सामने साकार हो जाती हैं। टी. वी. की इस लोकप्रियता के कारण अब साहित्य की विधाओं का टी.

वी. नाटक के रूप में रूपान्तरण हो रहा है। टेली–फिल्में, टेली नाटक लिखे जा रहे हैं तथा टी. वी. पर प्रसारित हो रहे हैं इस प्रकार कहानी, उपन्यास के दृश्य माध्यम के रूप में रूपान्तरण का पहला चरण नाटक है। नाटक की सीमाओं के कारण दूसरा चरण फिल्म के रूप में आया। फिल्म की घटती लोकप्रियता और टी. वी. वीडियो की घरों में पैठ के कारण तीसरा चरण टी. वी. नाटकों आदि का है।

जब भी साहित्य की किसी विधा को नये रूप में रूपान्तरित किया जाता है तो बहुत कुछ छोड़ना और जोड़ना पड़ता है। माध्यम के अन्तर के कारण कहानियों और उपन्यासों में भारी अन्तर आ जाता है। जिन बातों को पढ़ा या सुना जाता है, उन्हें जब दृश्य माध्यम के रूप में ढाला जाता है तो इसमें परिवर्तन आना स्वाभाविक है। कहानीकार या उपन्यासकार ने शब्दों का सहारा लेकर रचना को तैयार किया होता है। जब यह नाटक बनता है तो थियेटर जीवित कलाकारों को माध्यम के रूप में प्रयुक्त करता है। सिनेमा और टी. वी. कैमरा माध्यम को प्रयुक्त करते हैं। माध्यम में परिवर्तन आ जाने के कारण रचना के रूप में परिवर्तन करने पड़ते हैं। रूप में जब परिवर्तन किये जाते हैं तो रचना कुछ बदल जाती है। ऐसा होने पर आरोप लगाया जाता है कि फिल्मकार ने मूल रचना के साथ न्याय नहीं किया। शतरंज के खिलाड़ी' कहानी और 'निर्मला' उपन्यास के टी. वी. रूपान्तरण पर इसी प्रकार के आरोप लगाए जाते रहे हैं। फिल्म और टी. वी. वाले व्यावसायिक दृष्टि को लेकर चलते हैं। उनका उद्देश्य अधिक से अधिक पैसा कमाना होता है। यह पैसा उन्हें तभी प्राप्त हो सकता है जब दर्शकों की संख्या बढ़े। दर्शकों की संख्या बढ़ाने के लिए वे मूल कृति में परिवर्तन करते हैं तथा ऐसी कुछ स्थितियां या दृश्य डाल देते हैं जो मूल रचना में होते ही नहीं अथवा उनका वहां पर कोई महत्त्व नहीं होता। इसी कारण साहित्य की ये विधाएं रूपान्तरण पर बदली हुई–सी दिखाई देती हैं। 'चन्द्रकाता' तथा 'मृगनयनी' इसके उदाहरण है। इसका समाधान यही है कि फिल्म या टी. वी. रूपान्तरकार मूल कथ्य और सन्देश के साथ अधिक छेड़छाड़ न करे। इससे मूल रचना भी बनी रह सकती है और फिल्मकार या टी. वी. कार की व्यावसायिक दृष्टि भी।

8.7 टेली–ड्रामा / डाक्यूमेंटरी ड्रामा

टेलीविजन का प्राण इसकी चित्रात्मकता है। कोई व्यक्ति किसी बात को कहने के लिए हजार शब्दों का प्रयोग करता है तब भी वह अपनी बात को कई बार आधी–अधूरी या अस्पष्ट कह पाता है। यदि इसके स्थान पर दर्शक के सामने एक चित्र रख दिया जाये तो यह चित्र उस बात को तत्काल और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत कर देता है। इसीलिए कहा जाता है कि एक चित्र हजारों शब्दों के समतुल्य होता है। जिस भाव को या जिस स्थिति को हजार शब्द व्यक्त नहीं कर पाते, उसे एक चित्र स्पष्ट कर देता है। टेलीविजन के लिए लेखन–कार्य मुद्रण माध्यम से पूर्णतः भिन्न है। इसके लिए लिखते हुए लेखक को पर्दे को ध्यान में रखना होता है। उसे शब्द, ध्वनि आदि के साथ–साथ वीडियो तकनीक, साउण्ड तकनीक, फिल्म–तकनीक आदि का भी पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। टेलीविजन–लेखन करते हुए पृष्ठ को दो भागों में लिखा जाता है–दृश्य तथा श्रव्य

रूप में। इस कार्य को करते हुए लेखक को चार आलेख बनाने पड़ते हैं– ड्राफ्ट आलेख, संशोधित आलेख, अंतिम आलेख तथा कैमरा आलेख। ड्राफ्ट आलेख में संपूर्ण कार्यक्रम का आलेख, विस्तृत निर्देश, अभिनेताओं को जानकारी आदि के साथ इसे बोला जाने वाला बनाया जाता है। संशोधित आलेख में पहले आलेख का संशोधन होता है। इसमें टेलीविजन से सम्बद्ध लोगों के विचारों–सुझावों को स्थान दिया जाता है। संशोधित आलेख में तकनीकी निर्देश जोड़ने के बाद अंतिम आलेख तैयार होता है। इसे रिहर्सल के लिए प्रयुक्त किया जाता है। कैमरा आलेख में सभी निर्देश विस्तार से दिये जाते हैं। इसे स्टूडियो में रखा जाता है तथा इसके अनुसार कार्यक्रम रिकार्ड किए जाते हैं।

जहां तक डाक्यूमैंटरी का संबंध है, इनका निर्माण वृत्तचित्रों पर आधारित होता है। डाक्यूमैंटरी फिल्म का उद्देश्य होता है –सूचना देना तथा दर्शकों को प्रशिक्षित करना समाज और संसार में अनेक ऐसी राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्राकृतिक गतिविधियां होती रहती हैं, जिनका हमें पता नही होता या हमें इनके बारे में अपूर्ण ज्ञान होता है। साहित्य, कला, विज्ञान, संस्कृति, पर्यटन स्थल, ऐतिहासिक स्थान आदि ऐसे क्षेत्र हैं जहां पर आए दिन अनेक कार्यकलाप तथा गतिविधियां चलती रहती है। इन सबको प्रकाश में लाने में टेलीविजन का कैमरा हमारी सहायता करता है। इसके द्वारा हम उन बातों से परिचित होते हैं जिनका हमें पता नहीं होता। इस कार्य को डाक्यूमैंटरी करती है। इसके लिए प्रस्तुतकर्ता अनेक उपकरणों और शैलियों का प्रयोग करता है तथा संग्रह की गई सूचनाओं को इस क्रम और ढंग से लगाता है कि वह रोचक और मोहक लगे। वे छोटी–छोटी घटनाओं या प्रसंगों को सूत्रबद्ध करके प्रस्तुत करता है। टेली–ड्रामा में नाटकीय स्थितियों को इस प्रकार उभारा जाता है कि वे आकर्षक और प्रभावशाली लगें। इस कारण टेली ड्रामा कलाकारों का सहारा भी लिया जाता है। टेली–ड्रामा में कलाकर संवाद बोलते है। अभिनय की गति को आगे बढ़ाते हैं। टेली–ड्रामा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं तथा संदेश दर्शकों को संप्रेषित करते हैं। टेली–ड्रामा में कलाकारों के संवाद के द्वारा लेखक के अभिप्राय को प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु डाक्यूमैंटरी में वाचन की प्रमुखता रहती है। यह वाचक पूर्णतः स्पष्ट होता है। डाक्यूमैटरी में तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं, परन्तु टेली–ड्रामा में कल्पना का प्रयोग भी किया जाता है। डाक्यूमैटरी में यदि तथ्यों को तोड़ा–मरोड़ा जाए तो वह दर्शकों का विश्वास खो देता है। इसलिए डाक्यूमैंटरी तथ्यों पर आधारित होती है, परन्तु टैली–ड्रामा में लेखक कुछ स्थितियों और प्रसंगों की कल्पना भी कर लेता है ताकि वह दर्शकों को बांध कर रख सके। इस प्रकार डाक्यूमैंटरी और टेली–ड्रामा दोनों भिन्न–भिन्न हैं। एक तथ्यों का आधार लेकर चलती है तो दूसरा कल्पना को। एक की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता तथ्यों के कारण बनती है तो दूसरे की मोहकता कल्पना, अभिनय आदि के कारण।

8.8 निष्कर्ष–

अतः यह कहा जा सकता है कि श्रव्य एवं दृश्य– श्रव्य संचार का अपना–अपना महत्त्व है, उनका प्रभाव भी

अलग है, दोनों का ही अपना विशिष्ट स्थान है और किसी एक माध्यम के अधिक लोकप्रिय होने से अन्य माध्यमों की उपयोगिता कम नहीं होती।

8.9 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

1) थ्ड ;थ्तमुनमदबल डवकनसंजपवदद्ध (आवृति नियामक)–रेडियो का ऐसा चैनल जिस पर मौसम की खराबी का कोई असर न पड़े

2) रेडियोधर्मी– रेडियो की विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर कार्य करने वाला

3) अन्विति–विराम अथवा अन्तराल

4) दृश्यबंध– एक ही सेट अप में दर्शाया जा सकने वाला दृश्य

5) पार्श्व– नेपथ्य अथवा परदे के पीछे से

6) बिंबधर्मिता–चित्र या दृश्य निर्माण करने की शक्ति

8.10 लघु–उत्तरीय प्रश्न

(1) निम्नलिखित शब्दों के बारे में बताइए–

(क) श्रव्य माध्यम

(ख) दृश्य–श्रव्य माध्यम

(ग) ध्वनि प्रभाव एवं संगीत नियोजन

(घ) रूपांतरण

8.11 दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1) श्रव्य और दृश्य–श्रव्य माध्यम को स्पष्ट करते हुए उसके भाषिक अंतर का सविस्तार विवेचन कीजिए ।

....

....

....

....

2) रेडियो और दृश्य नाटक में अंतर स्पष्ट करें ।

....

....

....

3) रेडियो और दृश्य नाटकों में रूपांतरण की प्रक्रिया का विवेचन करें ।

....

....

....

4) श्रव्य और दृश्य–श्रव्य संचार की सीमाओं और शक्तियों पर अपने विचार प्रस्तुत करें ।

....

....

....

8.12 पुस्तक सुझाव

1) फीचर लेखन – डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. सुनील कुमार तिवारी, संजय प्रकाशन, दिल्ली

2) भाषा–प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

3) संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्र प्रकाश मिश्र, द्वितीय संस्करण–2006, संजय प्रकाशन, दिल्ली

4) जन पत्रकारिता, जन संचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, संजय प्रकाशन, दिल्ली

5) हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम (भाग–1) – संपादित डॉ. वेद प्रताप वैदिक, संस्करण–1997, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली

6) रेडियो और दूर–दर्शन पत्रकारिता – डॉ. हरिमोहन, प्रथम संस्करण–1997, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली

7) मीडिया लेखन–कला – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, डॉ. पवन अग्रवाल, संस्करण–2001, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ

8) जनसंचार के सामाजिक संदर्भ – जवरीमल्ल पारख, संस्करण–2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

8.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1) फीचर लेखन – डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. सुनील कुमार तिवारी, संजय प्रकाशन, दिल्ली

2) भाषा–प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

3) संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्र प्रकाश मिश्र, द्वितीय संस्करण–2006, संजय प्रकाशन, दिल्ली

4) जन पत्रकारिता, जन संचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, प्रथम संस्करण–2004, संजय प्रकाशन, दिल्ली

5) हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम (भाग–1) – संपादित डॉ. वेद प्रताप वैदिक, संस्करण–1997, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली

6) रेडियो और दूर–दर्शन पत्रकारिता – डॉ. हरिमोहन, प्रथम संस्करण–1997, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली

7) मीडिया लेखन–कला – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, डॉ. पवन अग्रवाल, संस्करण–2001, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ

8) जनसंचार के सामाजिक संदर्भ – जवरीमल्ल पारख, संस्करण–2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

....

Course Code - 404 **Lesson No. 9**

Unit-I

पटकथा लेखन

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 पटकथा लेखन

9.3 पटकथा लेखन का स्वरूप

9.4 फिल्म व टेलीविज़न की पटकथा में अन्तर

9.5 टी.वी. नाटक और धारावाहिक पटकथा लेखन

9.6 सारांश

9.7 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.9 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप –

– पटकथा लेखन के स्वरूप को जान सकेंगे।

– फिल्म एवं टेलीविजन की पटकथा के अंतर को समझेंगे।

– टी.वी. नाटक और धारावाहिक पटकथा लेखन से अवगत होंगे।

9.2 पटकथा लेखन

पटकथा लेखन फिल्म लेखन का महत्वपूर्ण अंग है। कथा को दृश्य–श्रव्य माध्यम से अभिव्यक्त करने हेतु पटकथा लिखी जाती है। कथा से पटकथा का जन्म होता है पर यह भी सच है कि घटना है तो पटकथा बनेगी। घटना के बिना कथा नहीं बन सकती। घटना भी समस्या प्रधान होनी चाहिए, क्योंकि समस्या ही नाटकीय तत्त्व प्रदान करती है। या यूं कहिए कि समस्या से ही नाटक जन्म लेता है। घटना के कुछ पात्र हों, उनके आगे कोई समस्या उत्पन्न हो, उस समस्या से कोई संकट पैदा हो, संकट का समाधान ही नाटक का अन्त कर देता है। जब किसी घटना की प्रसंग दृश्यों के रूप में शृंखला बन जाती है तो फिल्म की भाषा में उसे सीक्वेंस कहा जाता है। सीक्वेंस से ही पटकथा का निर्माण होता है।

मनोहर श्याम जोशी अपनी पुस्तक 'पटकथा लेखन : एक परिचय के पृष्ठ 21 पर लिखते हें कि पटकथा कुछ और नहीं कैमरे से फिल्माकर पर्दे पर दिखाए जाने के लिए लिखी हुई कथा है। इससे आगे यह भी कहा जाए कि कथानक को विभिन्न दृश्यों में तोड़कर प्रस्तुत करना पटकथा है तो अतिशयोक्ति न होगी। पटकथा लेखन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की एक ऐसी विधा है जिसमें कहानी को दृश्यों के रूप में बांटना होता है। पटकथा में दृश्य शृंखला की वही स्थिति होती है जो उपन्यास में परिच्छेदों की होती है। इस विधा में जहाँ घटनास्थल बदलता है वहीं दृश्य भी बदल जाता है।

डॉ. अनुपम ओझा पटकथा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – "पटकथा लेखन का सामान्य अर्थ है – विभिन्न उपक्रमों को एक दूसरे से इस तरह से जोड़ना कि एक मुकम्मल कहानी चित्रित हो उठे। यानी स्क्रीन पर उभर आए।" उपक्रमों से उनका अभिप्राय दृश्य, कथा, पटकथा, संवाद, शॉर्ट, सीन, सम्पादन आदि से है। विष्णु मेहरोत्रा कहते हैं कि – "पहले फिल्म कागज पर बनती है, फिर सेलोलाईड पर उतरती है। कागज पर फिल्म बनने अर्थात लिखने का प्रमुख एक्ट, यह प्रक्रिया ही पटकथा है।",

स्पष्ट रूप से कहा जाए तो पटकथा फिल्म का वह पेपर वर्क है जिसके द्वारा फिल्म का प्रारूप तैयार होता है और जिससे निर्देशक, कलाकार, संवाद लेखक एवं फिल्म निर्माण से संबंधित सभी विभागों को फिल्म निर्माण हेतु सहायता मिलती है।

9.3 पटकथा लेखन का स्वरूप

पटकथा लेखन एक सृजनात्मक कला है, इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. अनुपम ओझा कहते हैं – "लेखन की छोटी इकाई शब्द या वाक्य है, किन्तु पटकथा लेखन की छोटी इकाई शॉट है। वाक्यों को जोड़ने से पैराग्राफ बनता है, शॉटस को जोड़ने से दृश्य (अथवा सीन) बनता है। शॉट, सीन और सिक्वेंस के मिलने से पटकथा बनती है। पटकथा का आधार कहानी होती है। कहानी किसी एक आयडिया, प्लाट या थीम पर खड़ी की जाती है। कहानी को चलचित्र की भाषा में ढालने के कार्य को पटकथा–लेखन कहा जाता है।" वहीं कमलेश्वर का इस संदर्भ में कहना है कि – "कुछ अनुभव शब्दों से परे होते हैं, कुछ दृश्यों से परे, इसलिए फिल्म लेखन में उन्हें शब्दों, दृश्यों और ध्वनियों से बांधना पड़ता है। शब्दहीन दृश्य से भरा

हुआ सन्नाटा कभी–कभी जो बात कह देता है, वो शब्दों से नहीं कहीं जा सकती। काव्य की बिम्ब क्षमता, शब्दों की विचार क्षमता और दृश्यों की अनुभव–क्षमता के संयोग से एक सीन दृश्य आकार पाता है। काव्य क्षमता को कैमरा, दृश्य–क्षमता को निर्देशक और विचार क्षमता के साथ–साथ सम्पूर्ण अनुभव–क्षमता की अभिव्यक्ति लेखक करता है। इसीलिए कोई भी सार्थक फिल्म पहले लिखी जाती है – तब 'बनाई' जाती है।" इस प्रकार कमलेश्वर पटकथा में शब्दों, दृश्यों तथा ध्वनियों को बांधने तथा पटकथाकार की अनुभव क्षमता की अभिव्यक्ति पटकथा में ढालने की बात करते हैं।

पटकथा लिखते समय पहले आप अनिश्चित वर्तमानकाल में घटना को घटते हुए देखें, फिर उसे सफेद कागज पर पेन से शब्द का रूप दें। इसे लिखते समय ता है, ती है, ते हैं आदि क्रिया विभक्तियों का प्रयोग करें। इस बात का भी ध्यान रखें कि ऐसी कौन सी घटनाएं ली जाएं जिनसे पात्रों के चरित्र का पता चल सके। आपको इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि आपके अलग–अलग पात्र जो भी हों, वे किस मनःस्थिति एवं परिस्थिति के वशीभूत होकर कार्य कर रहे हैं। किस लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहते हैं? प्रेरणा कमी और लक्ष्य यानी मोटिवेशन, एक्शन एंव रोल आदि बातें आपको अपने पात्र के विषय में मालूम होनी चाहिए। इसी आधार पर आप जन समूह को बता पायेंगे कि आपके पात्र क्या चाहते हैं? किसलिए चाहते हैं, और अपनी उम्मीदों के लिए क्या कुछ करने को तैयार हैं।

पटकथा लिखते समय दृश्य के ऊपर दिन और रात का ही उल्लेख करना चाहिए। यह बताने की जरूरत नहीं है कि दिन के चार बजे हैं या पांच। समय बताना जरूरी हो तो घड़ी का शॉट डालना चाहिए। या किसी संवाद द्वारा समय की सूचना देनी चाहिए। धारावाहिकों में कथानक कई–कई उपकथाओं वाला होना चाहिए ताकि उसे लम्बे समय तक किस्त–दर–किस्त रूप में दिखाया जा सके।

लेखक व दर्शक में काफी अन्तर होता है। लेखक घटना लिखता है। जबकि दर्शक पर्दे पर घटना को घटित होते हुए देखता है। पात्रों को बोलता हुआ सुनता है। फिल्म में हमेशा वर्तमान दिखाया जाता है। फिल्म की कहानी सुनते ही हम अनिश्चित वर्तमान की बात करने लगते हैं। 'एक भिखारी था' के स्थान पर 'एक भिखारी होता है' का प्रयोग करते हैं।

पटकथा का आंतरिक भाग

पटकथा तीन अंकीय सूत्र पर आधारित होती है। प्रथम अंक कथानक का गर्भ होता है। दूसर अंक जवानी तथा तीसरा अंक बुढ़ापे से संबंध रखता है। यानी प्रथम भाग में ऐसी बातें प्रस्तुत करनी चाहिए जिससे आगे चलकर दृश्यों में चरित्र–चित्रण नाटकीय मोड़ ले सकें। पात्रों की स्थिति, परिस्थिति एवं कामनाएं इसी अंक की घटनाओं से उजागर होती हैं। आने वाली घटनाओं को न्यौता दिया जाता है। इसको सेट–अप भी कहा जाता है। दो घंटे की फिल्म का सेट–अप लगभग 30 मिनट का होना चाहिए। सेट–अप अधिक लंबा होने से दर्शक ऊब जाता है। पटकथा की क्वालिटी पर प्रश्नचिह्न लगता है। यदि पात्र का व्यवसाय या आदत को बताना हो तो उसका शुरू में ही परिचय दें। जैसे नायक दिल्ली पुलिस का एक सिपाही बताएँ बाद

में स्थान और अंत में उसकी बाधाएँ एवं हथियारों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल करना बताएँ।

दूसरे अंक में पात्रों का विशिष्ट परिस्थिति में अलग–अलग कामनाओं के कारण हुआ झगड़ा दिखाना होता है। कथानक को संवादों के माध्यम से उलझाना चाहिए। ताकि वह चरमोत्कर्ष की ओर आसानी से बढ़ सके। पात्रों का घात–प्रतिघात का वर्णन इस तरह दिखाना चाहिए कि उन्हें संकट का अहसास हो जाए। कहानी का विकास इसी भाग में होता है इसलिए पटकथा का दूसरा भाग सबसे बड़ा भाग कहलाता है और यह अधिक मेहनत वाला भी है। एक घटना से दूसरी घटना जन्म ले, एक दृश्य से दूसरा दृश्य उत्पन्न हो। कथानक का ऐसा कोई दृश्य न हो जो कथा को आगे बढ़ने से रोके। पटकथा का तीसरा अंक संकट के समाधान का होता है, आभास का होता है। इस अंक पर कथा खत्म हो जाती है। यह अंक लंबा नहीं होता, बल्कि पहले अंक की तरह छोटा होता है। इस भाग के अधिकांश हिस्से को चरमोत्कर्ष के रूप में दिखाएं।

दो घंटे की फिल्म के लिए पटकथा के लगभग 100–120 पृष्ठ टंकित होने चाहिए। प्रथम अंक के लिए 30 पृष्ठ निर्धारित करें। पटकथा लिखते समय कहां और कैसे वाली बात ध्यान में रखनी चाहिए। तीनों अंकों के क्रम का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। पटकथा लिखने से पहले कथानक बिन्दु तय कर लेना चाहिए ताकि आपके कथा निर्माण को दिशा मिल सके। दर्शकों के मन में जिज्ञासा का मुद्दा अच्छी तरह से उठाएं। कथानक के नाटकीय तत्त्व का हौंसला बढ़ाएं। सेट–अप में यह बताना आवश्यक है कि पात्र कहां है, कौन हैं, क्या करते हैं और क्या चाहते हैं?

यदि आप कथा के क्षेत्र में रुचि रखते हैं तो टेलीविजन पर चल रहे धारावाहिक, टेलीफिल्म, फिल्म एवं वृत्तचित्र आदि का प्रभाव आपके मन पर जरूर पड़ता होगा। उनमें आये हुए संवाद एवं दृश्यों आदि के विषय में सोचते होंगे कि इसें अमुक संवाद, दृश्य इस प्रकार होता तो ज्यादा अच्छा लगता। आपका क्षेत्र सीमित है इसलिए आपका विचार मन की रद्दी की टोकरी में पड़कर लुप्त हो जाता है। यदि आप जरा–सा इस तकनीक की तरफ ध्यान दे ंतो रद्दी वाली टोकरी में जाने से अपने विचार को रोक सकते हैं, अपना कैरियर इस क्षेत्र में निश्चित कर सकते हैं।

पटकथा लेखन का प्रशिक्षण दिल्ली और दिल्ली से बाहर कई महानगरों में दिया जा रहा है। समाचार पत्र–पत्रिकाओं में पटकथा लेखन से संबंधित एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की जानकारी समय–समय पर मिलती रहती है। पर सुधांशु गुप्त कहते हैं कि आप किसी फिल्म, टेलीविजन, धारावाहिक या डाक्यूमेंट्री की शुरूआत करने जा रहे हैं, सबसे पहले आप उस कथा का जिस पर आपको कार्यक्रम बनाना है, स्क्रीन प्ले तैयार करते हैं और यदि आपकी भाषा अच्छी है और अनुभवों का आपके पास अपार भंडार है तो आप डायलॉग या संवाद भी लिख सकते हैं। हिन्दी, अंग्रेजी और तमाम दूसरी भाषाओं की फिल्में भी आपको अच्छा पटकथा लेखक बनाने में सहायक होंगी। पटकथा लेखक अपनी जिन्दगी का भरपूर अनुभव बटोरे, विभिन्न किरदारों को जानने एवं समझने की रुचि रखे। कल्पनाशील हो तो युवा एक अच्छा पटकथा लेखक बन सकता है।

आम आदमी की जिन्दगी का भरपूर अनुभव बटोरे, विभिन्न किरदारों को जानने एवं समझने की रुचि रखे। कल्पनाशील हो तो युवा एक अच्छा पटकथा लेखक बन सकता है। आम आदमी की जिन्दगी से बेहतर जिन्दगी जी सकता है। आपका खर्च रत्तीभर भी नहीं होगा पर पारिश्रमिक अधिक मिलेगा। नाम होगा, यश मिलेगा।

मनोहर श्याम जोशी का कहना है कि पटकथा लेखन एक हुनर है। अंग्रेजी में पटकथा–लेखन के बारे में पचासों किताबें उपलब्ध हैं और विदेशों में खासकर अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में पटकथा–लेखन के बाकायदा पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। लेकिन भारत में इस दिशा में अभी कोई पहल नहीं हुई है। हिन्दी में पटकथा–लेखन और सिनेमा से जुड़ी अन्य विधाओं के बारे में कोई अच्छी किताब छपी ही नहीं है। इसकी एक वजह यह भी है कि हिन्दी में सामान्यतः यह माना जाता रहा है कि लिखना चाहे किसी भी तरह का हो, उसे सिखाया नहीं जा सकता। कई बार तो लगता है कि शायद हमें लिखना सीखना भी नहीं चाहिए। यह मान्यता भ्रामक है और इसी का नतीजा है कि हिन्दी वाले गीत–लेखन, रेडियो, रंगमंच, सिनेमा, टी. वीं और विज्ञापन आदि में ज्यादा नहीं चल पाए। लेकिन इधर फिल्म व टी.वी. के प्रसार और पटकथा–लेखन में रोजगार की बढ़ती संभावनाओं को देखते हुए अनेक युवा पटकथा–लेखन में रुचि लेने लगे हैं और पटकथा के शिल्प की आधारभूत जानकारी चाहते हैं।

9.4 फिल्म व टेलीविजन की पटकथा में अन्तर

साहित्य से जुड़ा हुआ व्यक्ति टेलीविजन लेखन में सक्षम है जबकि फिल्म के संबंध में ऐसा नहीं है। पर टेलीविजन में समय का अभाव अवश्य होता है। टेलीविजन में संवादों की जरूरत होती है। संवादों में जितनी अधिक नाटकीयता होगी उतना ही संवाद अच्छा माना जायेगा। अच्छा संवाद धारावाहिक में चार चांद लगा सकता है। पर यह तभी संभव है जब आप प्लाट में गुंजाइश रखते हैं। दृश्य के सिनेरियो के अन्दर वह स्थिति पैदा करनी होती है जिससे संवादों में रोचकता बढ़े। जबकि फिल्मों में ऐसा नहीं है। फिल्म लेखक को वृहत चिंतन की जरूरत होती है टेलीविजन में एक थीम होती है, विषय होता है। जहाँ विषय व थीम एक साथ हों वहाँ अच्छे लेखक की आवश्यकता होती है।

फिल्म की पटकथा पूर्ण रूप से व्यवसाय को ध्यान में रखकर लिखी जाती है। जबकि टेलीविजन की पटकथा के संबंध में व्यवसाय के साथ–साथ विचार प्रधान होता है। टेलीविजन छोटे पर्दे से संबंध रखता है जबकि फिल्म बड़े पर्दे से। इसलिए टेलीविजन के शॉट्स निकट से लिये जाते हैं जबकि फिल्म के लिए शॉट्स आवश्यकतानुसार दूर व पास से लिये जाते हैं। टेलीविजन एकाग्रता से नहीं देखा जाता इसलिए उसमें मूक शॉटों का और बिंबों का उतना महत्त्व नहीं रहता जितना कि फिल्मों में होता है।

9.5 टी.वी. नाटक और धारावाहिक पटकथा लेखन

टेलीविजन में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का प्रसारण होता है। प्रत्येक कार्यक्रम के अनुसार अलग–अलग

प्रकार से पटकथा का लेखन होता है। पटकथा लेखन में निम्न बातें हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए –

❖ पटकथा लेखन के समय पटकथा लेखक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह टेलीविजन के किस कार्यक्रम के लिए पटकथा का लेखन कर रहा है। समाचार, वृतचित्र, धारावाहिक आदि कार्यक्रमों की पटकथा के अपेक्षित अंतर के अनुसार ही वह अपनी पटकथा लिख सकता है।

❖ पटकथा लेखन के दौरान एक दृश्य में अधिक पात्रों की संख्या न हो इसका ध्यान रखना भी पटकथा लेखक के लिए जरूरी है। टेलीविजन एक छोटा पर्दा है। इसलिए छोटे पर्दे पर अधिक पात्रों की संख्या दर्शकों को परेशान कर सकती है।

❖ तकनीकी निर्देशों के साथ–साथ पात्रों के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाए रखने के लिए उनकी वेशभूषा एवं मुद्राओं का संकेत भी किया जाना चाहिए।

❖ पटकथा के छायांकन के लिए सभी दृश्यों को क्रमानुसार लिखना चाहिए। विभिन्न दृश्यों में से कुछ दृश्य एक ही स्थल के होते हैं। निर्देशक बाद में अपनी सुविधा के अनुसार उन दृश्यों पर फिल्मांकन कर सकता है।

❖ पटकथा की भाषा बोलचाल की भाषा हो तो बेहतर होगा। लेकिन साहित्यिक कार्यक्रमों या किन्हीं विशिष्ट कार्यक्रमों की भाषा उस कार्यक्रम के अनुरूप बोलचाल से इतर भी हो सकती है। लेकिन पटकथा लेखक को यह ध्यान रखना चाहिए कि भाषा ऐसी हो जिसके साथ दर्शक सामंजस्य बिठा सकें।

❖ पटकथा लेखक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह कम से कम शब्दों में ही आवश्यक बातों का लेखन करें । टेलीविज़न में दृश्यों और शब्दों में सामंजस्य बनाए रखने के लिए वह दृश्यों के अनुरूप भी अपना लेखन कार्य कर सकता है।

टेलीविजन में पटकथा लेखन के प्रकार – टेलीविजन में विभिन्न कार्यक्रमों के निर्माण के लिए विभिन्न तकनीकों का सहारा लिया जाता है। उन्हें ध्यान में रखकर अथवा अपनी सोच से कार्यक्रम के अनुसार उस पद्धति के अनुरूप टेलीविजन लेखक पटकथा लिखता है। मुख्य रूप से टेलीविजन के वीडियो प्रोडक्शन के लिए टेलीविजन लेखन के निम्न प्रकार हो सकते हैं –

(1) **मल्टी केमरा छायांकन के लिए पटकथा** – टेलीविजन केन्द्र के किसी प्रसारण कक्ष के अंदर कार्यक्रम के सजीव प्रसारण के लिए जो पटकथा तैयार की जाती है उसमें निर्देशक और निर्माता के लिए विभिन्न दिशा–निर्देश दिए जाते हैं। टेलीविजन केन्द्र के प्रसारण कक्ष में पटकथा के फिल्मांकन करने के लिए पटकथा लेखक अपने आलेख को दो भागों में बाँट देता है। एक तरफ के भाग में वह अपना आलेख प्रस्तुत करता है तथा दूसरी तरफ का भाग वह खाली छोड़ देता है, जिसमें निर्देशक अपनी ओर से निर्देशन, तकनीकी आदि संबंधी विभिन्न टिप्पणियाँ अंकित कर सकता है।

उदाहरण :–

– फेडइन (कमरे का दृश्य। कमरे में रमेश इधर–उधर टहल रहा है।) (अरे अंकित – अरे! अनन्या तुम आ गई! (रुककर) सागर कहां है? अनन्या – वो नहीं आया अंकित। अंकित – (कंधे उचकाते हुए) कोई बात नहीं हम ही चलते हैं। फेड आउट	

1. **सिंगल–केमरा छायांकन के लिए पटकथा** – इस विधि के अन्तर्गत पटकथा लेखक पूरे पृष्ठ पर ही अपनी पटकथा का लेखन करता है। बीच–बीच में वह दृश्यों के परिवर्तन और फेड इन, फेड आउट की सूचना देता रहता है, निर्देशन के लिए दिए जाने वाले संकेतों को वह बड़े आकार में लिखता है जिससे निर्देशक को उन्हें समझने में आसानी हो।

सिंगल–केमरा पटकथा का स्वरूप –

फैड इन

(कॉलेज के बाद रुचि और सोनिया साथ –साथ चलते हुए)

रुचि – सर ने वाद–विवाद प्रतियोगिता के लिए किसका नाम भेजा है?

सोनिया – पता नहीं, चलो सागर से पूछते हैं।

रुचि – ठीक है चलो।

(फेड आउट)

2. **दृश्य–श्रव्य पटकथा स्वरूप** – यह पद्धति टेलीविजन के अधिकांश कार्यक्रमों के लिए प्रयोग में लाई जाती है। इस पद्धति के अन्तर्गत पटकथा को दृश्य एवं श्रव्य दो भागों में बांट दिया जाता है।

दृश्य–श्रव्य पटकथा का स्वरूप –

दृश्य	**स्वर**
(फेड इन)	

'

सूर्य चमक रहा है ....रेगिस्तान का

दृश्य, एक व्यक्ति आंख पर हाथ

रखकर सूरज की तरफ देखता है।

(फेड आउट)

पटकथा लेखन के पश्चात् अगला महत्त्वपूर्ण चरण उसका दृश्यांकन है –

(1) **निर्देशक** – पटकथा लेखक द्वारा लिखी गई पटकथा को दृश्यांकित करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्देशक की होती है। दृश्यांकन करने के लिए बहुत से लोगों की आवश्यकता होती है, जो अपने–अपने क्षेत्र में पारंगत होते हैं।

(2) **अभिनय** – पटकथा का दृश्यांकन अभिनेता या अभिनेत्री आदि के अभिनय से होता है। ये पटकथा के अनुरूप संवादों को बोलते हैं। इन संवादों में विभिन्न भाव–भंगिमाओं की आवश्यकता होती है। ये भाव–भंगिमाएं ही संवादों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर पाती हैं।

(3) **तल एवं दृश्य प्रबंधन** – जिस सेट पर दृश्यों का फिल्मांकन किया जाता है, उनके प्रबंधन का सारा कार्य तल–प्रबंधक के पास आता है। वह पटकथा के अनुसार सेट के निर्माण के विषय में अपने निर्देश देता है।

(4) **छायांकन** – पटकथा के छायांकन सेट पर काम करने वाले अनेक केमरों को परिचालित करने वाले छायाकार या केमरामैन कहलाते हैं। ये निर्देशक के दिशा निर्देश पर विभिन्न कोणों पर खड़े होकर दृश्यों की रिकॉर्डिंग करते हैं।

(5) **प्रकाश व्यवस्था** – छायांकन के दौरान प्रकाश की व्यवस्था अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है, सामान्य प्रकाश से उत्कृष्ट छायांकन नहीं किया जा सकता।

(6) **ध्वनि एवं संगीत** – पटकथा को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए ध्वनि एवं संगीत का प्रयोग आवश्यक होता है। पटकथा में पात्रों के भावों को यथानुरूप प्रस्तुत करने के लिए भावानुसार ध्वनि का प्रयोग उसे प्रभावशाली बनाता है।

(7) **संपादन** – दृश्यांकन के उपरांत सबसे महत्त्वपूर्ण और अंतिम कार्य उसका संपादन होता है, केमरे से प्राप्त रीलों के आधार पर संपादक पटकथा की विषयवस्तु और उसके प्रभाव को ध्यान में रखकर उसका संपादन करता है।

9.6 सारांश

पटकथा का आरम्भ किसी कथा से होता है। कथा किसी एक विचार, प्लाट या थीम पर खड़ी की जाती है। कथा को चलचित्र की भाषा में परिवर्तित करने का कार्य ही पटकथा–लेखन कहलाता है। अतः पटकथा किसी भी कथा को दृश्य–श्रव्य माध्यम से अभिव्यक्त करने हेतु किया गया वह पेपर वर्क है जिससे किसी फिल्म, नाटक व धारावाहिक का प्रारूप तैयार होता है।

9.7 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

(1) सर्वग्राह्य – सभी के समझ में आ सकने वाला।

(2) वृतचित्र (Documentary) – किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर आधारित शोधपरक लघु फिल्म

(3) पटकथा (Screenplay) – रेडियो, दूरदर्शन, नाटक, धारावाहिक, फिल्म, विज्ञापन आदि के लिए विभिन्न निर्देशों और संकेतों द्वारा लिखी जाने वाली कथा

(4) छायांकन (Cinematography) – विषय वस्तु की प्रभावशाली प्रस्तुति हेतु केमरे के द्वारा विभिन्न कोणों से ली गई चित्र–शृंखला।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. दृश्य–श्रव्य माध्यम में पटकथा–लेखन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।

....

....

....

....

2. पटकथा लेखन के स्वरूप पर विचार करते हुए फिल्म व टी.वी. की पटकथा के अन्तर को स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

3. टी.वी. नाटक और धारावाहिक पटकथा लेखन पर टिप्पणी कीजिए ।

....

....

....

....

....

....

9.9 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग – दंगल झाल्टे

....

कम्प्यूटर का परिचय (इतिहास)

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 कम्प्यूटर का परिचय

10.4 कम्प्यूटर का इतिहास

10.5 कम्प्यूटर की रूपरेखा

10.6 कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर

10.7 कम्प्यूटर का उपयोग

10.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.10 सहायक पुस्तकें

10.11 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य विद्यार्थियों को कम्प्यूटर का परिचय देते हुए उसके इतिहास से परिचित कराना है। कम्प्यूटर के लिए जो हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर आवश्यक होते हैं उनकी जानकारी यहाँ दी जा रही है। कम्प्यूटर का महत्व आज निर्विवादित है उसका उपयोग किन–किन क्षेत्रो में हो रहा है उसकी जानकारी भी यहाँ उपलब्ध है।

10.2 प्रस्तावना

आधुनिक युग कम्प्यूटर का युग है। विद्यालय से लेकर महाविद्यालय तक, दफ्तर से लेकर विज्ञान और प्रौद्योगिकी तक – सभी क्षेत्रों में कम्प्यूटर का जाल बिछा है। कभी जिसे लिखना नहीं आता था उसे हैरत

से देखा जाता था आज जो कम्प्यूटर पर अंगुलियां चलाना नहीं जानता वह इस जेट और नेटयुग में निरक्षर के समान है। अतः कम्प्यूटर का ज्ञान आज के समय की माँग और आवश्यकता है।

10.3 कम्प्यूटर का परिचय

आधुनिक युग में कम्प्यूटर वैज्ञानिक प्रगति का एक बेमिसाल तकनीकी तोहफा है। यह आधुनिक गणितीय कौशल का विकसित मशीनी रूप है। आज के युग में यह हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। तकनीकी की दुनिया में यह एक नवीन क्रान्ति की सूचना है। कम्प्यूटर को हम एक सुपर कैलकुलेटर, टाइपराइटर तथा टेलीविजन (Display) का संगम मान सकते हैं। संख्याओं को जोड़ने और घटाने की क्रिया के साथ कम्प्यूटर लिखित सामग्री और आँकड़ां को प्रदर्शित करता है तथा भविष्य के इस्तेमाल के लिए इन्हें संचित (Store) भी करता है। तकनीकी भाषा में कम्प्यूटर एक इलेक्ट्रॉनिक युक्ति है जो सूचनाओं को प्राप्त करके, कुछ निर्देशों के अनुसार उनका विश्लेषण (प्रोसेस) करके आवश्यक परिणाम प्रस्तुत करता है।

कम्प्यूटर का आदि रूप आज से पाँच हजार वर्ष पहले बेब्रोलीन में मिलता है, जहाँ लोग 'तख्ती पर धूल' बिछाकर अंक और संकेत लिखकर शीघ्रता से गणना किया करते थे। भारतीय गणितज्ञ भाष्कराचार्य ने अंकगणित को 'पात्तरीगणित' तथा 'धूलिकर्म' कहा है। इन्हीं के मूलाधार को लेकर आज इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर का आविष्कार तथा विकास हुआ। अपने प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य ने सर्वप्रथम (Abacus) जैसी युक्ति बनाई जिसका विकास सबसे पहले चीन में हुआ। बाद में यह मिस्र, ग्रीस, रोम, जापान और रूस में प्रयुक्त हुआ। इस यन्त्र में लकड़ी के तख्ते पर कई समानान्तर तार बँधे होते हैं जिनमें पाँच या उससे अधिक मनके (गोली) लगे होते हैं। इन मनकों को एक तरफ खिसकाकर जोड़, घटाव, गुणा या भाग की क्रियाएँ की जाती हैं। इसकी सहायता से गणना काफी तेजी से की जा सकती है।

इस पद्धति के बाद जॉन नेपियर ने लगरिद्म (Logarithm) पद्धति का विकास किया, जिसके द्वारा गुणा या भाग बहुत ही आसानी तथा शुद्धता से किया जा सकता था। चूँकि यह पद्धति काफी थकानेवाली थी इसलिए जर्मन वैज्ञानिक (William Ouzhtred) ने स्लाइड रूल यन्त्र बनाया जिसके द्वारा गुणा–भाग के अलावा भी कई प्रकार की संगणनाएँ काफी तेजी से की जा सकती थीं। 1692 ई. में एक फ्रेंच युवक ब्लेज पास्कल ने विश्व का पहला यान्त्रिक कैलकुलेटर बनाया जिसका नाम पास्कलीन रखा। यह यन्त्र एक साथ 6 व्यक्तियों के बराबर कार्य करने की क्षमता रखता था। पुनः पास्कलीन से प्रेरणा लेकर लेबनिट्ज़ ने कैलकुलेटर और चार्ल्स बैबेज ने डिफरेंशियल तथा एनालिटिकल एन्जिन की प्रमुखता वाले कम्प्यूटर का निर्माण किया। चार्ल्स बैबेज ने एक ऐसे यन्त्र की परिकल्पना की जिसमें कृत्रिम मेमोरी (artificial memory) हो और जिसमें दिए गए प्रोग्राम के अनुसार संगणना की जा सके। परन्तु कतिपय कारणों से वे अथक परिश्रम के बावजूद 40 वर्षों में भी अपनी परिकल्पना को साकार रूप न दे सके। तब लगभग 50 वर्ष बाद बैवेज की परिकल्पना को अमेरिकन वैज्ञानिक हर्मन होलेरिथ ने साकार किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कम्प्यूटर विज्ञान के क्षेत्र में बहुत तेजी से विकास हुआ क्योंकि इनका प्रयोग सेना एवं सुरक्षा व्यवस्था में किया जाने लगा। सभी प्रकार के सैन्य एवं महत्त्वपूर्ण सन्देशों को गुप्त (स्यूडो/कोडेड) भाषा में भेजा जाता था। जिसके लिए कम्प्यूटर का उपयोग किया जाने लगा था। 1937 में ब्रिटिश गणितज्ञ एलन ट्यूरिंग ने सिद्धान्त रूप में दर्शाया कि कितनी ही जटिल समस्या को छोटे–छोंटे भागों में बाँटकर सरलता से हल किया जा सकता है। पुनः 1946 में अमेरिकी सरकार के मार्ग–दर्शन में बने एनीयक–नामक विश्व के प्रथम इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर में स्विच के रूप में इलेक्ट्रॉनिक वाल्व (वैक्यूम ट्यूब) का प्रयोग किया गया। 4 लाख डालर की कीमत से बना यह कम्प्यूटर पूरी तरह से स्वचालित रूप से गणना कार्य करता था। इसीलिए इसे विश्व का प्रथम कम्प्यूटर माना गया। इसके बाद इलेक्ट्रॉनिक वैक्यूम वाल्व पर आधारित अनेक कम्प्यूटर एक के बाद एक बने जिन्हें प्रथम जेनरेशन का कम्प्यूटर माना गया। दूसरे जेनरेशन में बने कम्प्यूटर ने तकनीकी दृष्टि से विकास करते हुए ट्रांजिस्टर के आविष्कार से वाल्व के द्वारा उत्पन्न होने वाले शोर तथा गर्मी की समस्या को काफी हद तक हल कर दिया। ट्रांजिस्टर के प्रयोग से कम्प्यूटर का आकार भी छोटा हुआ। इसके बाद टेक्सास इंस्ट्रूमेंट कम्पनी के जे.एस. किल्वी ने 1958 में एक छोटे से चित्र के रूप में इंटीग्रेटेड सर्किट बनाया जिसे (I.C.) कहा जाने लगा। चिप से बने हुए कम्प्यूटरों को तीसरी जेनरेशन का कम्प्यूटर कहा गया, जिसे मिनी कम्प्यूटर के रूप में भी देखा गया। इसमें छोटे साइज के डॉट–मैट्रिक्स ;क्वज.उंजतपगद्ध प्रिण्टर भी बनने लगे। फोरट्रॉन तथा कोबोल जैसी प्रोग्रामिंग भाषाओं का उद्‌भव भी इन्हीं दिनों हुआ। इसमें कम्प्यूटर के साथ–साथ टी.वी. जैसे छोटे मॉनीटरों का प्रचलन भी हुआ।

चिप के कमर्शियल हो जाने के कारण सभी कम्प्यूटर वैज्ञानिक चिप के साइज को छोटे–से–छोटा बनाने के प्रयास में जुटे। लेकिन अन्ततः 1976 में अमेरिका के दो विद्यार्थियों – स्टीव बोजनाइक तथा स्टीव जॉव ने बहुत कम खर्च में एक बहुत छोटे आकार का कम्प्यूटर बना डाला। उन्होंने इसके साथ विजुअल डिस्प्ले यूनिट (मॉनीटर) जोड़कर एक बक्से के आकार का माइक्रो–कम्प्यूटर बना डाला, जिसके द्वारा कम्प्यूटर की दुनिया में क्रान्ति आ गई और इस तरह से माइक्रो–कम्प्यूटर चौथी जेनरेशन के कम्प्यूटरों के रूप में पूरे विश्व के बाजार में छा गए।

कम्प्यूटर के प्रमुख भाग (Main Parts of Computer)

कम्प्यूटर के मुख्यतः पाँच भाग होते हैं :

1. **मेमोरी (Memory) (स्मरण यन्त्र)** – इसमें सभी आवश्यक सूचनाएँ भरी जाती हैं। इन्हीं के आधार पर कम्प्यूटर गणना करता है।
2. **कंट्रोल (नियन्त्रक) यूनिट** – इसका कार्य कम्प्यूटर द्वारा की गई गणना पर देख–रेख रखना है।
3. **अंकगणित** – इस हिस्से में गणना सम्बन्धी प्रक्रिया होती है।
4. **इनपुट यन्त्र (आगत)** – इस भाग में उन सभी जानकारियों व सूचनाओं से सम्बन्धित निर्देशों का संग्रह होता है, जिन माध्यमों से तथ्य और संख्याएँ कम्प्यूटर के स्मृति–कक्ष में भरी जाती हैं। इन इनपुट उपकरणों

में 'की–बोर्ड' उपकरण महत्त्वपूर्ण है। एक प्रकार से ये कम्प्यूटर की ज्ञानेन्द्रिय है और कम्प्यूटर को बाहरी जगत् से सम्बद्ध करती है।

5. **आउटपुट यन्त्र (निर्गत)** – यह भाग प्राप्त सूचनाओं के आधार पर सम्भावित परिणामों को प्रकट करता है। गणित प्रक्रिया में 'सेन्ट्रल प्रोसेसिंग यूनिट' (केन्द्रीय संसाधक इकाई) की अहम भूमिका होती है। इसे एक तरह से कम्प्यूटर का मस्तिष्क कहा जा सकता है। यह इलेक्ट्रॉनिक सर्किट (विद्युत परिपथ) पर अपने कार्य का आधार रखती है। इस इकाई के मुख्य भाग में अर्थात् मेमोरी या स्मृतियन्त्र में शब्द व संख्याओं का चयन होता है। इसमें प्रिण्टर उपस्कर लगा रहता है। अंकगणितीय तार्किक इकाई में अंकों की गणना या शब्दों तथा संख्याओं की तार्किक क्रियाएँ पूर्ण होती हैं। नियन्त्रण इकाई यह सुनश्चित करती है कि स्मृति भण्डार से क्या ग्राह्य है और किस वस्तु के साथ कौन–सी क्रिया किस क्रम से अपेक्षित है। इसमें कम्प्यूटर द्वारा प्राप्त इच्छित परिणाम प्रिण्ट होते हैं अथवा वीडियो स्क्रीन पर दिखाई देते हैं।

कम्प्यूटर की दुनिया में नई खोज – अब बहुत से तकनीकी विशेषज्ञ यह स्वीकार करने लगे हैं कि कम्प्यूटर की दुनिया में हम पाँचवें जेनरेशन में पहुँच रहे हैं। प्रत्येक दिन हमें यह सुनने में आ रहा है कि नये चिप्स या सुपर चिप्स नए–नए ढंग से आविष्कृत हो रहे हैं। माइक्रोप्रोसेसर्स तथा उच्च घनत्व मेमोरी चिप्स की खोज की गई है। इस पाँचवें जेनेरेशन के कम्प्यूटर में अतिविशिष्ट क्षमताएँ हैं जिन्हें 1981 में रूप दिया जा सका है। इसे जापान के कई कम्प्यूटर वैज्ञानिको ने सामूहिक रूप से मिलकर तैयार किया है। इस पाँचवें जेनरेशन द्वारा बनाए गए कम्प्यूटर की यान्त्रिक विशेषता यह है कि यह समान्तर प्रोसेसिंग पर आधारित है जिन्हें हम हार्डवेयर (Hardware) और AI (Artificial Intelligence) सोफ्टवेयर (Software) के नाम से जानते हैं। AI कम्प्यूटर की दुनिया में एक नवोदित खोज है जिसके आधार पर मानवीय संवेदना जैसे आन्तरिक असंवेद्य तत्त्वों को भी कम्प्यूटर पर दर्शाया जा सकता है। इसके नए प्रयोग में कम्प्यूटर को मानव मस्तिष्क की क्षमता की तरह प्रयुक्त कराने की कुशलता ने विज्ञान और तकनीकी की दुनिया में तहलका मचा दिया है।

10.4 कम्प्यूटर का इतिहास

कम्प्यूटर शब्द अंग्रेजी के Computer शब्द से बना है जिसका तात्पर्य है – गणना करना। 'द पॅन्गुइन डिक्शनरी ऑफ कम्प्यूटर' के अनुसार "कम्प्यूटर एक ऐसी मशीन है जो आँकड़ों को एक निश्चित प्रारूप में ग्रहण करती है, इन आँकड़ों को संसाधित करती है तथा एक निश्चित प्रारूप में आँकड़ों को निर्गत करती है।" कम्प्यूटर एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है जिसका प्रयोग कम्प्यूटर उपभोक्ता एक ही समय पर अनेक कार्यों के लिए कर सकता है।

वैचारिक दृष्टि से सोचा जाए तो कम्प्यूटर के बीज मानव की अंगुलियों में छिपे हुए हैं। सबसे पहले मनुष्य ने अपनी अंगुलियों का जमा और घटा करने के लिए प्रयोग किया। 3000 ई. पूर्व इजिप्ट के व्यापारी रेत के ऊपर कंकरियों के माध्यम से गणना करने के लिए रेत को फर्श पर बिखेर कर कुछ खांचे बनाते थे जिसमें

दाएं ओर का पहला खांचा एकक, उसके बाद बाएं हाथ का खांचा दशक और उसके बाद बाएं हाथ का अगला खांचा शतक को बताता था। इस विधि को Abacus या गिनतारा कहा जाता था। अबेकस में आने वाली समस्याओं के समाधान हेतु स्कॉटलैंड के गणितज्ञ जॉन नेपियर ने 1617 में जानवरों की हड्डियों से बनी ऐसी आयताकार पट्टियों का निर्माण किया जिनसे गणना का काम जल्दी होता था। इस पद्धति को नेपियर बोन के नाम से जाना जाता है।

कम्प्यूटर का वास्तविक विकास आधुनिक युग में हुआ है। इस युग में तीन आधारों पर कम्प्यूटर के संपूर्ण विकास को रेखांकित करते हुए उसका परिचय प्राप्त किया जा सकता है

1. केन्द्रीय संसाधक इकाई के आधार पर कम्प्यूटर का विकास
2. परिचालन पद्धति के आधार पर कम्प्यूटर का विकास
3. सामर्थ्य और शक्ति के आधार पर कम्प्यूटर का विकास

1. केन्द्रीय संसाधक इकाई (सी.पी.यू.) Central Processing Unit के आधार पर कम्प्यूटरों को निम्न पाँच पीढ़ियों में विभजित किया जा सकता है –

आधुनिक कम्प्यूटर की पहली पीढ़ी (1945–1960)

आधुनिक कम्प्यूटर की पहली पीढ़ी का आरम्भ 1946 ई. में निर्मित ENIAC 'इनिएक' जिसका पूरा नाम 'इलैक्ट्रॉनिक न्यूमैरिकल इण्टैग्रेटर एण्ड कैलकुलेटर' है, से माना जाता है। यह 9 मीटर 15 मीटर के आकार का कमरा घेरता था। इस भारी–भरकम कम्प्यूटर के साथ कठिनाई यह थी कि इसमें लगभग 150 किलोवॉट शक्ति खर्च होती थी और यह बहुत जल्दी गरम हो जाता था। हर सातवें मिनट में एक बल्ब जल जाता था, परिणामतः कम्प्यूटर बन्द हो जाता था। अतः बार–बार नये तार जोड़ने पड़ते थे। ये कम्प्यूटर मंहगे, धीमी गति वाले, सीमित प्रोग्राम वाले थे। कम्प्यूटरों में आंकड़ें डालने के लिए पंच–कार्ड प्रयुक्त किये जाते थे। इसमें मशीनी और असेम्बली भाषा का प्रयोग किया जाता था। 1957 तक आते–आते यह कम्प्यूटर लगभग अनुपयोगी हो गया।

आधुनिक कम्प्यूटर की दूसरी पीढ़ी (1960–1965)

दूसरी पीढ़ी के कम्प्यूटरों में आन्तरिक भण्डारण के लिए चुम्बकीय ड्रमों के बदले 'चुम्बकीय क्रोडों' (मेगनेटिक कोर) का प्रयोग किया गया। 'चुम्बकीय क्रोड' के उपयोग का मुख्य लाभ यह था कि नैनों सेकण्ड के अन्दर कोई भी डॉटा (आंकड़ा या सूचना) स्थित किया जा सकता था या फिर से पता किया जा सकता था। छिद्रित कार्डों की अपेक्षा चुम्बकीय फीतों से कम्प्यूटर में कहीं अधिक तेज गति से अंक भरे जा सकते थे। कम्प्यूटरों में कार्य सम्पादन के निर्देश देने के लिए उच्च स्तीरय भाषा (हाई लेवल लैंग्वेज) का प्रयोग किया गया। इस समय में जो उच्च स्तरीय भाषाएं प्रयुक्त हुईं वे थीं – फोरट्रन (FORTRAN फार्मूला ट्रान्सलेशन), जो

1950 के मध्य में आई बी एम द्वारा विकसित की गई और कोबोल (COBOL कॉमन बिजनेस ओरिन्टेड लैंग्वेज) जो 1960 के आरम्भ में विकसित हुई।

आधुनिक कम्प्यूटर की तीसरी पीढ़ी (1965–1970)

तीसरी पीढ़ी के कम्प्यूटरों का विकास काल 1965 से 1970 तक माना गया है। इस पीढ़ी के कम्प्यूटरों में केन्द्रीय संसाधन के रूप में समाकलित परिपथ Integrated Circuit या आई.सी. का प्रयोग किया जाता है। समाकलित परिपथ मूलतः ट्रांजिस्टरों का एक परिवर्द्धित जाल है जिसे रासायनिक सामग्री द्वारा एक परिपथ के रूप में एक जगह स्थापित कर दिया गया है। इसे आई.सी. चिप्स के नाम से भी जाना जाता है। आई.सी. चिप्स के उपयोग से कम्प्यूटरों का आकार कई गुणा कम हो गया। साथ ही गणितीय गणनाओं तथा अन्य कार्यों को करने की क्षमता में कई गुना वृद्धि हुई। इस पीढ़ी के कम्प्यूटरों में उच्चस्तरीय भाषा बेसिक BASIC का प्रयोग किया गया जो सीखने में बहुत ही सरल थी। कम्प्यूटर की सभी क्रियाओं को नियन्त्रित करने के लिए नियन्त्रण प्रोग्रामों का एक समूह अर्थात् ऑपरेटिंग सिस्टम बनाया गया। इस सिस्टम से कम्प्यूटर के सभी आन्तरिक कार्य स्वचालित हो गये। इस युग में कम्प्यूटर के आकार को छोटा किया गया तथा इसे मिनी कम्प्यूटर का नाम दिया गया। कम्प्यूटर में दस्तावेजों को टंकित करके तैयार करने की प्रक्रिया जिसे Word Processing अर्थात् शब्द प्रक्रिया कहा जाता है वह इस पीढ़ी के कम्प्यूटर की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

आधुनिक कम्प्यूटर की चौथी पीढ़ी (1970–1990)

चौथी पीढ़ी के कम्प्यूटरों का विकास काल 1970 से 1990 तक माना गया है। इस श्रेणी के कम्प्यूटरों में केन्द्रीय संसाधन के रूप में Large Scale Integration अर्थात् अति श्रेणी संघटक तथा Very Large Scale Integration अर्थात् अति वृहद् श्रेणी संघटक सर्किट का प्रयोग किया गया था। इसके प्रयोग से कम्प्यूटर की कार्यक्षमता में अत्यधिक वृद्धि हुई तथा किए गए कार्य के मूल्य में भी काफी कमी आई। इस श्रेणी के कम्प्यूटरों को व्यक्तिगत कम्प्यूटर (Personal Computer) कहा जाता है। इस पीढ़ी में आन्तरिक स्मृति हेतु कोर स्मृति के स्थान पर अर्धचालक या Semi Conductor का प्रयोग किया जाने लगा जो गति में तेज, आकार में छोटी और सस्ती थी।

आधुनिक कम्प्यूटर की पाँचवी पीढ़ी (1990 से आज तक)

पाँचवी पीढ़ी के कम्प्यूटरों का विकास 1990 के बाद शुरू हुआ है जिनमें कम्प्यूटिंग की उच्च क्षमताओं के साथ तर्क तथा निर्णय लेने का भी सामर्थ्य है। इस श्रेणी के कम्प्यूटरों में केन्द्रीय संसाधक हेतु अल्ट्रावृहद श्रेणी संघटक (Ultra Large Scale Integration) सर्किट का उपयोग किया जाता है जिसके कारण इस पीढ़ी के कम्प्यूटरों का आकार बहुत छोटा हो गया है। इसी के परिणाम स्वरूप आज घड़ी के आकार के कम्प्यूटर भी देखे जा सकते हैं।

2. परिचालन पद्धति (Application) के आधार पर कम्प्यूटरों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

Analog Computer एनालॉग अर्थात् अनुरूप कम्प्यूटर विज्ञान और इंजीनियरिंग क्षेत्र में प्रयोग किया जाता है। ये कम्प्यूटर भौतिक मात्राओं जैसे मात्रा, ताप, दाब, लम्बाई को मापते हैं। बैरामीटर और स्पीडमीटर इस प्रकार के कम्प्यूटर का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार के कम्प्यूटरों का उपयोग बहुत कम होता है।

Digital Computer डिजिटल अर्थात् अंकीय कम्प्यूटर से मुख्यतः अंकों की गणना की जाती है। इसका व्यापारिक क्षेत्र में प्रयोग किया जाता है।

Hybrid Computer हाइब्रिड अर्थात् संकर कम्प्यूटर अनुरूप और अंकीय कम्प्यूटर के गुणों को जोड़ता है। यह अनुरूप कम्प्यूटर की माप क्षमता तथा अंकीय कम्प्यूटर की गणना क्षमता का प्रयोग करता है।

3. सामर्थ्य और शक्ति के आधार पर कम्प्यूटरों को निम्न छह भागों में विभाजित किया जा सकता है –

General Computer ऐसे कम्प्यूटर होते हैं जिन्हें अधिक कार्य करने की क्षमता प्रदान की जाती है लेकिन वे कार्य सामान्य होते हैं। उदाहरण के लिए शब्द प्रक्रिया (Word Processing) द्वारा डाक्यूमेंट बनाना, पत्र तैयार करना। जनरल कम्प्यूटर की सी.पी.यू. क्षमता कम होती है।

Special Purpose Computer (स्पेशल परपज़ कम्प्यूटर) विशेष कार्यों के लिए तैयार किए जाते हैं इनके सी.पी.यू. की क्षमता उन कार्यों के अनुरूप होती है जिसके लिए इन्हें तैयार किया जाता है। चिकित्सा, इंजीनियरिंग, यातायात, विज्ञान इत्यादि कार्यों का संपादन इसके माध्यम से किया जाता है।

Micro Computer आज के समय में अत्यन्त प्रचलित हैं। कम कीमत के होते हैं। आकार में छोटे होते हैं। इस कम्प्यूटर के लिए साफ्टवेयर बाज़ार से खरीदे जा सकते हैं।

Mini Computer मध्यम आकार के होते हैं। यह Micro Computer की तुलना में अधिक क्षमता वाले होते हैं। इसमें एक से अधिक सी.पी.यू. होते हैं। इनकी स्मृति और गति Micro Computer से अधिक तथा Main Frame Computer से कम होती है। इनका उपयोग यात्रियों के लिए आरक्षण, बैंकों में बैंकिग कार्य के लिए किया जाता है।

Main Frame Computer बड़े और शक्तिशाली होते हैं। ये कम्प्यूटर की सभी श्रेणियों में सबसे बड़े अधिक संग्रह क्षमता वाले तथा सबसे अधिक गति वाले होते हैं। इनमें अनेक सी.पी.यू. समान्तर क्रम में कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया को समान्तर प्रक्रिया कहते हैं।

Super Computer आकार में सबसे बड़े, तीव्र और शक्तिशाली होते हैं। इनका प्रयोग वैज्ञानिक एवं शोध प्रयोगशालाओं में शोध एंव खोज करने के लिए, अन्तरिक्ष यात्रा के लिए यात्रियों को अन्तरिक्ष में भेजने के लिए, मौसम की भविष्यवाणी और चलचित्रों के निर्माण हेतु किया जाता है। भारत के पास भी एक सुपर कम्प्यूटर है जिसका नाम परम है। इसे भारतीय कम्प्यूटर वैज्ञानिकों ने भारत में ही तैयार किया है। इसका विकसित रूप परम 10,000 के नाम से जाना जाता है।

10.5 कम्प्यूटर की रूपरेखा

कम्प्यूटर की रूपरेखा से अभिप्राय कम्प्यूटर के विभिन्न अंगों – हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर से है। इनसे मिलकर ही कम्प्यूटर कार्य करने में सक्षम होता है।

कम्प्यूटर हार्डवेयर (Computer Hardware)

कम्प्यूटर की विभिन्न भौतिक या शारीरिक इकाईयाँ जिनसे मिलकर कम्प्यूटर की संरचना होती है, उसे हार्डवेयर कहा जाता है। कम्प्यूटर हार्डवेयर को आँखों से देखा जा सकता है हाथों से छुआ जा सकता है। कम्प्यूटर हार्डवेयर को निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. निवेश उपकरण
2. केन्द्रीय संसाधन इकाई
3. निर्गत उपकरण।

1. **निवेश उपकरण (Input Device)** – निवेश उपकरण वे उपकरण हाते हैं जिनकी सहायता से डेटा तथा अनुदेशों को कम्प्यूटर में निवेशित किया जाता है। कुछ महत्वपूर्ण निवेश उपकरण निम्नलिखित हैं

कुंजी पटल (Key Board)

हार्ड डिस्क (Hard Disc)

चुम्बकीय डिस्क (Magnetic Disc)

सी.डी. रोम (CD-ROM)

कुंजी पटल (Key Board) सबसे उपयोगी निवेश उपकरण है। यह उपकरण कम्प्यूटर में डाटा प्रविष्ट करवाने में काम लिया जाता है। यह कम्प्यूटर से जुड़ा हुआ होता है तथा यह टाइपराइटर के समान होता है। जिस प्रकार टाइपराइटर में टाइप किया जाता है उसी प्रकार की–बोर्ड में टाइप द्वारा डाटा प्रविष्ट करवाया जाता है।

हार्ड डिस्क (Hard Disc) जब एक ही ध्रुव पर फ्लॉपी डिस्कों जैसी कई डिस्कें एक साथ लगा दी

जाती हैं तो वह हार्ड डिस्क का रूप ले लेती है।

चुम्बकीय डिस्क (Magnetic Disc) पतली धातु की प्लेट होती है तथा यह प्लेट दोनों तरफ से चुम्बकीय तत्त्वों से लेपित (Coated) होती है।

सी.डी. रोम (CD-ROM) का पूरा नाम "कम्पैक्ट डिस्क रीड ओनली मेमोरी– हार्ड डिस्क (Compact Disc Read Only Memory) है। इस निवेश उपकरण में अत्यधिक मात्रा में सूचना का संग्रह किया जा सकता है। इसी कारण इस यन्त्र का नाम काम्पैक्ट डिस्क रखा गया है। इसे रीड ओनली मेमोरी इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इस पर लिखी हुई सूचनाओं को मिटाया नहीं जा सकता।

2. **केन्द्रीय संसाधन इकाई** (Central Processing Unit) – केन्द्रीय संसाधन इकाई कम्प्यूटर का दिल एवं दिमाग दोनों ही होता है। कम्प्यूटर के इस भाग की सहायता से समस्त गणनाएँ और अन्य कार्य सम्पादित किया जाता है। कम्प्यूटर में आने वाले निर्देशों का क्रियान्वयन तथा उन्हें विशिष्ट प्रारूप में संग्रहीत करना तथा आवश्कतानुसार प्रारूप में परिणाम प्रदान करना आदि कार्यों का नियन्त्रण भी कम्प्यूटर के इसी भाग द्वारा किया जाता है। इसके तीन भाग होते हैं –

गणितीय तार्किक इकाई (Arithmetical Logical Unit, ALU)

नियन्त्रण इकाई (Control Unit)

स्मृति (Memory) इसके दो प्रकार होते हैं –

प्राथमिक स्मृति (Primary Memory) और गौण स्मृति नियन्त्रण इकाई (Secondary Memory)

गणितीय तार्किक इकाई (Arithmetical Logical Unit, ALU) – केन्द्रीय संसाधन इकाई की सभी प्रकार की गणनाएँ जैसे – जोड़ना, घटाना, गुणा करना और भाग देना और तुलनाएँ इसी इकाई में की जाती है। यह कुछ ऐसे इलेक्ट्रॉनिक सर्किटों से बना होता है, जिसमें यदि एक ओर से दो संख्याएँ भेजी जायें तो दूसरी ओर से उनका योग या अन्तर या गुणनफल या भागफल निकल आता है। यहाँ सारी गणनाएँ बाइनरी संख्या प्रणाली (Binary Number System) में की जाती है।

नियन्त्रण इकाई (Control Unit) – कम्प्यूटर के इस भाग का कार्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। यह कम्प्यूटर के सभी भागों पर नियन्त्रण रखता है, साथ ही उन्हें उचित आदेश भी प्रदान करता है। नियन्त्रण इकाई का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि जिस प्रोग्राम को चलाना होता है उसे इस प्रकार की स्मृति (Memory) में लाकर उसका विश्लेषण करता है। आदेश की पालना हेतु यह कम्प्यूटर के अन्य भागों को निर्देश दे सकता है। यह कम्प्यूटर के सभी भागों में तालमेल बनाकर प्रोग्राम को सही चलाता है।

स्मृति (Memory) – यह कम्प्यूटर का वह भाग है जहाँ सभी आँकड़ों और प्रोग्रामों का संग्रह किया जाता है। कम्प्यूटर में सूचनाओं को बाहर एवं अन्दर दोनों जगह संग्रहीत किया जा सकता है। इसी के आधार पर स्मृति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

प्राथमिक स्मृति (Primary Memory) – प्राथमिक स्मृति कम्प्यूटर का मुख्य संग्रह कक्ष होता है जिसमें सूचनाओं को प्राथमिक स्तर पर एकत्रित किया जाता है। इसके कुछ भाग इस प्रकार हैं –

यादृच्छिक अभिगम स्मृति (Random Access Memory, RAM)

मात्र पठनीय स्मृति (Read Only Memory, ROM)

प्रोम (PROM)

इप्रोम (EPROM)

कैश स्मृति (Cache Memory)

रजिस्टर (Register)

यादृच्छिक अभिगम स्मृति (Random Accss Memory, RAM) – यह कम्प्यूटर का वह भाग है जहाँ सूचना बहुत कम समय के लिए या फिर सूचना अस्थाई रूप से संग्रहीत रहती है।

मात्र पठनीय स्मृति (Read Only Memory, ROM) – इस प्रकार की स्मृति में दी गई सूचनाएँ या आँकड़े स्थायी रूप से संगृहीत रहते हैं लेकिन इनमें दी गई सूचनायें केवल पढ़ी जा सकती हैं और इसमें किसी भी प्रकार की नई सूचनाओं को जोड़ा नहीं जा सकता। कम्प्यूटर के समय ही इसे बना दिया जाता है तथा यह स्मृति कम्प्यूटर में स्थायी रूप से होती है।

प्रोम (PROM, Programmable Read Only Memory) – इसकी विषय–सूची प्रयोगकर्ता द्वारा बदली जा सकती है। प्रोम में सूचना बिजली के चले जाने पर गायब या मिटती नहीं है।

इप्रोम (EPROM, Erasable Read Memory) – मुख्य स्मृति का वह भाग है जिसमें लिखी गई सूचनाओं को मिटाया भी जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर नयी सूचनाओं को लिखा भी जा सकता है। बिजली बन्द हो जाने पर भी इसमें लिखी सूचनाएँ खत्म नहीं होती। इसमें से कोई भी सूचना हटाने के लिए एक विशेष मशीन या उपकरण का प्रयोग किया जाता है।

कैश स्मृति (Cache Memory) – यह एक छोटी लेकिन बहुत तेज गति वाली स्मृति है। यह प्रोसेसर एवं मुख्य संग्रह के बीच स्थित होती है। जब कम्प्यूटर पर सूचना के लिये पहुँच की जाती है तो सूचना प्रत्याशित भाग के लिए प्रथमतः कैष में ही स्थानान्तरित की जाती है।

रजिस्टर (Register) – निवेशित किये जाने वाले आँकड़ों के लिए यह एक अस्थायी अंग है तथा सी.पी.यू. ब्ब्‍ द्वारा निर्देशों की व्याख्या करने के लिए, अंकगणितीय एवं तार्किक क्रियाओं को सम्पादित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

द्वितीय स्मृति (Secondary Memory) – कम्प्यूटर की द्वितीय स्मृति कम्प्यूटर के बाहर किसी उपकरण में होती है तथा इसे संग्रह करने के लिए विभिन्न उपकरण जैसे – चुम्बकीय डिस्क Magnetic Disc, सी.डी. रोम CD-ROM आदि का उपयोग किया जाता है। इनका वर्णन निवेश उपकरण के अन्तर्गत किया जा चुका है।

3. **निर्गत उपकरण (Output Device)** – कम्प्यूटर की इस इकाई का कार्य केन्द्रीय संसाधन इकाई के कार्यों को प्रदर्शित करना है। इन उपकरणों के द्वारा कम्प्यूटर के कार्यों की शुद्धता की जाँच की जा सकती है। कुछ महत्वपूर्ण निर्गत उपकरण निम्नलिखित हैं–

कम्प्यूटर स्क्रीन (Computer Screen)

माउस (Mouse)

प्रिन्टर (Printer) इसके निम्न प्रकार हैं –

डाटमेट्रिक्स प्रिन्टर (Dotmatrix Printer)

डेजी ह्वील प्रिन्टर (Daisy Wheel (Printer)

लाइन प्रिन्टर (Line Printer)

लेजर प्रिन्टर (Laser Printer)

कम्प्यूटर स्क्रीन (Computer Screen) – कम्प्यूटर स्क्रीन केन्द्रीय संसाधन इकाई के कार्यों को प्रदर्शित करने का सबसे उपयुक्त निर्गत उपकरण है। डेटा प्रविष्ट कराते समय भी सभी सूचनाएं इसी स्क्रीन या डिवाइस पर देखी जाती हैं। इसके माध्यम से टी.वी. सेट की तरह सभी सूचनाओं या परिणामों को स्क्रीन पर आसानी से देखा जा सकता है।

माउस (Mouse) – डेटा को प्रविष्ट तथा निर्गत करने के लिए कमाण्ड (Command) देने के काम आता है। यह हमेशा कार्य करता रहता है। इसे चूहा भी कहा जाता है।

प्रिन्टर (Printer) – प्रिन्टर की सहायता से कम्प्यूटर में उपलब्ध सूचना को कागज पर मुद्रित किया जा सकता है। सूचना का कागज पर मुद्रित रूप हार्ड कापी Hard Copy कहा जाता है।

डॉटमेट्रिक्स प्रिन्टर (Dotmatrix Printer) – इस प्रकार के प्रिन्टर की सहायता से मुद्रित अक्षरों का निर्माण बिन्दुओं के समान होता है।

डेजी व्हील प्रिन्टर (Daisy Wheel Printer) – इस प्रकार के प्रिन्टर में स्पोक Spoke लगे हुए व्हील से कार्य लिया जाता है। प्रत्येक स्पोक धातुपिण्ड के ऊपर एक अंकाक्षर बना होता है। जब मुद्रण कार्य शुरू होता है तो पहिया घूमने लगता है। जब मुद्रण स्थल पर अपेक्षित अंकाक्षर को रिबन के माध्यम से कागज पर छाप देता है। एक सामान्य डेजी व्हील प्रिन्टर एक सैकण्ड में 25–60 अंकाक्षर मुद्रित कर लेता है।

लाइन प्रिन्टर (Line Printer)–इस प्रकार के प्रिन्टर की गति डॉटमेट्रिक्स प्रिन्टर की अपेक्षा अधिक होती है तथा इसमें एक लाइन एक बार में मुद्रित हो जाती है।

लेजर प्रिन्टर (Laser Printer)–इस प्रिन्टर की गति अत्यधिक तीव्र होती है तथा इस प्रकार के प्रिन्टर में एक पृष्ठ का मुद्रण एक साथ हो जाता है।

10.6 कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर (Computer Software)

कम्प्यूटर को दिये जाने वाले आदेश अनुदेश कहलाते हैं। अनुदेशों का समूह प्रोग्राम और प्रोग्रामों का समुच्चय सॉफ्टवेयर कहलाता है। कम्प्यूटर के हार्डवेयर को संचालित करने के लिए कम्प्यूटर संचालक द्वारा निर्देश देने की विधि सॉफ्टवेयर रूप में होती है। कम्प्यूटर पर कार्य करने वाले व्यक्ति स्वयं के प्रोग्राम लिखकर बनाते हैं या आजकल बाजारों में बने बनाये सॉफ्टवेयर मिलते हैं। माँग के अनुसार बनवाए जाने वाले सॉफ्टवेयर को टेलरमेड सॉफ्टवेयर कहा जाता है और जो सॉफ्टवेयर बाज़ार में मिलते हैं उन्हें रेडीमेड सॉफ्टवेयर कहा जाता है।

सॉफ्टवेयर के प्रकारों को निम्नांकित पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है–

Application Software	एपलीकेशन सॉफ्टवेयर
Custom Software	कस्टमर सॉफ्टवेयर
System Software	सिस्टम सॉफ्टवेयर
Utility Software	यूटिलिटी सॉफ्टवेयर
General Software	जनरल सॉफ्टवेयर

1. **एपलीकेशन सॉफ्टवेयर** – एपलीकेशन सॉफ्टवेयर अपनी आवश्यकतानुसार कम्प्यूटर पर तैयार किए जा सकते हैं या फिर बाजार से बना बनाया प्रोग्राम खरीदा जा सकता है। एपलीकेशन सॉफ्टवेयर की गति तेज होती है। आवश्यकता पड़ने पर इस सॉफ्टवेयर में परिवर्तन भी किया जा सकता है। इस सॉफ्टवेयर का निर्माण उपयोगकर्ता की माँग की पूर्ति हेतु होता है। टेलरमेड एपलीकेशन सॉफ्टवेयर की अपेक्षा रेडीमेड एपलीकेशन सॉफ्टवेयर अधिक सस्ता होता है। इस सॉफ्टवेयर का प्रयोग विशेष कार्य हेतु किया जाता है। एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर को उपयोगकर्ता प्रोग्राम भी कहा जाता है।

किसी संस्था के कर्मचारियों का लेखा–जोखा रखना, रेल, ज्योतिष, पुस्तकालय, अस्पताल, होटल, बैंक, हवाई यात्रा रिजर्वेशन इत्यादि कार्य एपलीकेशन सॉफ्टवेयर द्वारा किए जाते हैं। एपलीकेशन सॉफ्टवेयर के कुछ उदाहरण हैं – फोटोशॉप, पेजमेकर, पावर पाइंट, एम. एस.वर्ड, एक्सेल (Excel), म्यूजिक प्लेयर, माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस (MS Office), वर्ड स्टार, सी.डी.एस. (computerized documentation system), वेब ब्राउजर (Web Browser) आदि।

2. **कस्टम सॉफ्टवेयर** – एपलीकेशन सॉफ्टवेयर का सहयोग करने वाला कस्टम सॉफ्टवेयर होता है। यह विशिष्ट कार्य हेतु बनाया जाता है।

3. **सिस्टम सॉफ्टवेयर** – सिस्टम सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर और सॉफ्टवेयर के बीच में एक सेतु का काम करता है। यह सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर की कार्यविधि को निर्धारित और नियंत्रित करता है। कम्प्यूटर की क्रियाओं को अधिक प्रभावशाली बनाता है। सिस्टम सॉफ्टवेयर के बिना कम्प्यूटर के हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर दोनों ही व्यर्थ हैं। कम्प्यूटर निर्माता द्वारा अधिकतर सिस्टम सॉफ्टवेयर उपलब्ध करवाये जाते हैं। कम्प्यूटर में निहित सभी सॉफ्टवेयर को सिस्टम सॉफ्टवेयर क्रियान्वित करता है।

सिस्टम सॉफ्टवेयर तीन प्रकार के होते हैं – ऑपरेटिंग सिस्टम प्रोग्राम (Operating System Programme), प्रोग्रामिंग लैंग्वेज ट्रांसलेटर (Programming Language Translator) और यूटिलिटी प्रोग्राम (Utility Programme) ।

Operating System Programme कम्प्यूटर के सभी भागों का संचालन करता है। इसके बिना कम्प्यूटर कोई भी कार्य नहीं कर सकता। यह विशेष प्रोग्रामों का ऐसा समूह होता है जो कम्प्यूटर की क्रियाओं को संचालित करता है। कम्प्यूटर की क्रियाओं को एक प्रोग्राम से दूसरे प्रोग्राम में स्थानांतरित करता है। इसके अतिरिक्त एपलीकेशन प्रोग्राम को नियंत्रित करता है और दिए गए निर्देशों को कम्प्यूटर के समझने के योग्य बनाता है।

Programming Language Translator कम्प्यूटर उपयोगकर्ता द्वारा लिखे आदेश को कम्प्यूटर की भाषा में परिवर्तित करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप कम्प्यूटर उन्हें समझकर अपना काम करता है।

Utility Programme विशेष कार्य हेतु कम्प्यूटर निर्माताओं द्वारा तैयार किए जाते हैं यह मांग के अनुसार बनवाए जाते हैं।

4. Utility Software को Service Software भी कहते हैं। यह एक ऐसा कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर है जिसे विशेष रूप से कम्प्यूटर हार्डवेयर, ऑपरेटिंग सिस्टम, एपलीकेशन सॉफ्टवेयर को व्यवस्थित करने में सहायता हेतु डिजाइन किया गया है। Utility Software वे सॉफ्टवेयर होते हैं जो कम्प्यूटर की कार्यक्षमता को बढ़ाते हैं तथा उसे और कार्यशील बनाने में मदद करते हैं।

5. General Software को General Purpose Software भी कहा जाता है। यह सॉफ्टवेयर सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु कम्प्यूटर उपभोक्ता की रोजमर्रा की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। यह सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर को सरल कार्य करने का निर्देश देते है।

10.7 कम्प्यूटर का उपयोग

कम्प्यूटर का उपयोग अनेक क्षेत्रों में होता है जिनमें से मुख्य–मुख्य क्षेत्र निम्न हैं –

1. **वैज्ञानिक क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग –** वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में कम्प्यूटर के आविष्कार से बहुत–सी गणनायें जो कि मानव वश से बाहर थी, अब आसान हो गई हैं। विज्ञान के अनेक क्षेत्र जैसे – भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, नक्षत्र विज्ञान आदि में कम्प्यूटर के आने से तेजी से प्रगति हुई है। चिकित्सा क्षेत्र, अनुसंधान शालाओं, शिक्षण संस्थाओं आदि सभी क्षेत्रों में कम्प्यूटर से महत्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं।

2. **औद्योगिक क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग –** औद्योगिक स्तर पर बड़े उद्योगों में कम्प्यूटर के द्वारा उत्पादन की योजना, लागत नियन्त्रण, उन्नति के तरीके तथा स्टॉक का हिसाब रखना तथा उन पर नियंत्रण, रखना आदि सभी कार्य किये जाते हैं।

3. **व्यापारिक क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग –** व्यापारिक धरातल पर कम्प्यूटर की सहायता से बहीखाता बनाने का कार्य बड़ी आसानी से किया जा सकता है। बड़े एवं छोटे सभी तरह के उद्योगों में कम्प्यूटर से अनेक तरह के कार्य किये जाते हैं जैसे – वेतन का लेखा–जोखा रखना, बिक्री करना, बैंकिंग, बीमा, शेयर सम्बन्धी कार्य करना।

4. **अन्तरिक्ष विज्ञान में कम्प्यूटर का उपयोग –** अन्तरिक्ष विज्ञान की दृष्टि से अन्तरिक्ष में होने वाली घटनाओं को देखना, उपग्रहों की स्थिति, उनके चलने की गति का पता लगाने इत्यादि सभी कार्यों को कम्प्यूटर की सहायता से आसानी से सम्पन्न किया जा सकता है।

5. **पर्यावरण के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग –** पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी कम्प्यूटर के कारण बहुत सटीक मिलती है। मौसम विज्ञान में कम्प्यूटर के आने से सही मौसम का पूर्वानुमान लगाना सम्भव हुआ है। कम्प्यूटर से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणियां की जाती हैं जिससे बहुत से होने वाली जान–माल की हानि से बचा जा सकता है।

6. **संचार के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग –** आधुनिक युग संचार का युग है। आधुनिक जटिल संचार व्यवस्था को कम्प्यूटर ने आसान बना दिया है। वायु सेना, वायु यातायात नियन्त्रण, पायलटों का प्रशिक्षण, सीटों का आरक्षण, समय–सारणी, स्टॉक नियन्त्रण, रेलों और सड़कों द्वारा माल ले जाने का कार्य आदि सभी कार्यों में कम्प्यूटर के आने से समय और श्रम दोनों की बचत हुई है और कार्य करने की गति में तीव्रता आई है।

7. **पुस्तकालय में कम्प्यूटर का उपयोग** – आज का दौर डिजिटल लायब्रेरी का है। पुस्तकालयों के विभिन्न कार्य कम्प्यूटर की सहायता से तीव्रता से किये जा सकते हैं। पुस्तकालय में पुस्तक चयन, विषय केन्द्रित पुस्तकों की संख्या, सूचीकरण, वर्गीकरण, पत्र–पत्रिकाओं का नियन्त्रण, पुस्तक आदान–प्रदान कार्य, भौतिक सत्यापन, पुस्तकालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं, अनुक्रमणीकरण आदि कार्य कम्प्यूटर की सहायता से तीव्रता से किये जा सकते हैं।

8. **शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग** – वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में भी कम्प्यूटर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्राथमिक कक्षा से ही कम्प्यूटर का उपयोग कई विद्यालयों में अनिवार्य है। यह अनुदेशों तथा निर्देशों को आसानी से संगृहीत रख सकता है जिससे विद्यालयों में आधुनिक ढ़ंग से पढ़ाया जा सकता है।

9. **जटिल गणनाओं के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग** – कम्प्यूटर की गति अत्यन्त तीव्र होती है। कम्प्यूटर के द्वारा गणना एवं अन्य क्रियायें इतनी तेज गति से सम्पन्न हो जाती हैं कि उसकी कल्पना करना भी बहुत मुश्किल है। आज का एक सामान्य कम्प्यूटर नैनो सैकण्ड मे कार्य करता है तथा एक सैकण्ड में दो लाख अनुदेश पूरे कर सकता है। इस प्रकार कम्प्यूटर की सहायता से जटिल से जटिल गणनाओं और कार्यों को कुछ ही समय में सम्पन्न किया जा सकता है।

10. **शुद्धता परिणामों के लिए कम्प्यूटर का उपयोग** – कम्प्यूटर की संरचना इस प्रकार की होती है कि उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य का परिणाम सही होता है। शुद्धता के परिणामस्वरूप कम्प्यूटर की विश्वसनीयता बहुत अधिक हो जाती है। कम्प्यूटर को एक बार सही निर्देश देने पर सारे परिणाम हमेशा सही प्राप्त होते हैं लेकिन मानवीय गलतियाँ हो जाने या वायरस आ जाने पर कम्प्यूटर की विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है और गलत परिणाम भी प्राप्त होते हैं।

11. **अपरिमित संग्रह के लिए कम्प्यूटर का उपयोग** – अपने छोटे आकार के बावजूद कम्प्यूटर अपने बाह्य तथा आन्तरिक संग्रह माध्यमों जैसे –हार्ड डिस्क, फ्लोपी डिस्क, मैगनेटिक टेप, सी.डी.रोम आदि के ऊपर असीमित डेटाओं और सूचनाओं का संग्रह करता है और आवश्यकतानुसार इनका उपयोग कर सकता है। सूचना का संसार एक महासागर की तरह फैला हुआ है। इसे कम्प्यूटर की सूक्ष्माकार स्मृति में संगृहीत किया जा सकता है। सूचना पुनः प्राप्ति से तात्पर्य संग्रहित सूचनाओं में से वांछित सूचना को ढूंढकर उसे प्राप्त करने से है। मानव द्वारा यह कार्य सम्पन्न करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लेकिन कम्प्यूटर की सहायता से वांछित सूचना का विश्लेषण कर तथा उसकी सुविस्तृत खोज कर उसकी पुनःप्राप्ति आसानी से की जा सकती है।

12. **जटिल कार्यों के लिए कम्प्यूटर का उपयोग** – कम्प्यूटर का सामर्थ्य अपरिमित है। कम्प्यूटर की सहायता से ऐसे कार्य भी आसानी से करवाये जा सकते हैं जो कि मानव द्वारा असम्भव हो। अन्तरिक्ष में यान से बाहर निकलकर अंतरिक्ष यान की मरम्मत करना जैसे कार्य भी कम्प्यूटर के लिये मुश्किल नहीं हैं।

13. **तर्क आधारित कार्यों के लिए कम्प्यूटर का उपयोग** – अधिकाश कार्य तर्क पर आधारित होते हैं और कम्प्यूटर एक तार्किक उपकरण है। अतः तर्क और तथ्यों पर आधारित कार्य कम्प्यूटर की सहायता से आसानी से सम्पन्न किये जा सकते हैं। कम्प्यूटर को एक बार निर्देश देने के पश्चात् वह बिना रुके घन्टों तक कार्य कर सकता है। कम्प्यूटर के स्वचालन के इस गुण से मानव–शक्ति व समय दोनों की ही बचत होती है।

मानव द्वारा अधिक कार्य करने पर थकान महसूस होती है लेकिन कम्प्यूटर तेज गति से अधिक समय तक कार्य करने के बाद भी न तो थकान महसूस करता है और न ही बोरियत का अनुभव करता है। यदि कम्प्यूटर को धूल रहित वातावरण एवं उचित तापमान उपलब्ध करवाया जाये तो वह अपनी पूरी क्षमता से कार्य करता रहेगा।

10.7 अभ्यास हेतु प्रश्न –

1. आधुनिक कम्प्यूटर की विभिन्न पीढियों का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

2. परिचालन पद्धति (Application) के आधार पर कम्प्यूटरों का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

3. सामर्थ्य और शक्ति के आधार पर कम्प्यूटर का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

4. कम्प्यूटर के निवेश उपकरणों का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

5. केन्द्रीय संसाधन इकाई के विभिन्न अंगों का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

6. कम्प्यूटर के निर्गत उपकरणों का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

7. Application Software एपलीकेशन सॉफ्टवेयर का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

8. System Software सिस्टम सॉफ्टवेयर का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

9. कम्प्यूटर का प्रयोग किन क्षेत्रों में किया जा सकता है, बताइए।

....

....

....

....

10. कम्प्यूटर का महत्व प्रतिपादित कीजिए।

....

....

....

....

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर – अनुवाद कला

डॉ. नरेश मिश्र – प्रयोजनमूलक हिन्दी

प्रहलाद शर्मा – कम्प्यूटर और पुस्तकालय

डॉ. भोलानाथ तिवारी – अनुवाद विज्ञान

डॉ. सुरेश कुमार – अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा

शशि शुक्ला – इंटरनेट

10.10 सहायक पुस्तकें

1. डॉ. एस. एस. श्रीवास्तव – कम्प्यूटर प्रवेशिका
2. एल. एन. शर्मा – अनुवाद चिंतन
3. डॉ. जी. गोपीनाथ – अनुवाद सिद्धान्त और प्रयोग
4. डॉ. राजनाथ भट्ट – प्रयोजनमूलक हिन्दी
5. प्रहलाद शर्मा – कम्प्यूटर शब्द – कोश
6. डॉ. हरिमोहन – कम्प्यूटर और हिन्दी
7. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
8. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
9. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
10. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
11. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
12. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
13. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
14. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
15. इलेक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
16. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
17. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग – दंगल झाल्टे

....

Course Code - 404 **Lesson No. 11**

Unit-II

इंटरनेट का सामान्य परिचय

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 इंटरनेट

11.4 इंटरनेट का ऐतिहासिक परिदृश्य

11.5 इंटरनेट का विकास

11.6 भारत में इंटरनेट का शुभारंभ

11.7 इंटरनेट से मिलने वाली सुविधाएँ

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.9 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे कि –

– आधुनिक जीवन में इंटरनेट का क्या महत्व है?

– इंटरनेट के ऐतिहासिक परिदृश्य से अवगत होंगे।

– इंटरनेट के विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जिस नवीनतम माध्यम ने क्रान्ति उपस्थित की है, वह है 'इंटरनेट'। यह इस शताब्दी का मनुष्यता को दिया गया सर्वश्रेष्ठ उपहार है। यह सूचना क्रान्ति का संवाहक है सही अर्थों में दुनिया को एक गाँव में इसी तंत्र ने बदला है या यूं कहें कि बहुत–सी प्रौद्योगिकियों को मिलाकर किया गया एक अभिनव प्रयोग।

11.3 इंटरनेट

टी.वी. को लोगों ने बुद्ध बक्सा कहा था और इसे एक नशा भी माना था, परन्तु इंटरनेट उससे भी अधिक मादक है। आज इसके प्रयोक्ताओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है, क्योंकि यह सूचनाओं का अगाध सागर है। सम्प्रेषण के क्षेत्र में इसका कोई साम्य नहीं है। आज टेलीफोन और फैक्स भी इसके सामने असहाय अनुभव कर रहे हैं। यद्यपि इंटरनेट टेलीफोन नेटवर्क पर निर्भर है और इस पर कार्य करते हुए टेलीफोन निरन्तर व्यस्त रहता है तो भी वह इसके आगे टिक नहीं पा रहा है। अब तो ऐसे उपकरण भी उपलब्ध हो रहे हैं कि ये दोनों स्वतंत्र कार्य करते हैं। ऐसे उपाय भी हो रहे हैं कि कम्प्यूटर चालू होते ही इंटरनेंट स्वतः ही जुड़ जाए।

इंटरनेट को नेटवर्कों का नेटवर्क कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह सूचना से भरे जालों का जाल है जिसमें समस्त जालों को परस्पर सम्बद्ध करने की क्षमता है जब एकाधिक कम्प्यूटरों को परस्पर जोड़ देते हैं तो उसे नेटवर्क कहते हैं। इंटरनेट ऐसे कितने ही नेटवर्कों को परस्पर सम्बद्ध करने वाला नेटवर्क है। वर्तमान में इंटरनेट पर पूरे संसार में लगभग दस लाख वैबसाइट हैं। प्रत्येक वैबसाइट स्वयं में एक नेटवर्क है। सभी वैब सेट किसी माध्यम से परस्पर जुड़े हुए हैं। इंटरनेट पर लगभग सौ देशों में पहुंचा जा सकता है। इसके सूचना–तंत्र को तोड़ना सम्भव नहीं है। इसका प्रमुख कार्य सूचनाओं का आदान–प्रदान करना है। यह पूरे बह्माण्ड की लगभग समस्त जानकारी को अपने गर्भ में लिए हुए है। इंटरनेट पर कोई भी व्यक्ति सूचनाओं के अगाध सागर में पहुंच कर मनचाही सूचनाएं प्राप्त कर सकता है। यह आदान–प्रदान निरन्तर चलता रहता है। इस कार्य को क्लाइंट और सर्वर करते हैं। इंटरनेट से प्राप्त होने वाली सूचना किसी कंप्यूटर से आती है, इसे सर्वर कहते हैं। कंप्यूटर प्रोग्राम, जिसे सर्वर क्लाइंट कहते हैं, मांगी गई सूचनाओं का संग्रहण करता है। क्लाइंट को इस बात का ज्ञान होता है कि उपलब्ध सूचना को किस सर्वर से प्राप्त किया जाए। इस प्रकार इंटरनेट का कार्य क्लाइंट और सर्वर के बीच संचार माध्यम के रूप में रहना है। आवश्यकता पड़ने पर यह हमें डाटा–बैंक से आंकड़े उपलब्ध कराता रहता है। जिसे संसार के लोग डाटा–बैंक में जोड़ते रहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि इंटरनेट सूचनाओं का सम्प्रेषण कैसे करता है। इंटरनेट पर कोई भी सूचना छोटे–छोटे अंशों में विभाजित होकर गतिशील रहती है। सर्वर सूचना को निश्चित आकार में विभाजित कर क्लाइंट के पास ले जाता है। जब सभी अंश क्लाइंट के कम्प्यूटर के पास पहुंच जाते हैं तो वह उन्हें इकट्ठे करके एक स्थान पर प्रस्तुत कर देता है। ई–मेल के सन्दर्भ में सर्वर का कार्य एक स्थानीय डाकघर की भांति है जो अलग–अलग स्थानों से आयी हुई डाक को गन्तव्य तक पहुंचाने का कार्य करता है इस प्रकार इंटरनेट मानव–जीवन को सुखमय बनाकर उसकी जीवन–शैली को भी बदल रहा है।

11.4 इंटरनेट का ऐतिहासिक परिदृश्य

वस्तुतः इंटरनेट विश्व के विभिन्न स्थानों पर स्थापित कंप्यूटरों के नेटवर्क को टेलीफोन लाइन की सहायता

से जोड़कर बनाया गया एक अंतरराष्ट्रीय सूचना मार्ग है, जिस पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक सूचनाएँ पलक झपकते ही पहुँच जाती हैं।

सन् 1969 में अमेरिकी प्रतिरक्षा अनुसंधान संस्थानों ने एक–दूसरे के साथ निरंतर संपर्क बनाए रखने के लिए एक रक्षा परियोजना 'एडवांस्ड रिसर्च प्रोजेक्टस एजेंसी'(एरपा) ने एक योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत विभिन्न अमेरिकी प्रतिरक्षा संस्थानों के कंप्यूटरों को 'पैकेट स्विच नेटवर्क' प्रौद्योगिकी की सहायता से एक–दूसरे के साथ जोड़ दिया गया। इस योजना के अनुसार सूचनाओं को छोटे–छोटे टुकड़ों में बाँटकर अलग–अलग मार्गों के द्वारा अपने निश्चित स्थान पर भेजा जाता है। इसका लाभ यह होता है कि यदि किसी एक मार्ग को शत्रु अवरुद्ध कर देता है तो भी सूचनाओं के टुकड़े दूसरे मार्ग से अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच जाते हैं। 'एरपा' ने इसी योजना को 'इंटरनेट' का नाम दिया है। यह योजना अभूतपूर्व रूप में सफल रही। सन् 1990–91 में शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् इंटरनेट के द्वारा जनसाधारण के लिए खोल दिए गए। यह नेटवर्क विश्वभर में लोकप्रिय बन गया है।

आज स्थिति यह है कि छोटी–से–छोटी और बड़ी–से–बड़ी जरूरत का विकल्प इंटरनेट है। चाहे हमें किसी सुदूर देश में प्रियजन को पत्र लिखना हो, किसी को अपने घर दावत पर बुलाना हो, घर बैठे रहकर ही विदेश में सामान का ऑर्डर देना हो या अन्य कोई बात करनी हो और वह भी तुरंत, तो इंटरनेट आपका सबसे आज्ञाकारी सेवक सिद्ध होता है।

11.5 इंटरनेट का विकास

सन् 1970 में एरपा ने नेटवर्कों के बीच सूचनाओं को प्रेषित करने के लिए एक नयाचार (Protocol) का विकास किया था। इसके पश्चात् ट्रांसमिशन कंट्रोल प्रोटोकॉल/इंटरनेट प्रोटोकॉल (टी.सी.पी./आईपी.) नामक एक प्रोटोकॉल का विकास किया गया। यह प्रोटोकॉल नेटवर्क और प्रसारण स्तर का एक ऐसा संग्रह है, जिसके चलते इंटरनेट अथवा दूसरे नेटवर्कों पर एक पर्सनल कंप्यूटर दूसरे पर्सनल कंप्यूटर से समान स्तर पर संदेश अथवा सॉफ्टवेयर कार्यक्रमों का आदान–प्रदान करने में समर्थ हो पाता है। आज के युग में भी इंटरनेट में इसी प्रोटोकॉल का प्रयोग किया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के प्रारंभिक वर्षों में पाँच विश्वविद्यालयों में स्थित केंद्रों को इस नेटवर्क से जोड़ा गया। प्रारंभ में मात्र साधारण संदेशों का आदान–प्रदान ही इंटरनेट पर किया जाता था। बाद में यह आदान–प्रदान इलेक्ट्रॉनिक डाक (ई–मेल) में विकसित हो गया। विकास के अगले चरण में आर्ची, गॉफर, वेरॉनिका आदि खोज इंजन (सर्च इंजन) बनाए गए, जिनकी सहायता से नेटवर्क में कहीं भी स्थित सूचना को खोजने में आसानी होने लगी। इसके बाद तर्कसंगत (लॉजिकल) विकास हुआ वर्ल्ड वाइड वेब (www) का, जिससे सूचनाएँ प्राप्त करना अधिक आसान हो गया। विगत 3–4 वर्षों में इंटरनेट का विकास बहुत तेजी से हुआ है। इसके मुख्य कारण हैं पर्सनल कंप्यूटर का जीवन के हर क्षेत्र में उपयोग, हार्डवेयर के गिरते मूल्य तथा इसमें प्रयुक्त मोडेम की प्रौद्योगिक में उत्तम विकास। एक अन्य कारण वर्ल्ड

वाइड वेब का विकास था, जो शब्दों, चित्रों तथा ध्वनि की सहायता से किसी विशेष व्यक्ति, संस्था अथवा विषय की सूचनाएँ देने वाले तथा एक–दूसरे से जुड़े लाखों कंम्प्यूटरों का विश्व व्यापी संग्रह है। इसमें एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसका प्रयोग कोई साधारण व्यक्ति भी आसानी से कर सकता है।

11.6 भारत में इंटरनेट का शुभारंभ

नेटवर्क प्रणालियों के जनक इंटरनेट की शुरूआत वैसे तो सन् 1969 में अमेरिकी प्रतिरक्षा मंत्रालय की अनुसंधान परियोजना के रूप में हुई थी, परंतु 'इंटरनेट' शब्द सन् 1994 के दौरान ही प्रचलन में आया तथा भारतवर्ष में आज इंटरनेट के प्रवेश को मात्र आठ वर्ष ही हुए हैं। इन चंद वर्षों के अंतराल में इंटरनेट के विकास से विश्व के विशालकाय क्षेत्र का अनावरण हुआ है।

भारत में सबसे पहले इंटरनेट कुछ समय तक एजुकेशन एंड रिसर्च नेटवर्क द्वारा उपलब्ध करवाया जाता था, परंतु अगस्त 1995 से व्यावसायिक प्रयोग के लिए यह सुविधा विदेश संचार निगम लिमिटेड (बी.एस. एन.एल.) द्वारा उपलब्ध करवाई जाने लगी। फलतः मात्र राजधानी दिल्ली एवं आस–पास के क्षेत्रों के 32,000 लोग इस सुविधा का लाभ उठाने लगे। अगस्त 1995 से नई दिल्ली , मुंबई, कोलकाता तथा चेन्नई महानगरों से प्रारंभ की गई इंटरनेट सुविधा से बंगलौर, पुणे, कानपुर, लखनऊ, चंडीगढ़, जयपरु, हैदराबाद, पटना तथा गोवा भी इससे जुड़ गए। हमारी सरकार मार्च 2002 तक सभी जिला मुख्यालयों को इंटरनेट सुविधा से जोड़ने हेतु प्रयासरत है। आज सुखद स्थिति यह है कि इंटरनेट के बढ़ते जाल के कारण संपूर्ण भारत में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है और गाँव–गाँव में जहाँ भरोसेमंद मीडिया उपलब्ध है, इंटरनेट का उपयोग किया जा सकता है।

आज की स्थिति में बी.एस.एन.एल. द्वारा कई शहरों में आरंभ की गई इंटरनेट सुविधा का निरंतर विस्तार हो रहा है। इस सुविधा से भारतीय लोगों को अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क का भागीदार बनने का अवसर प्राप्त हो रहा है, जिसके माध्यम से वे अपने कंप्यूटर पर संपूर्ण विश्व की सूचनाओं के भंडार से मनचाही जानकारी प्राप्त करने में समर्थ हो रहे हैं। आरंभिक स्तर पर इंटरनेट के उपभोक्ताओं में सॉफ्टवेयर निर्यातक, सलाहकार, वैज्ञानिक, इंजीनियर, प्रशिक्षण संस्थान तथा व्यावसायिक संस्थान ही सम्मिलित थे, परंतु इसके विस्तार से भविष्य में लाखों लोगों के जुड़ने का अनुमान है।

आरंभ में इंटरनेट सुविधा के विस्तार के लिए बी.एस.एन.एल. दूरसंचार विभाग का सहयोग ले रहा था, ताकि अधिकाधिक उपभोक्ताओं को सुविधा उपलब्ध कराई जा सके। तब सभी नए नोड दूरसंचार विभाग द्वारा ही संचालित किए जा रहे थे। बी.एस.एन.एल. की जी.आई.ए.एस. (गेटवे इंटरनेट एक्सेस सर्विस) विश्व की न्यूनतम दरों पर इंटरनेट की संपूर्ण सेवाएँ उपलब्ध कराती है। बी.एस.एन.एल. ने इंटरनेट की संपूर्ण सेवाएँ पूरे देश को उपलब्ध कराने के लिए महत्त्वाकांक्षी परियोजना बनाई है। इसके अंतर्गत इसका मुख्य इंटरनेट एक्सेस नोड मुंबई में स्थापित किया गया है, जिसका संपर्क अमेरिका के इंटरनोड से उपग्रह के माध्यम से तथा यूरोप के इंटरनेट नोड से समुद्र के अंदर बिछाए गए केबलों के माध्यम से किया गया है, जिससे इस

नेटवर्क के जाल को विविधता एवं विश्वसनीयता प्राप्त होती है। बी.एस.एन.एल. पहले ही पुणे, कोलकाता, नई दिल्ली, चेन्नई तथा बंगलौर में रिमोट इंटरनेट एक्सेस नोड स्थापित कर चुका है। ये नोड अमेरिका के इंटरनेट नोड से भी जोड़े जा चुके हैं। मुंबई स्थित इंटरनेट एक्सेस नोड बी.एस.एन.एल. की गेटवे पैकेट स्विच्ड सेवा (जी.पी.एस.एस.) से भी जुड़ा है। दूरसंचार विभाग के 'रिमोट एरिया बिजिनेस मैसेज नेटवर्क (रैबमैन), डोमेस्टिक पैकेट स्विच्ड नेटवर्क, आईनेट तथा हाइस्पीड वी सेट नेटवर्क भी जी.पी.एस.एस. से जुड़े हैं। इन नेटवर्कों के उपभोक्ताओं को भी संपूर्ण इंटरनेट सेवाओं का लाभ मिलता है। हमारे देश के लगभग 6,000 ज्व सुविधावाले शहरों के उपभोक्ताओं को भी जी.आई.ए.एस. के अतिरिक्त आई नेट की 099 एक्सेस का उपभोक्ता बनने पर इंटरनेट सेवाओं का पूरा–पूरा लाभ मिलेगा।

जी.आई.ए.एस. के उपभोक्ताओं को डाटा बेस से जुड़ने, ई–मेल भेजने, न्यूज पढ़ने, दूरस्थ क्षेत्रों के कार्यक्रम देखने आदि सुविधाएँ मिलेंगी तथा और भी कई तरह के लाभ मिलेंगे। इसके अतिरिक्त इंटरनेट से जुड़े हुए उपभोक्ताओं को ई–मेल, यूजनेट, टेलनेट, एफ.टी.पी., आर्ची, गोफर, वेरेनिका, वर्ल्ड वाइड वेब, मोजैक बेस आदि सुविधाओं का भी लाभ मिलेगा।

भारत के इंटरनेट बैकबोन नेटवर्क को ही बी.एस.एन.एल. का गेटवे इंटरनेट एक्सेस सर्विस नेटवर्क कहते हैं। आज इंटरनेट भारत में भी अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। इंटरनेट ने भारतीय कंपनियों के लिए नई–नई सेवाओं के साथ असीमित अवसर प्रदान करके नए युग की शुरूआत की है। अभी तक इसमें ई–मेल, डाटा बेस, वेब होस्टिंग सेवाएँ, विज्ञापन, इंटरनेट प्रकाशन तथा इंटरनेट कारोबार शामिल हैं। आज कई भारतीय समाचार–पत्रों, मंत्रालयों, कार्यालयों आदि ने अपनी–अपनी वेबसाइटें खोली हैं, जिनके द्वारा समाचार–पत्रों को इंटरनेट पर भी पढ़ा जा सकता है तथा मंत्रालयों एवं कार्यालयों के बारे में विस्तृत जानकारी उनकी वेबसाइटों द्वारा इंटरनेट पर ही ली जा सकती है।

11.7 इंटरनेट से मिलने वाली सुविधाएँ

वैसे तो इंटरनेट से हम किसी भी तरह की सूचना प्राप्त कर सकते हैं, परंतु आमतौर पर इसका सर्वाधिक प्रयोग कुछ विशेष कार्यों के लिए ही होता है, जो इस प्रकार हैं –

1. इलेक्ट्रॉनिक मेल

इंटरनेट द्वारा प्राप्त होने वाली सुविधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय इलेक्ट्रॉनिक मेल(ई–मेल) सुविधा है यह कागज रहित सुविधा है। इसमें आप विश्व भर में क्षण भर के भीतर किसी के पास भी पत्र भेज सकते हैं। इस प्रकार ई–मेल सुविधा से समय और धन दोनों की बचत होती है। इसमें सबसे बड़ी बात यह है कि दोनों व्यक्तियों के पास एक ही वेबसाइट का पता होना जरूरी नहीं है। Yahoo, hotmail, netaddress, indya आदि कुछ प्रमुख वेबसाइटें हैं, जो यह सुविधा मुफ्त प्रदान करती हैं।

2. सर्चइंजन

यदि किसी उपभोक्ता को यह पता नहीं है कि उसे जो जानकारी चाहिए, वह किस वेबसाइट पर मिलेगी, तो वह किसी सर्चइंजन वेबसाइट को खोलकर यह जानकारी प्राप्त कर सकता है। सर्चइंजन लाखों वेबसाइट में से उसके मतलब की कुछ चुनिंदा साइट बता देगा। इंफोसीक, अल्टाविस्टा, लाकोसिस, नॉर्दनलाइट्स, आर्ची, गोफर, पेरॉनिका तथा डब्ल्यू.ए.आई.एस. आदि कुछ लोकप्रिय सर्चइंजन हैं। याहू (Yahoo) विश्व का सबसे बड़ा सर्चइंजन है।

3. वर्ल्ड वाइड वेब

ई–मेल के बाद इंटरनेट पर दूसरी लोकप्रिय सुविधा है वर्ल्ड वाइड वेब (www) 'एक में अनेक' कही जा सकने वाली इस सुविधा में सर्वर की एक श्रृंखला हाइपर टेक्स्ट के माध्यम से एक–दूसरे से जुड़ी रहती है। हाइपर टेक्स्ट सूचनाओं को प्रस्तुत करने का एक ऐसा तरीका है, जिसमें विषयों को प्रमुखता दी जाती है। ऐसे विषयों को चुनकर उनके बारें में अधिक जानकरी प्राप्त की जा सकती है। इसके सर्वाधिक प्रचलित सॉफ्टवेयर मोजाइक तथा नेटस्केप नेवीगेटर तथा इंटरनेट एक्स्लोटर हैं।

4. टेलनेट

टेलनेट (Telnet) एक ऐसी सुविधा है, जिसके माध्यम से इंटरनेट से जुड़े विश्व के किसी भी कंप्यूटर पर 'लॉग इन' कर उस पर इस प्रकार कार्य कर सकते हैं जैसे उस कंप्यूटर का की–बोर्ड आपके पास हो। इसीलिए इस सुविधा को 'दूरस्थ' (रिमोट) लॉग इन भी कहते हैं। फाइल ट्रांस्फर प्रोटोकॉल की सहायता से टेलनेट द्वारा नेटवर्क के एक कंप्यूटर से दूसरे कंप्यूटर पर आवश्यक नई एवं उपयोगी सूचनाओं को उतारा (डायनलोड किया) जा सकता है।

5. पुशनेट

पुशनेट (Pushnet) सुविधा की सहायता से आपका संदेश इलेक्ट्रॉनिक बुलेटिन बोर्ड पर भेजा जा सकता है, जहाँ उसे कोई भी व्यक्ति देख सकता है।

6. यूजनेट

यूजनेट (Usenet) एक ऐसी सुविधा है, जिसकी सहायता से नेटवर्क में निहित सूचनाओं के भंडार को किसी विषय पर आधारित समूह में बाँटा जा सकता है तथा एक विषय पर रुचि रखने वाले व्यक्ति सूचनाओं का आदान–प्रदान एवं विचार–विमर्श आदि कर सकते हैं। इसी कारण यूजनेट की सुविधा अत्यंत लोकप्रिय हो गई है। ई–मेल की सुविधा केवल एक से एक (वन टू वन) तक ही सीमित है, जबकि यूजनेट की सुविधा एक से अधिक (वन टू मेनी) में बाँटी जा सकती है।

7. चैटरूम

चैट रूम ने तो हज़ारों–लाखों किलोमीटर की दूरियों को नजदीकियों में परिवर्तित कर दिया है। एक तरफ जहाँ टेलीफोन पर देश के भीतर ही किसी अन्य राज्य में बात करने पर बहुत पैसे लगते हैं वहीं इंटरनेट के सहारे आप स्थानीय कॉल की दर से अमेरिका या इंग्लैंड में किसी से भी बात कर सकते हैं। इंटरनेट टेलीफोनी में आप मात्र एक स्थानीय कॉल के खर्च पर विश्व में कहीं भी, कितनी भी देर बात कर सकते हैं। इस तरह आप अपने टेलीफोन बिल पर 98 प्रतिशत तक कटौती कर सकते हैं। यह सेवा विश्व भर में तेजी से लोकप्रिय हो रही है। वैसे तो चैट यानी वार्त्ता का माध्यम सामान्य तौर पर लिखित होता है, परंतु आजकल वॉयस (Voice) चैट भी बहुत लोकप्रिय हो रहा है, जो आपकी आवाज सीधे हजारों मील दूर बैठे आपके साथी तक पहुँचा देता है। इतना ही नहीं, यदि आपने अपने कंप्यूटर में कैमकॉर्डर यानी कंप्यूटर कैमरा लगा दिया है तो वह व्यक्ति, जिससे आप बातें कर रहे हैं, आपको देख भी सकता है। वैसे यह उपकरण बहुत महँगा है।

8. इंट्रानेट

इंट्रानेट (Intranet) वह सुविधा है, जिसकी पहुँच सीमित लोगों तक होती है। सामान्यतया बड़ी कंपनियाँ अपने मुख्यालय तथा अन्य शाखाओं का आपसी संपर्क बनाए रखने के लिए इस सुविधा का प्रयोग करती हैं। इसकी सीमा यह है कि इसकी पहुँच उन्हीं लोगों तक होती है, जो उस कंपनी के कर्मचारी या सदस्य हों और जिनके पास इस वेबसाइट तक पहुँचने का अधिकार हो। वस्तुतः इंट्रानेट का इस्तेमाल किसी संस्था द्वारा अपनी अंदरूनी सूचना के आदान–प्रदान की क्षमता को बढ़ाने के लिए ही किया जाता है। इंट्रानेट के दो अलग–अलग रूप – लोकल एरिया नेटवर्क (लैन) और वाइड एरिया नेटवर्क (वैन) होते हैं। इससे स्टेशनरी एवं पैसे दोनों की बचत होती है तथा जानकारी के तीव्र आदान–प्रदान से कंपनी की उत्पादकता एवं क्षमता दोनों बढ़ाई जा सकती हैं।

9. ई–कॉर्मस

ई–कॉमर्स ने समूचे विश्व को विशाल मंडी में बदल दिया है, जहाँ आप छोटी–से–छोटी और बड़ी–से–बड़ी चीज की खरीद–फरोख्त कर सकते हैं। मात्र ई–कॉमर्स की किसी वेबसाइट को खोलकर और उसे अपना आर्डर देकर आप अपनी पसंदीदा चीज प्राप्त कर सकते हैं।

इंटरनेट पर खरीदारी करने के लिए क्रेडिट कार्ड सबसे सुलभ माध्यम है।

14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. इंटरनेट से क्या अभिप्राय हैं?

....

....

....

2. इंटरनेट के इतिहास पर प्रकाश डालें।

....

....

....

3. इंटरनेट का भारत में शुभारंभ कब हुआ? इंटरनेट से मिलने वाली सुविधाओं पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

11.9 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग – दंगल झाल्टे

....

हिन्दी कंप्यूटिंग

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 ब्राउजिंग

12.4 डाउनलोडिंग एवं अपलोडिंग

12.5 ईमेल भेजना तथा प्राप्त करना

12.6 हिन्दी के प्रमुख इंटरनेट पोर्टल

12.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

12.8 संदर्भ ग्रन्थ/सहायक पुस्तकें

12.1 उद्देश्य

इंटरनेट पर की जाने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधि ब्राउजिंग है जिसका प्रयोग कर किसी भी मनवांछित विषय, तथ्य, जानकारी इत्यादि को प्राप्त किया जाता है। इंटरनेट का प्रयोग करते हुए वांछनीय विषय, जानकारी को कैसे पढ़ा जाता है, सुरक्षित रखा जाता है इसे डाउनलोडिंग से समझा जा सकता है। किस प्रकार किसी तथ्य, जानकारी को प्रेषित किया जाता है उसे विद्यार्थी समझ सकेंगे। कागज पर लिखे पत्र के बजाय कम्प्यूटर स्क्रीन पर लिखे ई–मेल से जुड़ी प्रक्रियाओं की जानकारी यहाँ दी गई है। हिन्दी के महत्वपूर्ण इंटरनेट पोर्टल्स का ज्ञान भी विद्यार्थी प्राप्त करेंगे।

12.1 भूमिका

आधुनिक युग कम्प्यूटर का बेशक है लेकिन आधुनिक पीढ़ी इंटरनेट पीढ़ी है। इंटरनेट से जुड़ी विविध गतिविधियाँ जैसे ब्राउजिंग, ई–मेल, डाउनलोडिंग, अपलोडिंग, महत्वपूर्ण है।

12.3 ब्राउजिंग **(Browsing)**

वे सॉफ्टवेयर जो किसी इंटरनेट उपयोगकार्ता को किसी साईट को कनेक्ट करने, उस पर रखी सामग्री को देखने, सुनने, पढ़ने एवं प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध कराते हैं वैब ब्राउजर कहलाते हैं। ब्राउजर को हिन्दी में खोजक कहते हैं। इसे वैबग्राहक और विश्व ग्राहक के नाम से भी जाना जाता हैं क्योंकि इसमें इंटरनेट उपभोक्ता सर्वर से किसी प्रोग्राम की खोज करता है। ब्राउजर एक ऐसा साधन है जो कम्प्यूटर को इंटरनेट से जोड़ता है। ब्राउजर के दो काम होते हैं –

वैब सर्वर से संपर्क करके सूचना के लिए प्रार्थना करना।

सूचना प्राप्त करके प्रयोक्ता के कम्प्यूटर पर प्रदर्शित करना।

अलग–अलग ऑपरेटिंग सिस्टम के लिए अलग–अलग अनेक वेब ब्राउजर बाजार में उपलब्ध हैं। नेटस्केप नेवीगेटर और इंटरनेट एक्सप्लोरर दो ऐसे ब्राउजर हैं जिनको क्रमशः नेटस्केप और माइक्रोसॉफ्ट ने विकसित किया है। वर्ल्ड वाइड वैब w^3 के साथ ब्राउजर का विकास अत्यन्त तीव्रता से हुआ। माइक्रोसॉफ्ट ने इंटरनेट एक्सप्लोरर ब्राउजर का विकास कर उसे अपने ऑपरेटिंग सिस्टम में विंडोज95 और विंडोज98 के साथ निःशुल्क देना प्रारम्भ किया। विंडोज98 को इतना शक्तिशाली बनाया गया कि उसकी सहायता से इंटरनेट का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त यूनिक्स ऑपरेटिंग सिस्टम के LYNX और विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम के तहत CELLO, WINWEB, NETSCAPE, EXPLORER, मैक (MAC) ऑपरेटिंग सिस्टम के अन्तर्गत SAMBA, MACWEB ब्राउजर हैं।

वैब ब्राउजर इंटरनेट पर चली गई जानकारी के लिए वेब सर्वर कम्प्यूटर को संदेश (request) भेजता है। वेब सर्वर कम्प्यूटर के पोर्ट 80 पर चल रहा HTTPD प्रोग्राम इस संदेश को ग्रहण करता है। यह प्रोग्राम तदनुसार प्रक्रिया कर वापस वैब ब्राउजर को वाँछित जानकारी भेजता है। वैब सर्वर प्राप्त हो रही इस जानकारी को वैब ब्राउजर पैकेट के रूप में प्राप्त कर एकत्रित करता है तथा इन प्राप्त पैकेटों को व्यवस्थित (assemble) कर, स्क्रीन पर जानकारी (वैब पेज) डिस्प्ले कर देता है।

वैब ब्राउजर के अभाव में चित्र, टैकस्ट, संगीत, वीडियो देखने–सुनने की कल्पना नहीं की जा सकती। LYNX टैकस्ट आधारित ब्राउजर है इसके द्वारा किसी पुस्तक को पढ़ सकते हैं। इसके माध्यम न चित्र देखे जा सकते हैं और न ही ध्वनि सुनी जा सकती है। इसमें ग्राफिक्स को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। स्ल्छग को कसांस विश्वविद्यालय के डिस्ट्रीब्यूटिड कम्प्यूटिंग ग्रुप ने तैयार किया था।

मोजैक (MOSAIC) – ग्राफिक्स आधारित वैब ब्राउजर है। इसमें चलचित्र देख सकते हैं तथा ध्वनि सुन सकते हैं। यह ब्राउजर मार्क एडरसन ने बनाया था। इस ग्राफिक्स आधारित वैब ब्राउजर का नाम था – NCSA (National Centre Super Computing Application) जो चित्र आधारित जानकारी के लिए उपयोगी है।

12.4 डाउनलोडिंग **(Downloading)** एवं अपलोडिंग **(Uploading)**

डाउनलोडिंग (Downloading) – इंटरनेट द्वारा किसी फाइल को एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर पर उतारना डाउनलोडिंग (Downloading) कहलाता है। आमतौर पर इसका प्रयोग फाइलों के हस्तांतरण के लिए किया जाता है। इसमें सूचनाएं निर्यात की जाती हैं। वैब ब्राउजर से प्राप्त किसी विषय को पढ़ना, सुरक्षित करना, उसका प्रिण्ट लेना डाउनलोडिंग है।

फाइल को डाउनलोड करना –

ऐसी फाइलें जो कि LYNX के उपयोग द्वारा पढ़ना संभव नहीं होता है उन फाइलों को डाऊनलोड करके ही पढ़ा जा सकता है। इनमें प्रोग्राम फाइलें, ZIP फाइलें व अन्य बाइनरी फाइलें सम्मिलित हैं यदि LYNX वेब ब्राउसर का उपयोग कर आप ऐसी किसी फाइल को पढ़ने की कोशिश करते हैं जिन्हें कि उसके द्वारा नहीं पढ़ा जा सकता है तब स्क्रीन पर निम्न संदेश प्राप्त होगा

THIS FILE CANNOT BE DISPLAYED ON THIS TERMINAL (D) DOWNLOAD OR (C) CANCEL

अब यदि आप इस फाइल को सर्वर पर डाउनलोड करना चाहते हैं तब D दबाना होगा। D दबाते ही SAVE TO DISK स्क्रीन पर प्रदर्शित होगा। इस पर ENTER दबा दीजिये

अब कम्प्यूटर FILE NAME पूछेगा यहाँ पर एक फाइल नाम टाइप कर दीजिये। इसी फाइल नाम से सर्वर पर उक्त फाइल संग्रहित हो जायेगी। इस फाइल को ई–मेल द्वारा अपने कम्प्यूटर पर स्थानांतरित किया जा सकता है यदि फाइल डाउनलोड न करना हो तब C अर्थात् CANCEL दबाना होगा।

अपलोडिंग (Uploading) – इंटरनेट द्वारा किसी फाइल को एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर पर भेजना अपलोडिंग (Uploading) कहलाता है। इसमें सूचनाएं आयात की जाती हैं। ई मेल भेजना अपलोडिंग है और ई मेल प्राप्त करना डाउनलोडिंग है। वैब ब्राउजर से प्राप्त किसी विषय को सुरक्षित करके भी किसी को सूचना अपलोड की जा सकती है।

12.5 ई–मेल का अभिप्राय, प्रक्रिया, प्राप्त करना, भेजना

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इलेक्ट्रानिक मेल पत्राचार का इलेक्ट्रानिक रूप या माध्यम है। सामान्य पत्राचार प्रणाली में कागज के ऊपर लिखा या टाइप किया जाता है और उसे डाक व्यवस्था का उपयोग करते हुए, वांछित व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है वहीं इलेक्ट्रानिक मेल में पत्र को कम्प्यूटर पर टाइप किया जाता है तत्पश्चात सॉफ्टवेयर व नेटवर्क व्यवस्था के उपयोग द्वारा उसे चाहे गये व्यक्ति तक पहुँचा दिया जाता है। यहां इलेक्ट्रानिक मेल भेजने व पाने वाले दोनों व्यक्तियों के पास इलैक्ट्रानिक मेल का कनेक्शन होना अनिवार्य है क्योंकि इलेक्ट्रानिक मेल एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर पर ही भेजी व प्राप्त की जा सकती है।

ई–मेल वर्तमान में संदेशों के आदान–प्रदान का तीव्रतम साधन है। इसमें दिये गये संदेश की भाषा सामान्य पत्राचार के रूप में न हो कर, बातचीत की भाषा के रूप में अधिक होती है। सामान्य कागजी पत्राचार को अपने गंतव्य तक पहुँचने में अपेक्षाकृत काफी अधिक समय लगता है तथा कोई बात समझ में नहीं आने पर, जवाब वापस पाने में और भी अधिक समय लगता है। वहीं ई–मेल जहाँ अपने गंतव्य तक विश्व के किसी भी भाग में मात्र कुछ मिनटों में ही पहुँच जाती है तथा कुछ बात समझ में न आने पर भेजने वाले से उक्त संबंध में तुरंत ही जवाब भी प्राप्त किया जा सकता है ?

कम्प्यूटर से कम्प्यूटर संदेश प्रेषण को ई–मेल, इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके निम्नांकित गुण सामान्य डाक व्यवस्था से मिलते–जुलते हैं।

इलेक्ट्रानिक मेल व्यवस्था से जुड़े समस्त कम्प्यूटरों के अलग–अलग पते होते हैं।

ई–मेल प्राप्तकर्ता द्वारा कब पढ़ी गई, इसका पता प्रेषक को नहीं लगता है।

सामान्य डाक व्यवस्था के समान ही संदेश निर्माणकर्ता, अन्य किसी को (नेटवर्क को), संदेश (पत्र) वांछित स्थल तक पहुँचाने हेतु प्रदाय करता है।

यदि आप ई–मेल पता गलत ढंग से लिखेंगे, तो संदेश भेजने वाले तक वापस आ जाएगा।

यदि किन्हीं कारणों से नेटवर्क ई–मेल को गंतव्य तक नहीं पहुँचा सकेगा, तब भी ई–मेल प्रेषक तक वापस आ जाएगी ऐसी वापस ई–मेल, बाऊंस मेल कहलाती है।

कोई भी व्यक्ति जिसके पास आपका ई–मेल पता हो, आपको ई–मेल भेज सकता है।

यदि आप छुट्टी पर गये हुए हैं और अपनी ई–मेल न पढ़े तो आपका ई–मेल बॉक्स, ई–मेल से भर सकता है।

सामान्य तौर पर ई–मेल संदेशों का आदान–प्रदान दो व्यक्तियों के मध्य ही होता है अर्थात् ई–मेल से प्रेषित संदेशों को सिर्फ प्रेषक और वांछित प्राप्तकर्ता ही पढ़ सकते हैं। लेकिन चूंकि ई–मेल संदेश एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटरों पर होते हुए वांछित व्यक्ति तक पहुँचता है अतः बीच के कम्प्यूटरों पर इसके पढ़े जाने की संभावना जरूर रहती है। हालांकि एक कम्प्यूटर से अगले कम्प्यूटर तक ई–मेल स्वचालित रूप से, बिना किसी मानवीय प्रक्रिया के प्रेषित व प्राप्त होती है अतः यह संभावना, कि किसी व्यक्ति के लिए प्रेषित ई–मेल संदेश कोई अन्य व्यक्ति पढ़ेगा लगभग नगण्य होती है। साथ ही यहाँ एक तथ्य और भी जानना आवश्यक है कि ई–मेल सर्वर कम्प्यूटर हजारों की संख्या में ई–मेल का आदान–प्रदान प्रतिदिन करते हैं और यह किसी भी सर्वर प्रबंधक के लिए सम्भव नहीं है कि वह इन हजारों ई–मेल को पढ़ने की कोशिश करें।

फिर भी सावधानी के तौर पर प्रत्येक ई–मेल उपयोगकर्ता को यह सलाह अवश्य दी जाती है कि वे अति गोपनीय प्रकार का पत्राचार ई–मेल से न करें। यदि कभी अति–गोपनीय पत्राचार ई–मेल से करना आवश्यक ही हो तब सामग्री को कूट रूप में प्रेषित करना उचित होगा।

ई–मेल की प्रक्रिया

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि ई–मेल, एक कम्प्यूटर उपयोगकर्ता के संदेश को दूसरे कम्प्यूटर उपयोगकर्ता तक पहुँचाने की एक विधि है। ये उपयोगकर्ता एक कम्प्यूटर पर ही हो सकते हैं या फिर लोकल एरिया नेटवर्क के अंतर्गत किसी कम्प्यूटर के हो सकते हैं। किसी वाइड एरिया नेटवर्क के तहत हो सकते हैं या फिर अलग–अलग दो नेटवर्कों के भी हो सकते हैं। यदि ये दोनों अर्थात् संदेश भेजने व प्राप्त करने वाले उपयोगकर्ता एक ही कम्प्यूटर पर कार्य करते हैं तब ई–मेल संदेश में पते के सम्मुख केवल उस उपयोगकर्ता का लॉगिन नाम लिख देना ही पर्याप्त होता है जिसे कि ई–मेल भेजना है। लेकिन यदि उपयोगकर्ता एक ही लोकल ऐरिया नेटवर्क के अलग–अलग कम्प्यूटर पर हो तब पते के सम्मुख लॉगिन नाम के साथ–साथ कम्प्यूटर को दिया गया नाम संकेत के पश्चात् लगाना आवश्यक होता है। यदि उपयोगकर्ता वाइड एरिया नेटवर्क के अंतर्गत या अलग–अलग नेटवर्कों पर स्थित है तब उस परिस्थिति में पते के सम्मुख पूर्ण ई–मेल पता टाइप करना आवश्यक होना है। इंटरनेट ई–मेल प्रणाली के अन्तर्गत कम्प्यूटर सर्वर, राउटर, ब्रिज/गेटवे आदि का आवश्यकतानुसार उपयोग करता है तथा ई–मेल इनसे होते हुए ही अपने गंतव्य तक पहुँचती है।

ई–मेल सर्वर – वह कम्प्यूटर प्रणाली जो कि अपने अधीनस्थ सभी कम्प्यूटरों के लिये इंटरनेट से मेल प्राप्त अथवा प्रेषित करती है।

राउटर – वह उपकरण जो कि इंटरनेट पते के आधार पर अन्य सर्वर अथवा नेटवर्कों को ई–मेल आगे बढ़ाते हैं।

ब्रिज/गेटवे – अलग–अलग प्रकार के प्रोटोकॉल पर आधारित विभिन्न नेटवर्कों को जोड़ने का काम करता है।

यहाँ एक तथ्य और भी जानना आवश्यक है वो यह कि ई–मेल सर्वर कम्प्यूटर ई–मेल को छोटे–छोटे प्रभागों में विभक्त करके गंतव्य के लिए आगे बढ़ाता है, छोटे–छोटे प्रभागों को पैकेट कहा जाता है। प्रत्येक पैकेट के साथ प्राप्तकर्ता का ई–मेल/इंटरनेट पता रहता है। ये सभी पैकेट अपने गंतव्य कम्प्यूटर पर पहुँचकर पुनः सही क्रम से व्यवस्थित हो पूर्ण ई–मेल के रूप में उपयोगकर्ता को उपलब्ध होते हैं।

ई–मेल प्राप्त करना – ई–मेल प्राप्त करने वाले का अपना ई–मेल आईडी, पासवर्ड और अकाउंट होना जरूरी है। प्राप्त ई–मेल को पढ़ने के लिए जिस सर्वर पर अपना खाता हो उस पर जाना होता है फिर अपना ई–मेल आईडी और पासवर्ड डालकर मेल खोली जाती है। इसके बाद खुली हुई मेल में इनबाक्स (inbox)

पर क्लिक करके वांछित प्राप्त ई–मेल को पढ़ा (read) सुरक्षित (save), अग्रेषित (forward), मिटाया (delete) किया जा सकता है और उसका जवाब (reply) दिया जा सकता है।

ई–मेल भेजना – जिसे ई–मेल भेजना है उसका लॉगिन नाम और ई–मेल पता ज्ञात होना जरूरी है। ई–मेल प्राप्त करने वाली विधि की तरह जिस सर्वर पर अपना खाता हो उस पर जाना होता है फिर अपना ई–मेल आईडी और पासवर्ड डालकर मेल खोली जाती है। इसके बाद खुली हुई मेल में कम्पोज (compose) पर क्लिक करके एक फाइल खुलती है। यहाँ ज्व के सामने जिसे मेल करनी है उसका ई–मेल नाम टाइप किया जाता है। कम्पोज मैसेज (compose message) में संदेश टाइप कर फिर उसे भेज (send) दिया जाता है। यदि कम्प्यूटर की किसी फाइल को भेजना हो तो उसे अटैच (attach) किया जाता है।

12.6 हिन्दी के इंटरनेट पोर्टल (Hindi Internet Portal)

कम्प्यूटर की क्रियाएं अंग्रेजी भाषा में होती हैं किन्तु उसका प्रयोग हिन्दी भाषा भाषी, हिन्दी के साहित्यकार, विद्यार्थी, हिन्दी के समाचार पत्र–पत्रिकाएं भी करते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हिन्दी के इंटरनेट पोर्टल कार्य करते हैं। इंटरनेट पर कार्य करते हुए जब किसी हिन्दी समाचार पत्र जैसे नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान की साइट खोलते हैं तब कम्प्यूटर स्क्रीन पर बाईं ओर अखबार के कॉलम के आकार में समाचार चलते रहते हैं जिन्हें उस सम्बन्धित अखबार के इंटरनेट पोर्टल नाम से जाना जाता है। जब यह पोर्टल हिन्दी अखबार से जुड़ा होता है तब इसी को हिन्दी का इंटरनेट पोर्टल कहा जाता है।

हिन्दी के इंटरनेट पोर्टल का दूसरा सम्बन्ध बाजार में उपलब्ध हिन्दी के विभिन्न सॉफ्टवेयरों से है। इनमें हिन्दी के अलग–अलग फॉण्ट जैसे कृतिदेव, वाक्समैन, मंगल, कार्तिक आदि से लेकर शब्दकोश, वर्तनी–दोष सुधार, हिन्दी भाषा ज्ञान, हिन्दी में अनुवाद इत्यादि विविध प्रोग्राम उपलब्ध हैं।

बाजार में इन दिनों सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं। भारत में सुपरटेक सॉफ्टवेयर एण्ड हार्डवेयर ने जिस सॉफ्टवेयर को विकसित किया है वह अंग्रेजी दस्तावेजों का हिन्दी में तुरन्त अनुवाद कर देता है। यह सॉफ्टवेयर कृत्रिम बुद्धि से युक्त है। सुपरटेक कम्पनी हिन्दी अंग्रेजी सॉफ्टवेयर का विकास करने की दिशा में अग्रसर है। इस सॉफ्टवेयर में तीन प्रकार के शब्दकोश – सामान्य, वैज्ञानिक और कृषि सम्बन्धी हैं। यह सॉफ्टवेयर अंग्रेजी तथा हिन्दी शब्द संसाधक के रूप में स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकता है।

ऐसे सॉफ्टवेयर को भी विकसित किया गया है जिससे ई–मेल हिन्दी के अतिरिक्त कुछ प्रादेशिक भाषाओं में भी भेजे जा सकते हैं। आई. बी. एम. ने वैयक्तिक संगणकों (Personal Computer) का प्रयोग करने वालों के लिए द्विभाषिक शब्द संसाधन के लिए अनेक पैकेज बाजार में उपलब्ध कराए हैं। दो भाषाओं में कार्य के लिए इन पैकेजों पर मुद्रण के लिए केवल डॉटमैट्रिक्स (Dotmatrix) अथवा लेजर प्रिंटर (Laser Printer) का ही उपयोग किया जा सकता है।

डी. बेस, लॉटस, कोबोल, आदि मानक पैकेजों को 'सुलिपि' सॉफ्टवेयर द्वारा द्विभाषिक रूप में चलाया जा सकता है। बेसिक (Basic) डी–बेस–III (D-Base-III) तथा वर्ड स्टार (Word Star) में द्विभाषिक अर्थात् हिन्दी–अंग्रेजी वाक्य–रचना त्रुटियों की व्याख्या उपलब्ध कराने के लिए 'मित्रा' नामक सॉफ्टवेयर विकसित किया गया है जिसे स्मृति (Memory) में संचित किया जा सकता है। यह सॉफ्टवेयर ऑन–लाइन (On Line/Internet) पर कार्य करते हुए सहायक तंत्र के रूप में काम करता है। केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान मैसूर ने 'रोम–चिप' (Rom Chip) नाम से एक अन्य सुविधा विकसित की है जिससे किसी भी भाषा को हिन्दी, मराठी, संस्कृत में पढ़ाया जा सकता है।

नये द्विभाषी कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर 'अक्षर फार विंडोज' के माध्यम से अब वे लोग भी देवनागरी लिख सकते हैं जो देवनागरी में लिख नहीं सकते, परन्तु बोलचाल की हिन्दी जानते हैं। एक अन्य सॉफ्टवेयर शब्दमाला में भी देवनागरी शब्द (Word Processor) की सुविधाएं उपलब्ध हैं।

ओशो कम्यून इंटरनेशनल, पुणे ने एक हिन्दी वर्तनी जांचक ओशो स्पैल बाइनडर (Osho Spell Binder) तथा हिन्दी शब्द कोश 'हिन्दी शब्द सागर' को विकसित किया है। यह एक हिन्दी प्रूफ रीडर है जो एक हजार शब्द प्रति मिनट की गति से दस्तावेजों के वर्तनी–दोषों की जांच कार्य कर सकता है। इसके शब्दकोश में एक लाख बीस हजार शब्दों को संचित करने की क्षमता है।

पुणे में स्थित सी–डेक द्विभाषिक अथवा बहुभाषिक सॉफ्टवेयर में अग्रणी है। इसमें कई पैकेजों का विकास किया गया है जिसमें जिस्ट (Jist), टर्मिनल (Terminal) लिप्स (Lips) मूव (Moov) बटरफ्लाई (Butterfly) जिस्ट सेल (Jist Cell) आदि सम्मिलित हैं। सी–डेक के ये उत्पाद बहुभाषी वातावरण में स्वतंत्र रूप से काम कर सकते हैं। सॉफ्टवेयरों के माध्यम से न केवल भारतीय लिपियों में बल्कि भूटानी, तिब्बती, सिंहली में भी काम किया जा सकता है। सी–डेक ने हिन्दी वर्तनी जांचक सॉफ्टवेयर भी विकसित किया है जिसे जिस्टकार्ड (Jist Card) पर स्क्रिप्ट संसाधक (Menscript Processor) के साथ चला सकते हैं। यह स्वर आधारित गलत वर्तनी के हिन्दी शब्दों का सही विकल्प सुझाता है। जैसे डोगरी भाषी 'य' को 'ज' अथवा 'ब' को 'भ' कई स्थलों पर बोलते हैं उनका सही उपयोग सी–डेक हिन्दी वर्तनी जांचक सॉफ्टवेयर बताता है।

'अमष्त' 'अभिलाषा' और 'बसंत' आदि हिन्दी के फाण्ट्स, 'ओशो कम्यून इनटरनेशनल' पुणे द्वारा विकसित हैं। इन्हें ऐपल मैकिन्टास संगणकों (Apple Macintas Computer) पर प्रयुक्त किया जा सकता है। ए.सी.ई.एस. कंसल्टेण्ट्स (ACES Consultants) द्वारा विकसित 'आकृति–95' सॉफ्टवेयर में हिन्दी के अनेक पार्टस विकसित किए गए हैं जो विविध कुंजी–पटलों (Key Boards) के विकल्प, टाइपिंग गति तथा विंडो डॉस (Window Doss) आदि कम्प्यूटर पर सुसंगति से काम करने की सुविधा देता है।

तुलना की दृष्टि से हिन्दी एवं अंग्रेजी के इंटरनेट पोर्टलों में अन्तर होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी इंटरनेट पोर्टल की कुछ अन्तर्निहित तकनीकी समस्याएँ होती हैं जिस कारण से अंग्रेजी वेबसाइट की तुलना में इसका विकास वांछित गति से नहीं हो पाता है। कम्प्यूटर तकनीक का विकास अनिवार्य रूप से अंग्रेजी भाषा में हुआ। अतः हिन्दी इंटरनेट पोर्टल (हिन्दी वेबसाइट) को प्रारम्भ से ही एक तकनीकी समस्या से जूझना पड़ा। यह समस्या मुख्यतः भाषायी थी। यद्यपि 90 के दशक में कतिपय कम्प्यूटिंग टूल्स जैसे फांट–की–मैप, स्टैंडर्स डाइजेशन, वर्ड प्रोसेसिंग, इलेक्ट्रॉनिक शब्दकोश, स्पेल चेकर के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया गया। इसने काफी हद तक प्रोग्रामिंग के माध्यम से समाधान तो किया किन्तु डाउनलोड एवं कन्फीग्रेशन के क्षेत्र में समस्याएँ कमोबेश बनी रहीं। इस दिशा में अनेक प्रतिष्ठित संस्थानों जैसे सी–डेक (पुणे), एसीएसटी (मुम्बई), इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ इन्फार्मेशन (हैदराबाद) ने अपने स्तर पर महत्त्वपूर्ण योगदान दिए।

विदेशों में खासकर अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि देशों में हिन्दी में महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों एवं साहित्यिक पत्रिकाओं की वेबसाइटें अस्तित्व में आई। इनमें कुछ महत्त्वपूर्ण वेबसाइट थे – अभिव्यक्ति–हिन्दी, ओआरजी, अनुभूति–हिन्दी, ओआरजी, भारतदर्शन.कॉम, हिन्दीनेस्ट.कॉम। इन वेबसाइटों के विकास की प्रक्रिया में आने वाली भाषा सम्बन्धी असुविधाओं को दूर करने का प्रयास किया गया और इस क्रम में तकनीक का विकास होता रहा।

'90 के दशक के उत्तरार्द्ध में महत्त्वपूर्ण हिन्दी दैनिकों ने तेजी से अपने समाचार साइटों का विकास आरम्भ किया। इनमें 'दैनिक जागरण' की वेबसाइट जागरण.कॉम (17 जनवरी 1997), 'अमर उजाला' की वेबसाइट उमरउजाला.कॉम (24 जुलाई 1998), 'दैनिक भास्कर' की वेबसाइट भास्कर.कॉम (17 अप्रैल 1998), 'नई दुनिया' की वेबसाइट नई दुनिया.कॉम (7 दिसम्बर 1996), वेबदुनिया.कॉम (31 जुलाई 1999), 'हिन्दी मिलाप' की वेबसाइट मिलाप.कॉम (4 मार्च 1997), 'राजस्थान पत्रिका' की वेबसाइट राजस्थान पत्रिका.कॉम (19 फरवरी 1998), प्रभासाक्षी.कॉम, हिन्दी एवं उर्दू में एक साथ ऑनलाइन होने वाला लश्कर.कॉम (4 जनवरी, 1999), रॉची से प्रकाशित 'प्रभात खबर' की वेबसाइट प्रभातखबर.कॉम (7 फरवरी 2000) आदि प्रमुख थीं।

यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि जहाँ समाचार–पत्रों ने अपनी साइटों के निर्माण व विकास की गति और दिशा को बनाए रखा वहीं स्वतन्त्र वेबसाइट, जिनका सम्बन्ध साहित्य–संस्कृति आदि से था, उस तेजी से विकास नहीं कर पाए। इसका भी मूल कारण भाषा व फॉण्ट की समस्या ही रही। हालाँकि विदेशों में कई लोगों ने इन समस्याओं से निजात पाने के लिए कतिपय प्रयास किए जिसके फलस्वरूप अभिव्यक्ति–हिन्दी, ओआरजी एवं अनुभूति–हिन्दी, ओआरजी जैसी साइट आज देखने को मिल रही हैं। अब तो साहित्य को समर्पित इन साइटों में से एक साइट और जुड़ गया है जिसका नाम है – लिटरेटवर्ल्ड.कॉम।

लिटरेटवर्ल्ड कैलिफोर्निया (अमेरिका) स्थित एक प्रकाशन, मीडिया और इंटरनेट कम्पनी है जिसने लिटरेटवर्ल्ड.कॉम नाम से बहुभाषी साहित्यिक पोर्टल प्रारम्भ किया है। इस साइट का विधिवत् उद्‌घाटन 24 दिसम्बर 2001

को नई दिल्ली में किया गया था। अभी इस साइट के हिन्दी खंड में हलचल (खबरों का खंड), साक्षात्कार, स्तम्भ, नई पुस्तकें, समीक्षा, कहानी और विचारधारा के खंड हैं। इसके अलावा सौ रचनाकारों के संक्षिप्त जीवनवृत्त भी साइट पर दिए गए हैं।

लिटरेटवर्ल्ड.कॉम को अभी प्रतिमाह दस लाख टिप्स मिल रहे हैं। यह पोर्टल सिडनी, त्रिनिदाद, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी जैसे देशों में भारतीय मूल के लोगों में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रति आकर्षण को नई ऊर्जा दे रहा है। इसका नई दिल्ली में ब्यूरो भी है और हिन्दी भाषी क्षेत्रों की राजधानियों में तमाम जगहों पर इसके संवाददाता फैले हुए हैं। यह ऐतिहासिक महत्त्व की बात है कि सम्भवतः पहली बार साहित्य से जुड़ी खबरों को इतनी प्रमुखता से और खासकर अपने संवाददाताओं के माध्यम से कोई पत्रिका कवर कर रही है।

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ब्राउजिंग किसे कहते हैं?

....

....

....

....

2. डाउनलोडिंग एवं अपलोडिंग से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

3. ई–मेल प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

4. हिन्दी के इंटरनेट पोर्टल कौन से हैं?

....

....

....

....

....

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
2. जनसम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम – एन.सी. पंत
3. सूचना, संचार और समाचार – मुकुल श्रीवास्तव
4. संचार और संचार माध्यम – डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
5. जनपत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क – प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
6. रंगकर्म और मीडिया – जयदेव तनेजा
7. दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी – डी.डी. ओझा, सत्यप्रकाश
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता – डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह
9. इलेक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त – रूपचंद गौतम
10. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम – ओम प्रकाश सिंह
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग – दंगल झाल्टे

....

Course Code - 404 **Lesson No. 13**

Unit-III

अनुवाद : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 अनुवाद : अर्थ

13.4 अनुवाद : परिभाषाएँ

13.4.1 पश्चिमी विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ

13.4.2 भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ

13.5 अनुवाद : स्वरूप

13.6 सारांश

13.7 कठिन शब्द

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.1 उद्देश्य

विद्यार्थियो प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप

- 'अनुवाद' शब्द के अर्थ से भली भांति परिचित हो सकेंगे।
- अनुवाद की परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- अनुवाद के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

संसार में अनगिनत भाषाएँ हैं। हर छोटी–बड़ी भाषा का अपना जन–समूह है। एक समय था कि हर भाषी जन–समूह अपने में सीमित वाक्–व्यवहार द्वारा जीवन की सभी जरूरतों को पाकर जी सकता था। परन्तु आज वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक विकास के युग में मात्र भाषा ही नहीं देश की सीमा रेखा भी अस्पष्ट होती जा रही है। किसी भी देश का आदमी मात्र एक ही भाषा–क्षेत्र में आबद्ध बनकर जी नहीं पायेगा। उसका सम्बन्ध किसी–न–किसी रूप में अन्य भाषा–भाषी से अनिवार्य रूप में आयेगा ही। इसलिए उसे एक सम्पर्क भाषा की जरूरत होती है। कोई देश–कितना भी विकसित क्यों न हो, उसे अन्य देशों से सम्पर्क करना ही होता है; अतः वहाँ भी सम्पर्क–भाषा की जरूरत महसूस होती है। राष्ट्र भाषा और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की अवधारणा इसी वाक्–व्यापार की आवश्यकता की उपज है। सम्पर्क भाषा तथा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के निर्माण में अनुवाद की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इसलिए अनुवाद आज की सर्वाधिक चर्चित और महत्त्वपूर्ण विधा है। रोजमर्रा के कामकाज से लेकर वैज्ञानिक–तकनीकी अध्ययन तक में अनुवाद की आवश्यकता होती है। ज्ञान–विज्ञान के इस समुन्नत काल में अनुवाद की प्रासंगिकता को और अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं। भाषा, साहित्य, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान की श्रीवृद्वि में अनुवाद का महत्त्व असाधारण रूप में देखा जा सकता है।

13.3 अनुवाद : अर्थ

'अनुवाद' प्राचीन और अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाषाई प्रक्रिया है। इसके मूल में एक भाषिक संरचना/अभिव्यक्ति का दूसरी भाषिक संरचना/अभिव्यक्ति में रूपांतरण होता है। 'अनुवाद' का शाब्दिक अर्थ है : अनु+वद्+घञ् अर्थात् किसी के कहने के बाद कहना, किसी कथन के पीछे (अनुवर्ती) का कथन, पुनः कथन अथवा पुररुक्ति। अतः अनुवाद शब्द की व्युत्पत्ति 'वद्' धातु से है। 'वद्' धातु में 'धज्' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है और फिर उसके साथ 'अनु' उपसर्ग जुड़ने पर 'अनुवाद' शब्द बनता है। 'वद्' से तात्पर्य है बोलना तथा 'अनु' का अर्थ है – पीछे, साथ–साथ, इधर–उधर, सदृश्य, पास आदि। अतः इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ होगा–'पुनः कथन', एक बार कही हुई बात को दुबारा कहना। इसमें 'अर्थ की पुनरावृत्ति' होती है, शब्द–रूप की नहीं। हिन्दी में अनुवाद शब्द अंग्रेजी 'Translation' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। 'Translation' शब्द लैटिन शब्द 'Trans' तथा 'Lation' शब्दों के योग से बना है। जिसका अर्थ है – 'पार' और 'Lation' का अर्थ है ले जाने की क्रिया। अतः 'Translation' का व्युत्पत्तिपरक अर्थ हुआ –

परिवहन, एक स्थान बिन्दु से दूसरे स्थान–बिन्दु पर ले जाना। स्पष्ट है कि अनुवाद तथा Translation के व्युत्पत्तिपरक अर्थ में 'अर्थगत रूपान्तरण' की ओर संकेत है। अनुवाद एक भाषा में भी हो सकता है और एक भाषा से दूसरी भाषा में भी। परन्तु अनुवाद का प्रचलित अर्थ एक भाषा से दूसरी भाषा में अर्थ रूपान्तरण क्रिया तक ही सीमित रूप में लिया जाता है।

जिस सीमित अर्थ में आज 'अनुवाद' का प्रयोग किया जाता है, वह प्राचीन नहीं है। वस्तुतः पहले जो व्याख्या रूप में 'पुनःकथन' की प्रक्रिया थी, वही अनुवाद था जो प्रायः उसी भाषा में होता था। पर आज तो विचारों अथवा तात्पर्य को भिन्न भाषा में अभिव्यक्त करना या रूपांतरित करना अनुवाद है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, 'अनुवाद' में दो पद हैं, उपसर्ग के रूप में 'अनु' तथा वद् धातु से निर्मित पद 'वाद'। भाव की गूढ़ता के अनुसार प्रयोगकर्त्ता, गुरू, संत–महात्मा, ऋषि उसमें अपनी ओर से टीका, स्पष्टीकरण भी जोड़ देता था। यह व्याख्या आवश्यकतानुसार छोटी या बड़ी हो सकती थी।

विशेष रूप से ब्राह्मण ग्रंथों का वह भाग अनुवाद कहा जाता था जिसमें पूर्वोक्त निदेश या विधि की व्याख्या, चित्रण या उसकी टीका–टिप्पणी निहित है और जो स्वयं विधि या निदेश नहीं है। इस प्रकार दोनों पदों का संयुक्त अर्थ हुआ पूर्व कथन के समानांतर कथन, पश्चात्कथन अथवा महत्त्व के अनुसार क्रम में निर्धारण।

'न्याय सूत्र' में प्रयोग मिलता है : 'विधिविहितस्यानुवचनमनुवाद' अर्थात् विधि और विहित का अनुवचन ही अनुवाद है। 'न्याय' में पुनःकथन के अर्थ में अधिक प्रचलन है अर्थात् वाक्य का वह भेद–उपभेद जिसमें कही हुई बात का फिर–फिर स्मरण और कथन हो जैसे, 'अन्न पकाओ, पकाओ, शीघ्र पकाओ, हे प्रिय! पकाओ'।' हिंदी में आज भी नाटकों में इस प्रकार की भाषा से युक्त संवाद देखे जा सकते हैं। 'मीमांसा' के अनुसार वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दों मे समर्थन के लिए कथन 'अनुवाद' कहा जाता था। उपनिषदों में 'अनुवदति' शब्द का प्रयोग आवृत्ति के अर्थ में दिया गया है। 'शब्द रत्नावाली' में अनुवाद को कुत्सिर्थवाक्य कहा गया है। 'पुनरुक्ति' अर्थ विशेषतः प्रचलन में रहा :

विवानुवादं न च तन्मनीषितं
सम्यग् यतस्त्यक्तमुपाददत् पुमान्। (भागवत)

सिद्धांत कौमुदी में कहा गया है : 'सिद्धोपदेशे च अनुवादे रचरणानामिति', अष्टाध्यायी (पाणिनी) में 'अनुवादे चरणानाम्' (2.4.3) है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा साकता है कि 'अनुवाद' कही हुई बात को फिर से कहना मात्र माना जाता था, फिर वह बात चाहे अपनी कही हुई हो या किसी दूसरे की। 'बात दुबारा कहना या दोहराना' का मुख्य उद्देश्य उसका स्पष्टीकरण या कुछ विशिष्ट विवेचन मात्र होता था। कालांतर में इस अर्थ में परिवर्तन हो गया कि एक भाषा में कही गई बात को या बातों को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों कहना या बतलाना है।

13.4 अनुवाद : परिभा षाएँ

'अनुवाद' की प्रक्रिया तो जटिल है ही, उसको परिभाषित करना भी उतना ही कठिन है। कई मनीषियों, भाषाविदों

तथा अनुवादकों ने इसे परिभाषित करने की चेष्टा की है। यहां कुछ परिभाषाएं दी जा रही हैं :

13.4.1 पश्चिमी विद्वानों द्वारा दी गई परिभा षाएँ

डास्टर्ट (Dostert) के अनुसार अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा–विज्ञान की वह शाखा है, जिसका घनिष्ठ संबंध किसी एक सुनिश्चित प्रतीक समूह को दूसरे विन्यासगत प्रतीक समूह में अंतरित करने की प्रक्रिया अथवा समस्या से होता है। उन्होंने अनुवाद में अर्थ की प्रधानता देते हुए कहा था कि, "अर्थ हमारे विचार में भाषा गुणधर्म है। किसी भी स्रोत भाषा के पाठ का अर्थ अपना होता है और लक्ष्य भाषा के पाठ का अर्थ भी अपना होता है।"

सेपिर (Sapir) : सेपिर ने माना है कि किसी सभ्यता के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से दो भाषाएं समान नहीं हो सकती हैं। कारण दो सभ्यताएं जिन समाजों में जीती हैं उनके अपने–अपने संसार हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुवाद में मात्र भाषिक परिवर्तन नहीं होता, प्रत्युत उसमें सभ्यता का रूपांतरण अपेक्षित है। रूपांतरण निकटतम ही संभव है।

थ्योडर एच. सेवरी : "अनुवाद प्रायः उतना ही प्राचीन है जितना मूल लेखन और उसका इतिहास भी उतना ही भव्य और जटिल है जितना साहित्य की किसी दूसरी शाखा का।"

नाईडा तथा टेबर : 'मूल भाषा के सन्देश के सममूल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। संदेशों की यह मूल्य समता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से तथा निकटतम एवं स्वाभाविक होती है।"

कैटफोर्ड – "एक भाषा की पाठ्य सामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्य सामग्री से प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है।"

न्यूमार्क – "अनुवाद एक शिल्प है जिसमें एक भाषा में लिखित सन्देश के स्थान पर दूसरी भाषा के उसी सन्देश को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।

हार्टमन तथा स्टार्क – "एक भाषा या भाषा भेद से दूसरी भाषा या भाषा भेद में प्रतिपाद्य को स्थानान्तरित करने की प्रक्रिया या उसके परिणाम को अनुवाद कहते हैं।"

हैलिडे – "अनुवाद एक सम्बन्ध है जो दो या दो से अधिक पाठकों के बीच होता है, ये पाठ समान स्थिति में समान प्रकार्य सम्पादित करते हैं। अर्थात् दोनों पाठों का सन्दर्भ समान होता है और उनसे व्यंजित होने वाला संदेश भी समान होता है।

रोमन जैकबसन – "एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों की अन्य भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा व्याख्या अनुवाद है।"

13.4.2 भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ

डॉ. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव : "एक भाषा (स्रोत भाषा) की पाठ सामग्री में अंतर्निहित तथ्य का समतुल्यता के सिद्धांत के आधार पर दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में संगठनात्मक रूपांतरण अथवा सर्जनात्मक पुनर्गठन ही अनुवाद कहा जाता है।"

डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर : "अनुवाद की प्रविधि एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करने तक सीमित नहीं है। एक भाषा के एक रूप के कथ्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत करना भी अनुवाद है। छंद में बताई बात

को गद्य में उतारना भी अनुवाद है। अनुवाद की प्रविधि के दौरान भाषिक समन्वय हो जाता है। 'भाषिक समन्वय' शब्द से मेरा मतलब अनुवाद–प्रक्रिया में लक्ष्यभाषा में स्रोत भाषा के तत्वों के घुलमिल जाने से है। कुछ तत्वों का घुलमिल जाना आसानी से पहचाना नहीं जाता। लंबी अवधि के बाद ही विद्वान अनुशीलन से इसे पहचानते हैं। यह समन्वय भाषा के विकास का सहायक है।"

डॉ. भोलनाथ तिवारी : "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद है इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन; अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम (कथनतः और कथ्यतः), समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार अनुवाद 'निकटतम, समतुल्य और सहज प्रतिप्रतीकन' है।"

डॉ. गार्गी गुप्त : "अनुवाद प्रक्रिया के दो मुख्य अंग होते हैं, अर्थबोध और व्याकरण–सम्मत भाषा में स्पष्ट संप्रेषण। इसीलिए अनुवादक की निष्ठा दोमुखी होती है – मूल रचनाकार के प्रति अर्थबोध की दृष्टि से और पाठक के प्रति शुद्ध तथा सुबोध संप्रेषण की दृष्टि से। मूल रचना की जो संकल्पनाएं अथवा स्थितियां अनूदित रचना के पाठक के लिए अज्ञात, अस्पष्ट या दुरुह हों, उनकी व्याख्या, स्पष्टीकरण, अंर्तसंबंधों का विवरण देना अत्यावश्यक है। यदि हम पाठक को मूल रचना की मनोहारी भूमि में सदेह ले जाना चाहते हैं तो उसका यह मनोहर स्वरूप यथावत उसके मन में भी प्रतिबिंबित होना चाहिए।"

डॉ. सत्यव्रत : "स्रोत भाषा के व्यक्त भावों को लक्ष्यभाषा में व्यक्त करना बड़ा कठिन कार्य है, क्योंकि हर भाषा विशिष्ट परिवेश में पनपती है और तद्नुरूप ही ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, रूपयुक्त, वाक्यमूलक और मुहावरे तथा लोकोक्ति विषयक निजी संरचना से वह दृढ़ीभूत होती है, पूर्णतः शब्द और अर्थ की समान अभिव्यक्ति दूसरी भाषा में कदापि संभव नहीं होती, क्योंकि स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति से उद्‌घाटित अर्थ लक्ष्यभाषा के अर्थ की अपेक्षा विस्तृत, संकुचित या भिन्न हो सकता है

डॉ. सतीश कुमार रोहरा : "अनुवाद से तात्पर्य एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना है। अनुवाद एक प्रकार का आपरेशन अर्थात् संक्रिया है। इस संक्रिया द्वारा एक भाषा की पाठ सामग्री, दूसरी भाषा में प्रतिस्थापित की जाती है। जिस भाषा की पाठ सामग्री प्रतिस्थापित की जाती है, उसे 'स्रोत भाषा' और जिस भाषा में सामग्री प्रतिस्थापित की जाती है उसे हेतु या लक्ष्य अथवा संग्राहक भाषा कहा जाता है। संक्रिया के संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि संक्रिया के लिए स्रोत भाषा की जो सामग्री प्रयुक्त की जाती है वह 'निविष्ट सामग्री' है और संक्रिया के पश्चात् हेतुभाषी की जो सामग्री अनुवाद के रूप में प्राप्त होती है वह 'निर्गत सामग्री' है। आरेख में यह स्थिति स्पष्ट दिखाई गई है :

स्रोत भाषा की = निविष्ट सामग्री–संक्रिया–निर्गत सामग्री = हेतु भाषा में प्राप्त अनुवाद।

पाठ सामग्री का अर्थ उस भाषा सामग्री से है जो स्रोत भाषा में लिपिबद्ध रूप से उपलब्ध है तथा जिसका विस्तार एक शब्द से लेकर कई सौ पृष्ठों अथवा सैकड़ों पुस्तकों तक हो सकता है।

पट्टनायक – अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सार्थक अनुभव को एक भाषा समुदाय से दूसरे भाषा समुदाय में सम्प्रेषित किया जाता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी – "एक भाषा में व्यक्त विचारों को, यथासम्भव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है।"

डी. स्टर्ट – "अनुवाद प्रायोगिक भाषा–विज्ञान की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध प्रतीकों के एक सुनिश्चित समुच्चय से दूसरे समुच्चय के अर्थ के अन्तरण से है।"

डॉ. सुरेश कुमार – "एक भाषा के विशिष्ट भाषा भेद के विशिष्ट पाठ को दूसरी भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत करना अनुवाद है जिसमें वह मूल के भाषिक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य से निष्पन्न अर्थ, प्रयुक्ति और शैली की विशेषता, विषयवस्तु तथा सम्बद्ध सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को यथासम्भव सुरक्षित रखते हुए दूसरी भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्राह्य प्रतीत हो।

इन परिभाषाओं में अनुवाद का स्वरूप परस्पर भिन्न रूप मे स्पष्ट होता है। इन परिभाषाओं में अनुवाद के स्वरूप सम्बन्धित पाँच धारणाएँ प्रस्तुत हैं –

(1) अनुवाद : अर्थ–संप्रेषण की प्रक्रिया के रूप में,
(2) अनुवाद : सांस्कृतिक संदर्भ के एकीकरण के रूप में,
(3) अनुवाद : व्याख्या के रूप में,
(4) अनुवाद : भाषा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्य सामग्री के प्रतिस्थापन के रूप में,
(5) अर्थ एवं शैली की समतुल्यता के रूप में।

उक्त पाँचों धारणाओं का समन्वय अनुवाद का सही स्वरूप स्पष्ट कर सकेगा, क्योंकि मात्र अर्थ का रूपान्तर, अर्थ की व्याख्या, अर्थ और शैली का रूपान्तरण, सांस्कृतिक संदर्भों का रूपान्तरण एक–एक करके या प्रथम रूप में अनुवाद का एक अंग मात्र है, अनुवाद नहीं। इसलिए इन पाँचों अंगों के समन्वित रूप में अनुवाद एक परकाया प्रवेश की प्रक्रिया है। उक्त पाँचों अंगों के समन्वित रूप में अनुवाद की सही परिभाषा डॉ. जी. गोपिनाथन जी के शब्दों में इस प्रकार दी जा सकती है – "अनुवाद वह द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है जिसमें स्रोत पाठ की अर्थ–संरचना (आत्मा) का लक्ष्य पाठ की शैलीगत संरचना (शरीर) द्वारा प्रतिस्थापन होता है।"

13.5 अनुवाद : स्वरूप

विद्यार्थियो! ऊपर वर्णित परिभाषाओं के आधार पर सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि एक भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना अनुवाद है। वस्तुतः यह प्रस्तुति कथ्य के संकेतार्थ या अर्थ की होती है। अर्थात् एक भाषा की प्रतीक अवस्थाके स्थान पर दूसरी भाषा के प्रतीकों का अंतरण अनुवाद है। सस्यूर की भी मान्यता है कि कथ्य का प्रतीकांतकरण अनुवाद है। इस अंतरण प्रक्रिया के मूल में संकेत वस्तु होती है। इस वस्तु को एक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है और यह प्रयोग यादृच्छिक ध्वनियों का समूह होता है, जो एक अर्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है और यह रुढ़ता की प्रक्रिया ही प्रतीक कहलाती है। यथा – 'ऊंट' शब्द को लें। एक ध्वनि समूह का प्रयोग होता है,जो रूढ़ होकर प्रतीक बन जाता है। इसी वस्तु और इसी अर्थ के लिए अंग्रेजी में प्रतीक है – Camel इसी तरह हिन्दी – गाय, अंग्रेज़ी – Cow, हिन्दी–भोजन, अंग्रेजी – Food, आदि शब्द हैं। उच्चरित या लिखित रूप में 'ऊंट' या 'गाय' स्वयं 'ऊंट'

या 'गाय' नहीं होता। वह तो 'ऊंट' या 'घोड़ा' वस्तु के लिए प्रयुक्त प्रतीकजन्य भाषिक वस्तु है, जिसे उसके प्रयोक्ता वास्तविक वस्तु के स्थान पर व्यवहार में लाते हैं। वस्तुतः भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है। और एक भाषा के कथ्य को जब दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना होता है तब वह दूसरी भाषा के प्रतीकों के माध्यम से ही सम्भव है। यह प्रक्रिया निम्न आरेख द्वारा स्पष्ट की जा सकती है –

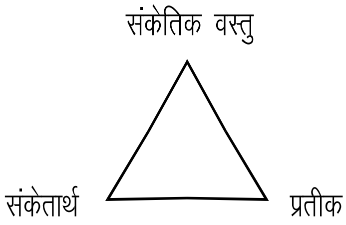

प्रतीक अपने संकेतार्थ के माध्यम से संकेतिक वस्तु का बोध कराता है। इसलिए प्रतीक वह वस्तु है जो किसी (व्याख्याता) के लिए किसी अन्य वस्तु के स्थान पर विशिष्ट संदर्भ में प्रयुक्त होती है। यही मत प्रसिद्ध प्रतीक शास्त्री 'वियर्स' का भी है। प्रतीक की अवधारणा उपर्युक्त त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों पर आधारित है। संकेतार्थ और प्रतीक के बीच सीधा संबंध है। संकेतार्थ के निर्माण में प्रयोगकर्त्ता के जातीय इतिहास, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति का भी योगदान रहता है। इसलिए एक ही संकेत को अभिव्यक्त करने वाला एक भाषा का प्रतीक दूसरी भाषा के प्रतीक से ध्वन्यात्मक भिन्नता रखता है। प्रतीक, कथ्य और अभिव्यक्ति की एक समन्वित इकाई है। पहले ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भाषा के कथ्य के अभिव्यक्ति की हर भाषा की अपनी प्रतीकात्मक व्यवस्था होती है और इन्हीं प्रतीकों का बदलाव अनुवाद कहलाता है। किन्तु यह बदलाव/अंतरण समानार्थी होता है। इसे हम निम्नलिखित आरेख द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं –

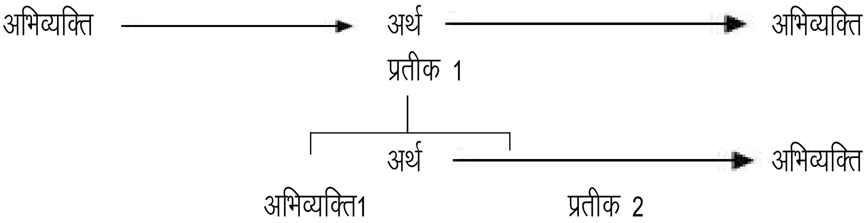

अभिव्यक्ति, प्रतीक स्रोत भाषा से संबद्ध है जबकि अभिव्यक्ति, प्रतीक लक्ष्य भाषा से संबद्ध है। अर्थ दोनों के केन्द्र में है। अर्थ की केन्द्रीयता और प्रधानता के कारण ही अनुवाद को अर्थ सम्प्रेषण की प्रक्रिया स्वीकार किया जाता है। पर यह अर्थ सहज रूप में प्राप्त नहीं होता। इसके लिए स्रोत भाषा की काया में प्रवेश करना होता है। उसकी संरचनात्मक व्यवस्था का विश्लेषण करना होता है और तभी सही अर्थ प्राप्त होता है। इसलिए अनुवाद को परका या प्रवेश की प्रक्रिया भी माना जाता है। इस परकाय प्रवेश की प्रक्रिया से भी अर्थ आसानी से प्राप्त नहीं होता, इसलिए स्रोत भाषा के सांस्कृतिक संदर्भों का भी ज्ञान आवश्यक हो जाता है। इस ज्ञान को अनुवाद द्वारा लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। फलस्वरूप कालान्तर में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में सांस्कृतिक एकीकरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और अनुवाद का यह कार्य स्रोत भाषा की व्याख्या

ही है। इसीलिए रोमन याकोबसन, जेइम्स, होल्म्स और रूसी लेखिका मेदनिकोवा अनुवाद को व्याख्या स्वीकार करते हैं। किन्तु व्याख्या के धरातल पर सह सृजनात्मक प्रक्रिया का रूप ग्रहण कर लेता है। इसीलिए एक ही पाठ के दो अनुवादकों के अनुवाद अपनी भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। के.सी. कैटफोर्ड अनुवाद को भाषा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्य सामग्री के प्रतिस्थापन का माध्यम मानते हैं। निश्चय ही इस मान्यता में भाषा के विभिन्न स्तर–स्वन, लेखमीय, व्याकरण एवं शब्दकोटियों आदि – का महत्व स्वयं प्रतिपादित हैं। हेलोडे से प्रभावित होने के कारण कैटफोर्थ अर्थ को स्वीकार कर भी प्रधानता नही ंदे पाते जबकि यजीन ए. नाइडा समतुल्यता की पहली शर्त अर्थ स्वीकार करते हैं और तब शैली को। वे शैली को कम महत्व नहीं देते। परन्तु रूपान्तरण/प्रतिस्थापन की प्रक्रिया में पहले अर्थ के निकटता की बात उठती है, बाद में शैली की बात। वस्तुतः दोनों भाषाओं के मूलभूत अन्तर के कारण प्रतिस्थापन शत–प्रतिशत नहीं हो सकता। इसीलिए प्रतिस्थापन करते समय लक्ष्य भाषा की प्रकृत्तियों का ख्याल रखना पड़ता है। फलस्वरूप अनुवाद व्याख्या, छाया, टीका, भावानुवाद आदि बन जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अनुवाद का निम्नलिखित स्वरूप सामने आता है :

1) अनुवाद कथ्य का प्रतीकांतरण है।
2) अनुवाद अर्थ संप्रेषण है।
3) अनुवाद सांस्कृतिक संदर्भ का एकीकरण है।
4) अनुवाद कथन की व्याख्या है।
5) अनुवाद भाषा के विभिन्न स्तरों पर पाठ सामग्री का प्रतिस्थापन है।
6) अनुवाद अर्थ एवं शैली की समतुल्यता है।
7) अनुवाद प्रक्रिया है, परिणाम है, संबंध है और एक साथ यह तीनों हैं।
8) अनुवाद अपनी प्रकृति में अनुप्रयोग है। प्रतीक विज्ञान या भाषा विज्ञान के संदर्भ में सिद्धांतों का अनुप्रयोग है और स्वयं अपने सिद्धांत का व्यावहारिक अनुप्रयोग भी है।

अनुवाद की प्रक्रिया के विकास के साथ–साथ अनुवाद की प्रकृति विवादास्पद हो उठी है। कोई इसे कला मानता है तो कोई कौशल (शिल्प), तो कोई विज्ञान और एक वर्ग ऐसा भी है जो इसे तीनों अर्थात् कला, कौशल और विज्ञान का मिश्रित रूप मानता है।

कला का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। एक तरफ उपयोगी कलाएं हैं। यथा – मेज–कुर्सी, बर्तन, मशीनों आदि की निर्मिति; जिसके लिए प्रशिक्षण अपेक्षित होता है। दूसरी ओर ऐसी कलाएं भी हैं जिनमें प्रशिक्षण–शिक्षण की अपेक्षा मौलिक, जन्मजात प्रतिभा की आवश्यकता होती है। साहित्य एक ऐसी ही कला है जिसके हेतु की चर्चा में भारतीय मनीषियों ने 'प्रतिभा' को विशेष स्थान दिया। 'व्युत्पत्ति' और 'अभ्यास' गौण रहे, या प्रतिभा के पूरक बने। अनुवाद का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। आज उसमें कार्यालयों, वैज्ञानिक, तकनीकी, विधिक, वाणिज्यिक, जन–संचार के साथ–साथ साहित्यिक रचनाओं का भी अनुवाद होता है। प्रथम पांच प्रकार के साहित्यानुवाद में अनुवादक को अपनी प्रतिभा के अधिक उपयोग का अवसर नहीं रहता, पर अंतिम दो अर्थात्

जन संचार और साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद में अनुवादक की 'प्रतिभा' ही प्रमुखतया सहायक बनती है। प्रतिभाविहीन व्यक्ति न तो साधारणीकरण की प्रक्रिया से गुजर पाएगा, न ही इसे रसात्मक बोध की अवस्था का साक्षात्कार होगा। फलस्वरूप साहित्यानुवाद में उसकी उर्वर कल्पना शक्ति का चमत्कार नदारद होगा जो ऐसे अनुवाद का प्राण होता है। इसलिए आज अनूदित पाठ निर्मित को पुनः सृजन कहा जाता है। निश्चय ही यहां अनुवाद शुद्ध रूप से कला है।

वस्तुतः अनुवाद एक ऐसी संश्लिष्ट प्रक्रिया है, जिसके एक ओर इसके दोहरे संप्रेष्ण व्यापार का संदर्भ मिलता है तो दूसरी ओर इसके क्रिया–व्यापार की दोहरी भूमिका दिखाई देती है। इसी प्रकार अनुवाद सामग्री के रूप में हमें एक ओर सर्जनात्मक व्यापार की अनुपम साहित्य रचना मिलती है तो दूसरी ओर तर्क चिंतन के कार्य–कारण संबंध पर आधारित वैज्ञानिक पाठ प्राप्त होता है। अतः अनुवाद की प्रकृति पर विचार करना आवश्यक है। अनुवाद को कला मानने के पक्ष में तो अनेक तर्क हैं। अनुवाद की परिभाषा भी इस पर जोर देती है।

रोनातो पोज्जोलो के अनुसार 'अनुवाद एक व्याख्यात्मक कला है।' लूथर अनुवाद को सभी की कला नहीं मानते – Interprating is not everybody's art.

अग्निस गेर्गली के अनुसार "Translation must find and reproduce the impulse of the original work"

रिचर्ड कांसागांदे के अनुसार – "The translator takes into account the effect, emotion and feelings of an original languageversion, the asthetic form used by the original author as any information in the message. Example is to the translation of literature".

साहित्यिक कृति के अनुवाद को एजरा पाउंड ने 'साहित्यक पुनःर्सजन' की संज्ञा दी है। और इसी के संदर्भ में आज अनुवाद को पुनःर्सजन कहा जाता है। कांसागांदे और एजरा पाउंड के मत यह सिद्ध करते हैं कि साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद में अनुवाद एक कला है।

विद्वानों का एक वर्ग अनुवाद को कौशल मानता है। इनकी मान्यता है कि अनुवाद अभ्यास पर आधारित ज्ञान की वह शाखा है जिसमें किसी भी द्विभाषिक को पर्याप्त प्रशिक्षण द्वारा अनुवादक बनाया जा सकता है। अनुवादक के लिए सर्जक साहित्यकार या तर्क–प्रवतर्क वैज्ञानिक होना जरूरी नहीं। वह एक उपयोगी कला (Functional art) है। इस प्रकार यह प्रायोगिक विज्ञान की श्रेणी में आ जाता है। यह सत्य है कि अनुवादक को अनूदित विषय के अनुरूप अलग–अलग कौशल का उपयोग करना पड़ता है। यथा – साहित्यिक अनुवाद में उसे एक कौशल का सहारा लेना पड़ता है, जबकि विधिक, प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, जनसंचार आदि विषयों के अनुवाद में भिन्न–भिन्न कौशल का सहारा लेना पड़ता है। पाठ के अनुसार अनूदित सामग्री में भेद भी दिखाई देता है। अनुवाद का आधार भाषा ज्ञान है। भाषा–ज्ञान अर्जन एक कौशल है, इस दृष्टि से भी अनुवाद वैज्ञानिकों की यह मान्यता सीधे–साधे ढंग से नकारी नहीं जा सकती कि अनुवाद एक कौशल है। वस्तुतः अनुवाद के कार्य–क्षेत्र की परिधि तो मूलपाठ के शिल्पगत अंतरण व

प्रतिस्थापना में है या मूलपाठ में व्यक्त कथ्य की लक्ष्य भाषा में पुनः अभिव्यक्ति में। दूसरे शब्दों में जहां सर्जक कलाकार और वैज्ञानिक किसी नए बिम्ब का निर्माण या प्रतिपत्ति की स्थापना करते हैं वहां अनुवादक दूसरी भाषा के दर्पण में इस प्रतिबिम्ब को प्रक्षेपित करता है। अतः अनुवाद कौशल है न कि कला या विज्ञान।
अनुवाद एक 'विज्ञान' है, इस मान्यता में भी प्रर्याप्त बल है। यदि यह विज्ञान न होता तो कम्प्यूटर के सहारे अनुवाद संभव न होता। विज्ञान होने पर अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का अंग बन जाता है। अनुवाद की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण भी किया जा सकता है। वस्तुतः अनुवाद को विज्ञान के रूप में देखने वाला विद्वत वर्ग इसे पहले संप्रेषण–व्यापार का एक व्यापक संदर्भ देता है और संप्रेषण–प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण उपश्रेणी मानता है। किन्तु किसी मूल पाठ के पुनः सृजन के लिए अनुवादक को अनुवाद प्रक्रिया के विभिन्न चरणों से गुजरना होता है। यह चरण होते हैं – वाचन, विश्लेषण, अंतरण और पुनर्गठन। वाचन भी एक कौशल है और विश्लेषण तो पूर्णतया वैज्ञानिक रीति का पक्षधर है। यहां इस धरातल पर अनुवादक को भाषा विज्ञान की विभिन्न तकनीकों का सहारा लेकर वैज्ञानिक पद्धति के सहारे ही मूलपाठ का विकोडीकरण करना होता है। अर्थात् शब्द–प्रति–शब्द का विश्लेषण करना होता है। शब्द के संरचनात्मक वैशिष्ट्य, प्रयोगगत् मनोभाषिक संदर्भ, अर्थगत् समाज ,सांस्कृतिक संदर्भ की खोज के बिना अनुवादक मूलपाठ का मूलसंदेश/मंतव्य ग्रहण ही नहीं कर पाए। और यह तभी संभव है जब नियत वैज्ञानिक तकनीक का वह सहारा ले। इस प्रकार अनुवाद कार्य यहां 'विज्ञान' की श्रेणी में आ जाता है। भाषा वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि पहले स्रोत भाषा के पाठ का विकोडीकरण होता है फिर लक्ष्यभाषा पाठ पुनर्गठित करने के लिए कोडीकरण किया जाता है। पूरी प्रक्रिया में अपनायी जाने वाली यह प्रणाली तुलनात्मक भाषा विज्ञान के अध्ययन में प्रयुक्त होने वाली प्रणाली के समान ही है, दूसरे धरातल पर स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा का वैज्ञानिक पद्धति से तुलनात्मक अध्ययन कर दोनों के बीच पाई जाने वाली समानताओं, असमानताओं की खोज की जाती है और फिर तीसरे धरातल पर प्राप्त अर्थ को कोडिकरण के माध्यम से पाठ के रूप में पुनर्गठित किया जाता है। डार्सेट तो अनुवाद को भाषा के प्रायोगिक (अनुप्रयुक्त) विज्ञान की एक शाखा के रूप में परिभाषित करते हैं।

अनुवाद को विज्ञान मानने में नाइडा की प्रमुख भूमिका है। नाइडा इन तीनों धरातलों को इस रूप में मानते हैं : 1. स्त्रोत भाषा के भावों का अनुवादक द्वारा ग्रहण (विश्लेषण–विकोडीकरण), 2. उसका मानसिक रूप से भाषांतर (तुलनात्मक) और 3. उसके बाद लक्ष्यभाषा में उसकी अभिव्यक्ति (पुनर्गठन–कोडीकरण)।

इसके बावजूद भी, अनुवाद प्रक्रिया की वैज्ञानिकता की परख अनूदित पाठ के आधार पर ही हो सकती है। जहां अनुवादक को अपने पास से कुछ जोड़ने की आवश्यकता नहीं वहां वह अधिक विज्ञान परक है। वैज्ञानिक या केवल सूचना प्रधान सामग्री का अनुवाद तो इस कसौटी पर खरा उतर सकता है। पर कई स्थल ऐसे भी होते हैं जहां अनुवादक को अपनी सर्जनात्मक शक्ति का सहारा लेकर कुछ जोड़ना और कुछ छोड़ना पड़ता है, यथा – साहित्यिक अनुवाद। यहां अनुवाद की वैज्ञानिकता संदिग्ध हो उठती है। अनुवाद मानवकृत और मशीनीकृत होता है। जहां तक मानवकृत है वहां वैज्ञानिक प्रक्रिया खरी नहीं उतरती। इसलिए अधिकांश भाषा वैज्ञानिक इसे विज्ञान से अधिक व्यापक मानते हैं किन्तु मशीनी अनुवाद संभव होने के कारण ही ओटिंगर इसे वैज्ञानिक प्रक्रिया मानते हैं। क्योंकि वैज्ञानिक तकनीकी की भांति ही अनुवाद में भी विकल्प

का नियंत्रण करना संभव है।

डार्सेट जैसे अनुवाद चिंतकों का एक समूह अनुवाद को न केवल प्रायोगिक मानता है वरन् इसे अपनी प्रकृति में चयनात्मक स्वीकार करता है। इस मत के अनुसार यह आवश्यक है कि अनुवादक एक साथ साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा, वैज्ञानिक की तर्कशक्ति, उपयोगी कला में पाई जाने वाली शिल्पगत दक्षता तथा भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि आदि सभी गुणो से संपकृत हो। क्योंकि अनुवाद एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में इसे कभी वैज्ञानिक के रूप में स्रोतभाषा पाठ के रूप में निहत अर्थ का पता लगाने हेतु विश्लेषणात्मक उपकरणों की सहायता लेनी पड़ती है, कभी छवि की भांति इस अर्थ की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हेतु उसे प्रभाव समानार्थी अभिव्यंजना का सृजन करना होता है और कभी शिल्पकार की भांति उसमें मूल पाठ की संवेदना को सुरक्षित रखने के लिए लक्ष्य भाषा में उसका प्रतिस्थापन करना पड़ता है।

श्रीपाद रघुनाथ जोशी के इस कथन से समझिए : "अनुवाद शिल्प भी है और कला भी। कला और शिल्प का अंतर इस तरह देखें। अगर आप भाषाएं जानते हैं और दोनों भाषाओं का आपने अध्ययन किया है तो किसी शब्द के लिए कौन–सा शब्द अच्छा होगा, यह आप जानते हैं तो वह हो गया शिल्प। और कला वह है कि मूल के जो भाव हैं, उन्हें हू–ब–हू अपनी भाषा में लाना इसके लिए कला की जरूरत है। अब अनूदित पुस्तक को आप पढ़ते हैं तो आपको ऐसा लगना चाहिए कि यह मेरी ही भाषा की पुस्तक है। जिस भाषा में अनुवाद किया गया है, उसी भाषा की वह लगे। मूल में जो लिखा वह सही–सही अनुवाद में आ जाए तो वह शिल्प है। मूल भाषा की भावनाएं उसकी परंपराएं – यदि इन सबको आप अनुवाद की भाषा में लाते हैं तो वह कला है। अनुवाद इस अर्थ में विज्ञान है कि उसके कुछ खास नियम होते हैं। उन नियमों के अनुसार आपको चलना पड़ता है।

अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि अनुवाद न केवल कला है, न विज्ञान और न केवल कौशल। यह इन तीनों का मिश्र रूप है और तीनों के समन्वय से ही अनुवाद का सही स्वरूप सामने आता है।

13.6 सारांश

विद्यार्थियो! उपर्युक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि अनुवाद से अभिप्राय कही गयी बात को पुनः कहने से है। यह एक भाषा से दूसरी भाषा में कही गयी बात दो भाषाओं स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के मध्य होती है। यह भी स्पष्ट है कि अनुवाद कार्य सरल न होकर जटिल कार्य है जिसकी आज के जीवन और स्थितियों के लिए आवश्यकता है।

13.7 कठिन शब्द

प्रौद्योगिक, पुनरावृत्ति, रूपान्तरण, प्रायोगिक, पुनर्गठन, प्रतीकात्मक, अनुप्रयुक्त

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'अनुवाद' शब्द के अर्थ पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

....

2. अनुवाद की परिभाषाओं पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3. अनुवाद के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अनुवाद विज्ञान और संप्रेषण, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2016
3. अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं प्रविधि, भोलानाथ तिवारी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

Course Code - 404 **Lesson No. 14**

Unit-III

अनुवाद के क्षेत्र – साहित्यिक और साहित्येतर अनुवाद

14.0	रूपरेखा
14.1	उद्देश्य
14.2	प्रस्तावना
14.3	अनुवाद के क्षेत्र
14.3.1	साहित्यिक अनुवाद
14.3.1.1	काव्यानुवाद
14.3.1.2	गद्यानुवाद
14.3.1.2.1	कथा साहित्य का अनुवाद
14.3.1.2.2	नाटकानुवाद
14.3.1.2.3	अन्य गद्य विधाओं का अनुवाद
14.3.2	साहित्येतर अनुवाद
14.3.2.1	साधारण बातचीत
14.3.2.2	धार्मिक साहित्य
14.3.2.3	सरकारी कार्यालय, वाणिज्यिक संस्थान, वैयक्तिक प्रतिष्ठानों में
14.3.2.4	सामाजिक विज्ञान, दर्शन विज्ञान
14.3.2.5	विधिक अनुवाद
14.3.2.6	सांस्कृतिक आदान–प्रदान
14.3.2.7	वैज्ञानिक तकनीकी और प्रौद्योगिकी साहित्य
14.3.2.8	जनसंचार माध्यम
14.3.2.9	अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में
14.3.2.10	विज्ञापन
14.4	सारांश
14.5	कठिन शब्द
14.6	अभ्यासार्थ प्रश्न

14.1 उद्देश्य

विद्यार्थियो! इस अध्याय के अध्ययनोपरांत आपु

- साााहित्यिक अनुवाद के अन्तर्गत विभिन्न विधाओं के अनुवाद को समझ सकेंगे।
- साहित्येतर अनुवाद के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- विविध क्षेत्रों में अनुवाद करते समय किन बातों का ध्यान रखने की आवश्यकता है, समझ सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा–विज्ञान की शाखा है। विज्ञान, तकनीकी और प्रौद्योगिकी क्षेत्र के बढ़ते प्रचार–प्रसार ने विज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक बना दिया है। आज अनुवाद एक संगठित व्यवसाय है। यद्यपि इसके पूर्व वह व्यवहार भी है। प्रायः एक साथ उठने बैठने वाले या एक ही क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति भाषा–भिन्नता से हर क्षण रूबरू होते हैं। वे स्पष्ट विचार विनियम नहीं कर पाते। दोनों के मंतव्य (कथ्य) को एक–दूसरे तक पहुंचाने में दुभाषिए की आवश्यकता पड़ती है। द्विभाषिकता की यह स्थिति व्यक्ति–विशेष में भी विद्यमान रहती है। व्यक्ति सोचता किसी भाषा में है, और बोलता किसी भाषा में। एक ही भाषा–भाषी व्यक्ति भी चिंतन का कार्य अपनी सामाजिक शैली या क्षेत्रीय बोली अथवा मातृभाषा में करता है। किन्तु अभिव्यक्ति के क्षणो में उसकी भाषा मानक स्वरूप प्राप्त कर लेती है। यही द्विभाषिक की स्थिति है।

14.3 अनुवाद के क्षेत्र

14.3.1 साहित्यिक अनुवाद

साहित्य और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है। वस्तुतः दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। समाज की प्रगति हेतु साहित्य का एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रचार–प्रसार आवश्यक है। इस प्रचार–प्रसार में अनुवाद की प्रणाली की आवश्यकता होती है। सत्य तो यह है कि अनुवाद विज्ञान की सही परीक्षा साहित्यिक अनुवाद में ही होती है। साहित्य के अनेक भेद–उपभेद हैं और उनके आधार पर अनुवाद का स्वरूप भी बदल जाता है। अतः उनके भेदों के आधार पर ही इनके अनुवाद में अपनाई जाने वाली पद्धति और उसमें आने वाली कठिनाईयों पर विचार करना उचित होगा।

14.3.1.1 काव्यानुवाद

काव्यानुवाद से तात्पर्य है – हर प्रकार की रचना का काव्यात्मक अनुवाद। काव्य में छंद, मात्रा, लय आदि को महत्व दिया जाता है। यद्यपि यह माना जाता है कि काव्यानुवाद असंभव है, फिर भी संसार में अनेक श्रेष्ठ काव्यानुवाद हुए हैं और होते रहेंगे। काव्यानुवाद पूर्णतः सृजन की प्रक्रिया है। प्रसिद्ध डच अनुवाद

वैज्ञानिक होल्म्स के अनूसार अनुवाद मूलतः एक व्याख्या है और किसी कविता के वास्तविक काव्यानुवाद से लेकर अन्य भाषा में लिखित उसी पर आधारित कविता या आलोचना तक हो सकती है। काव्यनुवाद के प्रमुख भेद हैं – (क) पद्यानुवाद, (ख) लयात्मक गद्यानुवाद एवं (ग) गद्यानुवाद। इसके गौण भेद है – (क) स्वतंत्र पद्यानुवाद, (ख) अनुकरण (ग) कविता से प्रभावित कविता, (घ) प्रतिध्वनि अनुवाद (ङ) व्याख्या, (च) टीका, (छ) आलोचना और (ज) आस्वादन। इनमें प्रथम तीन अनुसृजन के पक्ष में हैं, शेष चार गद्य में व्याख्या के रूप हैं। वस्तुतः कविता एक संश्लिष्ट कला रूप है, इसीलिए उसे विभिन्न प्रकारों में अनूदित किया जा सकता है। कविता का विभिन्न कवियों द्वारा किया गया अनुवाद स्वतंत्र रचना का बोध कराता है।

कविता कवि की मनोभूति का वह प्रतिरूप है जिसे कवि तन्मय हो जीवंत करता है। इसलिए कविता के अनुवाद के लिए कवि हृदय की आवश्यकता होती है। एक कवि हृदय अनुवादक ही कवि की मनोभूमि में पहुंचकर, उसे अनुभव कर उससे साक्षात् करके ही कविता का अनुवाद कर सकता है। इसलिए कविता का अनुवाद मात्र शब्दानुवाद नहीं। वह तो भावों का अनुवाद है, संवेदना का अनुवाद है, उस संवेदना का अनुवाद जिसे क्षण विशेष में कवि ने अनुभव किया। इसके साथ ही कविता के अनुवाद में मूल कविता के बिंब, काव्य सौंदर्य एवं शैली की विशेषताओं को भी पुनर्सृजित करना होता है। हरिवंश राय बच्चन ने उमर खैय्याम की रूबाइयतों के अनुवादों की भूमिका में इस तथ्य को एक अनुवादक के रूप में स्वीकार किया है। "मैं शब्दानुवाद के फेर में नहीं पड़ा। भावों को ही मैंने प्रधानता दी।"

एक ही कविता के अनेक विद्वान कवियों ने अनुवाद किए। फलस्वरूप एक–के–बाद दूसरे अनुवाद में दक्षता बढ़ती जाती है। सार्वकालिक श्रेष्ठ रचनाएं अलग–अलग कालों में अलग–अलग अर्थ की बोध बन जाती हैं। काव्यानुवाद का पुराना दृष्टिकोण प्रमुख रूप से नवीन सृजन पर बल देता था जबकि आधुनिक दृष्टिकोण मूल का सौंदर्य घटक वर्णित जीवन यथार्थ एवं कलात्मकता को प्रमाणिक रूप से अनुवाद में उतारने पर बल देता है। काव्यानुवाद के सामने प्रमुख समस्या होती है मूल के समान छंदों में ही अनुवाद करने की। वारान्निकोव द्वारा रामचरितमानस का रूसी अनुवाद इस प्रकार का है। कतिपय अनुवादक छंदोबद्ध अनुवाद की अपेक्षा गद्यानुवाद को पसंद करते हैं। ई.वी.रियू जैसे अनुवादक लयात्मक गद्य के पक्षधर हैं। टैगोर ने गीतांजलि के अनुवाद में मुक्त छंदों का प्रयोग कर भारतीय भाषाओं के काव्यों के अनुवाद हेतु एक आदर्श उपस्थित किया। जो भी हो किन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मूलभाषा पाठ की सूक्ष्म लय तथा संगीत को लक्ष्य भाषा पाठ में रूपांतरित करना काव्यानुवाद की अनिवार्यता है। कुछ विशिष्ट काव्यरूपों में तो मूल काव्य रूपों की पंक्तियों, अक्षरों एवं शब्दावलियों तक पर ध्यान देना आवश्यक होता है। अज्ञेय एवं प्रभाकर माचवे द्वारा किये गये 'हायकू'' के अनुवाद इसके उदाहरण हैं। मूल भाषा के काव्य से अनुवाद करने पर काव्य रूप, बिंब, छंद तथा लय पर ध्यान रखना आसान होता है किन्तु अनूदित काव्य पाठ से अनुवाद करने पर मूल काव्य पाठ के रूपों, बिंबों, छंदों एवं लयों का आभास नहीं हो पाता। रमेश कौशिक की एक सौ एक सोवियत कविताएं सोवियत भाषाओं,'रूसी' ई 'अंग्रेजी' ई 'हिन्दी' से होकर गुजरती हैं जिनके बीच

मूल की लय समाप्त हो जाती है। इसलिए प्रामाणिकता के लिए मूल काव्यपाठ को ही अनुवाद पर आधार बनाया जाना चाहिए। सुमित्रानन्द पंत हर छंद को एक विशिष्ट भावना का संवाहक मानते हैं और यही वह अनिवार्य बिंदु है जहां कविता अनुवाद में अनुसृजन या मौलिक सृजन का–सा आभास देने वाली कवि प्रतिभा की मांग करती है। गोस्वामी तुलसीदास की पक्तियां – "नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्। रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि" – उनके रामचरित मानस के मौलिक सृजन का उदघोष करती हैं जबकि अधिकांश रीतिकालीन कविताओं की कविताएं मात्र भाषिक रूपांतरण भर रह जाती हैं।

काव्यानुवाद में मूल की शैली की सुरक्षा की अनिवार्यता होती है। वस्तुतः शैली के निर्माण में काव्य परंपरा, मिथक, अलंकारिक प्रयोग का प्रमुख हाथ रहता है। अतः काव्य परंपरा, मिथक सुरक्षा शैली की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। माचवे भी स्वीकार करते हैं कि अनुवादक की कोशिश मूल शूल के अधिकतम निकट जाने की होनी चाहिए। उनके अनुसार मूल की मुक्त शैली को, यहां तक कि पूर्ण विराम, अल्प विराम आदि चिन्हों को भी जहां तक हो सके अनुवाद में ज्यो–का–त्यों रखना चाहिए। शब्द के अर्थ, ध्वनि एवं नाद सौन्दर्य के साथ–साथ युगीन मुहावरों को भी अनुवादक को पकड़ना चाहिए।

वस्तुतः काव्यानुवाद की समस्या बहुस्तरीय और बहुआयामी है। एक तरफ इसका संबंध दो भाषाओं की टकराहट से, अनुवाद की अपनी समझ और अर्थ विन्यास से है तो दूसरी तरफ मूल पाठ की वस्तु के काव्य वैशिष्टय और उसके सृजनात्मक अंतरण से यह संबद्ध है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान लोटमैन के अनुसार काव्यानुवाद में अनुवादक की दृष्टि पाठ के निम्नलिखित बिंदुओं पर केन्द्रित होती है –

(1) विषयवस्तु – स्रोतभाषा की विषयवस्तु को लक्ष्यभाषा में संप्रेषित करना।

(2) संरचना – स्रोत पाठ की संरचना, संघटना को विश्लेषित कर उसी रूप में लक्ष्यभाषा पाठ प्रस्तुत करना।

(3) भाषा–ध्वनि, स्तर, वाक्य विन्यास, छंद योजना, शब्द चमत्कार, अलंकार व्यवस्था आदि स्रोत भाषा के पाठ के वे भाषिक तत्व हैं जिन्हें काव्यानुवाद को लक्ष्यभाषा में अंतरित करना होता है। और

(4) साहित्येतर संदेश – काव्य के माध्यम से रचनाकार धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक, सांस्कृतिक तत्वों को भी संप्रेषित करता है। काव्यानुवाद का दायित्व है कि लक्ष्य भाषा पाठ में इनका अंतरण करे।

14.3.1.2 गद्यानुवाद

अनुवादक विचारक 'वेलाक' निम्नलिखित सिद्धान्तों का अनुपालन गद्यानुवाद के लिए अनिवार्य मानते हैं :

(1) पाठ को अंश–अंशी रूप में ग्रहण करना–स्रोत भाषा के पाठ को टुकड़े–टुकड़े में विभक्त कर उसका अनुवाद किया जाना चाहिए। समग्र पाठ से अभिव्यक्त विचार को ही प्रधानता देनी चाहिए।

(2) मुहावरों एवं लोकोक्तियों का पूर्ण विन्यास – अनुवाद में मूल पाठ के शब्दों, वाक्यों, ध्वनियों आदि का लक्ष्यभाषा में अंतरण करना आसान है, किन्तु, मुहावरों का अंतरण कठिन है। वस्तुतः मुहावरों और लोकोक्तियों के अंतरण

का आधार विचार और प्रकार्य होता है। ऐसी स्थिति में स्रोतभाषा के मुहावरों को अनुवाद प्रकार्य एवं विचार की दृष्टि से लक्ष्यभाषा के समतुल्य मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रतिस्थापन अनुवाद है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित तीन मुहावरों एवं उनके अनुवाद द्रष्टव्य हैं (क) उंगली उठाना – (1) to raise finger (2) to point finger of scorn (3) to point in entrap और (4) to remain the target of finger point scorn and abuse (ख) (1) to live in vain (2) to learn nothing (3) to waste time और (4) जव much hay (ग) दगा देना (1) to leave (2) to deport (3) to give a slip और (4) to let one down to leave.

इन मुहावरों के अनुवाद (1) और (2) अनुवाद सामान्य अर्थ के वाचक हैं। प्रकार्य एवं विचार की दृष्टि से, लक्ष्यभाषा के मुहावरों के प्रतिस्थापना के आधार पर अनुवाद (3) श्रेष्ठ और सार्थक अनुवाद है। और अनुवाद (4) शब्दों और वाक्यों के अंतरण के रूप में द्रष्टव्य है।

वाग्मिता परक (Rhetoric) भाषा अभिव्यक्तियों का अनुवाद भी लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुरूप होना चाहिए। चूंकि हर अनुवाद में लक्ष्यभाषा की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति को व्यक्त करने की क्षमता समान रूप से नहीं होती, इसलिए अनुवाद पाठ की प्राभावान्विति में भी विभिन्न अनुक्रम देखने को मिल सकते हैं। सत्य तो यह है कि "वाग्मिता सापेक्ष अभिव्यक्ति का अनुवाद लक्ष्यभाषा में समानांतर अभिव्यक्तियों की खोज है और इसे खोज में अनुवादक को अपनी सर्जनात्मक शक्ति का भी परिचय देना पड़ता है।

(3) पाठ का भाव ग्रहण कर, भाव के आधार पर अनुवाद करना – पाठ एक प्रोक्ति है और वाक्य उसकी तात्पर्ययुक्त और सशक्त इकाई है। पाठ के मूल अभिप्रेत को ग्रहण कर गद्य का वाक्यात्मक अनुवाद सार्थक होताा है। मूल अभिप्रेत के साथ–साथ अभिविन्यास को भी बनाए रखना अनुवादक का कर्तव्य होता है। हां, मूल अभिप्रेत और अभिविन्यास की संरक्षा में अनुवादक भाषिक प्रयोग में छूट ले सकता है।

(4) समतुल्य भाषिक अभिव्यक्तियों के प्रति सतर्कता–स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा में समानार्थी शब्द तो मिल जाते हैं, पर कभी–कभी ऊपर से समान लगने वाले भाषिक प्रतीकों के प्रकार्य और प्रयोजन समान न होने के कारण समतुल्य नहीं होते। जैसे एक संस्कृति में एक शब्द एक लक्षण का प्रतीक हो किन्तु दूसरी संस्कृति वहीं किसी भिन्न लक्षण का प्रतीक हो। अनुवाद के समय भाषा और संस्कृति की इस टकराहट के प्रति अनुवादक को सावधान रहनाा होता है। यथा – औरत (मेरी औरत जिन्दा है) का अनुवाद woman सार्थक नहीं। यहां wife सही अनुवाद होगा।

(5) **अनूदित पाठ में सर्जनात्मक प्रयोग** – वेलाक यह मानते हैं कि अनुवादक को मूल पाठ की संवेदना को लक्ष्यभाषा में अंतरित करने के लिए भाषा प्रयोग में साहसिक ढंग से सर्जनात्मक प्रयोग करना चाहिए।

(6) **अलंकरण सहित अभिव्यक्ति** – वेलाक के अनुसार अनुवादक को अनुवाद में अपनी प्रतिभा का उपयोग करते हुए शोभायुक्त अलंकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

वेलाक ने उपर्युक्त सिद्धांत कथा–साहित्य के अनुवाद के संदर्भ में प्रतिपादित किए। पर आज ये सिद्धांत समस्त गद्यानुवाद या यों कहें कि समस्त साहित्यिक अनुवाद के लिए प्रासंगिक हैं।

गद्यनुवाद अपनी विविधता, भिन्नता के लिए विख्यात है। गद्य की हर अलग विधि अलग अनुवाद सिद्धांत पद्धति और प्रक्रिया को जन्म देती है। इस दृष्टि से राजमणि शर्मा ने प्रमुख पद्य विधाओं और उनकी समस्याओं को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

14.3.1.2.1 कथा साहित्य का अनुवाद

कथा–साहित्य (उपन्यास और कहानी) आज की अत्यंत लोकप्रिय विधा है। संसार की अनेक भाषाओं के प्रसिद्ध कथाकारों की रचनायें अन्य भाषाओं में अनूदित होकर अत्यंत रुचि के साथ पढ़ी जाती हैं। बंकिमचन्द्र, शरद, विमल मित्र, प्रेमचन्द, प्रसाद, टालस्टाय, तुर्गनेव, वास्तोवस्की, जोला, बाल्जाक, टैगोर आदि कथाकारों का नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। कथा साहित्य की लोकप्रियता ने एक तरफ भाषा सीमा तोड़ी और दूसरी तरफ सीमा उल्लंघन द्वारा उसने विश्व साहित्य की परिकल्पना को साकार बनाया। पंचतंत्र का अनुवाद करते–करते पाश्चात्य साहित्यकारों ने मौलिक कथा–साहित्य का सृजन किया और पश्चिमी उपन्यासों के अनुवाद द्वारा भारत की अपनी उपन्यास कला ने जन्म लिया।

कथा–साहित्य में शिल्प और कथातत्व की विशिष्टता होती है और अनुवादक का दायित्व होता है कि वह अनूदित किये जाने वाले उपन्यास और कहानी के कथा–तत्व, शैली एवं शिल्प के सूक्ष्म–से–सूक्ष्म तत्वों का समग्र अनुवाद प्रस्तुत करे। कभी–कभी ये अनुवाद मूल लेखक के व्यक्तित्व और उसकी अन्य कृतियों से अनुवादक की निकटता की अपेक्षा रखते हैं। लेखक के सामाजिक दर्शनिक एवं सांस्कृतिक चिंतन की पृष्टभूमि का ज्ञान भी अनुवादक के लिए आवश्यक होता है। इसलिए सामाजिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक चिंतन की पृष्ठभूमि का ज्ञान भी अनुवादक के लिए आवश्यक होता है। इसलिए सामाजिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक उपन्यासों का अनुवाद कठिन होता है। मिथकीय परिभाषाओं एवं परिकल्पनाओं से संयुक्त शब्दों का भी अर्थ संकेत करना अनुवादक का दायित्व है। इसके अतिरिक्त कथासाहित्य के अनुवाद में देशकाल और संस्कृति का विशेष महत्व होता है। मूल कृति में आए नामों रीति–रिवाजों तथा अभिव्यक्तियों, सांस्कृतिक आस्थाओं का यथावत् अनुवाद होना चाहिए न कि उससे मिलती–जुलती स्थितियों का वर्णन करना चाहिए।

कथा–साहित्य जन–जीवन का चलता हुआ चित्र है। जन जीवन से जुड़े हुए रीति–रिवाज, जीवन मूल्य, आस्थाएं, त्यौहार, पर्व, परिवेश, वनस्पतियां, सांस्कृति स्थान एवं वस्तुओं का इसमें विशिष्ट महत्व होता है। ऐसे स्थानों पर शब्दानुवाद या यांत्रिक ढंग के अनुवाद की अपेक्षा ऐसे अनुवाद की आवश्यकता होती है जो स्रोत भाषा की सांस्कृति एवं परिवेश को लक्ष्यपाठ में पुनः सृजन द्वारा प्रत्यक्ष कर सके। वस्तुतः सांस्कृतिक विशेषताओं का अंतरण ही कथा–साहित्य के अनुवाद की प्रमुख अपेक्षा और कसौटी है। और भाषा की सरसता और सहजता की अपेक्षा आंचलिक शब्दावली के लिए लक्ष्य भाषा में आंचलिक शब्दों की तलाश अनुवादक के भाषिक क्षमता के लिए दूसरी चुनौती है। कथा–साहित्य की भाषा जन–भाषा के करीब होती है। जिनमें

अर्थ क्षमता और जीवंत मुहावरे, व्यंग्य प्रयोग उसकी शक्ति होते हैं। इसीलिए कथा साहित्य के अनूदित पाठ की भाषा अत्यंत सहज और सरल तथा मूलपाठ के मूल अर्थ को वहन करने वाली होनी चाहिए। सत्य तो यह है कि कथा–साहित्य का अनुवाद एक नया सृजन बन जाता है। इसलिए अनुवाद को पुनः सृजन कहा गया है।

14.3.1.2.2 नाटकानुवाद

रूपांतर (एडप्टेशन), सारानुवाद, भावानुवाद, पराश्रयी रचनानुवाद एवं अनुकरण आदि नाटकानुवाद के भेद माने जाते हैं। किन्तु नाटकों के मुख्यतः दो ही रूप हैं – पाठ करना या पढ़ना और मंच पर प्रस्तुति। इस दृष्टि से इसके दो भेद बनते हैं – (क) पाठ्यानुवाद एवं (ख) मंचीय अनुवाद। किसी नाटक के पाठ का शब्दानुसार या वाक्यानुसारी अनुवाद पाठ्यानुवाद है और अभिनय, रस एवं प्रभाव को दृष्टि में रखकर अनुसृजन किया गया नाटक मंचीय नाटकानुवाद है। निश्चय ही इस तरह के अनुवादों के लिए नाटय लेखन क्षमता की अनिवार्यता आवश्यक है। रंगमंच के लिए मंचीय अनुवाद में मंच, दर्शक और सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल भी परिवर्तन अपेक्षित होता है। सांस्कृतिक परिवेश का अंतरण तो नाटक की बुनियादी समस्या है। अन्यथा एक भाषा में सफल नाटक दूसरी भाषा की संस्कृति से तालमेल के अभाव में असफल हो जाएगा। संश्लिष्ट रूप में व्यंजित अर्थ, अर्थ के आयाम, हास्य–व्यंग्य, शब्द, मुहावरे–कहावतें आदि सांस्कृतिक परिवेश से अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं। अतः उसकी अपेक्षा संभव नहीं इस संदर्भ में नाट्यानुवाद की दो प्रवृतियां उभरती हैं : (1) मूल भाषा के परिवेश को अनुवाद में लक्ष्य भाषा के परिवेश से स्थानांतरण करना और (2) लक्ष्य भाषा की सहजता को ध्यान में रखकर सांस्कृतिक–परिवेश के संप्रेषण में मूल के सांस्कृतिक तत्वों की रक्षा का यथासंभव प्रयास। अधिसंख्या हिन्दी और बंगला नाट्यानुवाद पहले प्रकार के उदाहरण हैं जिसमें पात्रों, स्थानों तक के नामों को कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन द्वारा बदलकर सहजता लाई गई है। अंग्रेजी –हिन्दी के अनुवाद भी उद्धरणीय हैं। जैसे भारतेन्दु द्वारा शेक्सपीयर के 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' के रूप में। इसमें वेनिस को वंशपुर, एण्टोनियों को अनंत, पोर्शिया को पुरश्री, ईसाई को हिन्दू आदि बना दिया गया। जी.पी. श्रीवास्तव ने मोलियर के फ्रेंच नाटकों के अनुवाद में हास्य–व्यंग्य की अभिव्यक्ति समान भारतीय स्थितियों में की है। 'नाक में दम', 'मियां की जुती मियां के सर पर' आदि अनुवादों में फ्रेंच वाातवरण न के बराबर है। निश्चय ही ये अनुवादक पुरानी परिपाटी के और पारसी रंगमंच से प्रभावित नाटककार हैं। समकालीन भारतीय नाट्यानुवाद में लक्ष्य भाषा की सहजता को ध्यान में रखकर सांस्कशतिक परिवेश के संप्रेषण में मूल के सांस्कृतिक तत्वों की रक्षा ही होती है। ये अनुवाद दूसरी प्रवृत्ति के द्योतक हैं। जो मध्यम मार्ग को परिचायक है। पाठ की नाटकीय अन्विति एवं मूल सांस्कृतिक तत्वों के बीच इसमें संतुलन का प्रयास परिलक्षित होता है। ये नाट्यानुवाद पुनः सृजन की प्रक्रिया के परिणाम हैं।

नाट्यानुवाद की सफलता उसके संवादों के प्रभाव पूर्ण अनुवाद पर निर्भर है। यह उसके भाषा सर्जन पक्ष से संबद्ध है। नाट्य भाषा में सरलता एवं तीव्र संवेदन क्षमता की सर्जना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। साथ

ही पात्रानुकूल भाषा–शैली के परिवर्तन को भी अनुवादक को ध्यान में रखना पड़ता है। नाटक की भाषा शिष्ट और अनौपचारिक जनभाषा का सम्मिश्रण होती है। अनुवाद की भाषा तभी जीवंत बनेगी जब मूल के इस मिश्रण को पहचानकर लक्ष्यभाषा की शैलियों एवं जीवंत मुहावरों का यथावसर प्रयोग हो। शब्द और वाक्य इस भाषा की आत्मा हैं, इन्हीं पर नाटक की प्रभावान्विति निर्भर होती है। अनुवादक को शब्द–चयन में अलंकारों की अपेक्षा अर्थ की संप्रेषणीयता, अर्थालंकार, बिंब एवं प्रतीकों के प्रयोग में सतर्क रहना आवश्यक है और वाक्य रचना को प्रवाहमान बनाए रखना अनुवादक का दायित्व है। नाट्यगीतों के अनुवाद में भी छंदों का यथासंभव सुरक्षित रखने की अनिवार्यता होती है।

नाट्य परंपराएं नाट्यानुवाद के प्रमुख बाधक तत्व हैं। यथा – प्राचीन भारतीय नाटकों का हिन्दी में अनुवाद। इनमें रंग निर्देश, नाटकीय, औपचारिकताएं, लोक रंगमंच, दृश्य, अंक आदि दृश्य से सम्बद्ध समस्याएं उत्पन्न होती हैं। पाश्चात्य पारंपरिक नाटकों के समकालीन परिवेश में मंचीय अनुवाद या प्रस्तुति अथवा भारतीय संदर्भ में उनकी प्रस्तुति के प्रयास तभी संभव हैं जब उनमें भारतीय परंपराओं, परिवेश का अंकन हो।

रस की व्यंजना नाटक का अनिवार्य घटक है। नाटकानुवाद की कला की सफलता भी इन्हीं तत्वों पर आधारित है। निश्चय ही रस की अभिव्यक्ति पुनः सृजन में ही संभव है राजा लक्ष्मण सिंह का शकुंतला, भारतेन्दु बाबू का कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस, रत्नावली आदि तथा रूपनारायण पाण्डेय एवं प्रतिभा अग्रवाल के बंगला, तेंदुलकर के मराठी से, प्रेमचन्द का गार्ल्सवर्दी, लक्ष्मीनारायण मिश्र का इब्सन, राजेन्द्र यादव द्वारा चेखब आदि का नाट्यानुवाद हिन्दी नाट्य साहित्य के अभिन्न अंग हैं।

14.3.1.2.3 अन्य गद्य विधाओं का अनुवाद

कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक की भांति अद्यतन विकसित गद्य विधाओं – आत्मकथा, जीवनी, निबंध, यात्रा साहित्य, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, डायरी, संस्मरण और आलोचना आदि के अनुवाद की अनंत संभावना है। महात्मा गांधी के कारण आत्मकथा और डायरी का अनुवाद शुरू हुआ। उनकी डायरी और आत्मकथा का पहले गुजराती से अंग्रेजी तथा फिर अंग्रेजी से अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया। बेकन के निबंधों, रोमा द्वारा लिखित जीवनी, रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' नामक रेखचित्र आदि का अनुवाद अत्यंत लोकप्रिय बन गया है। उपर्युक्त गद्य विधाओं में विचार एवं अनुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति अत्यंत लोकप्रिय बन गयी है। उपर्युक्त गद्य विधाओं में विचार एवं अनुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति होती है, इन विधाओं के अनुवाद में इसकी प्रामाणिकता को सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। ये गद्य विधायें शैली प्रधान होती हैं। कुछ काव्यात्मक भाषा भी देखने को मिलती है। वस्तुतः वैयक्तिकता की प्रधानता के कारण ही ये विधायें शैली प्रधान बन जाती हैं और रचनात्मकता की यह वैयक्तिकता, चाहे वह भाषा की हो, चाहे भाव की अनुवाद में सुरक्षित रहती है। वस्तुतः सृजन साहित्य की विधा होने के नाते इन विधाओं के अनुवाद में अनुवाद की अपेक्षा पुनः सृजन अनुवादक का लक्ष्य होता है, और तभी ये पूर्ववत् सौन्दर्य, रोचकता सुरक्षित रख पाते हैं।

इन साहित्यिक विधाओं के अनुवाद में अनुवाद की रचना धर्मिता और रचना प्रक्रिया की परख होती है। वस्तुतः अनुवादक को रचनाकार के समक्ष खड़ा होना पड़ता है और उसे उन समस्त अनुभूतियो, संवेदनाओं, अभिव्यक्तियों के बीच से गुजरना चाहिए जिससे मूल रचनाकार गुजरता है तभी इन साहित्यिक विधाओं का सही अनुवाद संभव है।

14.3.2 साहित्येतर अनुवाद

14.3.2.1 साधारण बातचीत

बातचीत को अनुवाद विज्ञान का पहला क्षेत्र घोषित किया जाता है। ठीक यही स्थिति लेखन (समाचार आदि) की भी होती है। बातचीत (मौखिक) और लेखन, भाषा के ही दो स्वरूप हैं। जरूरी नहीं कि दोनों में भेद हो। यदि भेद होता भी है, तो अर्थ भेद नहीं होगा।

हर धर्म की भाषा अलग होती है। यथा हिन्दू धर्म की भाषा संस्कृत मानी जाती है और ईसाई धर्म की भाषा अंग्रेजी। धर्म–विशेष–क्षेत्र की जनता को हर काल में अपनी धार्मिक भाषा की आवश्यकता महसूस होती है। किन्तु धर्म की मूल भाषा को समझने वाले कम ही लोग होते हैं। इन्हें युगीन भाषा में रूपान्तरित कर जनता को उपलब्ध कराया जाता है। अतः अनुवाद का दूसरा क्षेत्र है – धार्मिक साहित्य।

सरकारी कार्यालय, वाणिज्यिक संस्थानों, वैयक्तिक प्रतिष्ठानों तथा विभिन्न अकार की दुकानों में भाषा का तीसरा रूप होता है। यद्यपि कार्यालयी भाषा, अनुवाद का क्षेत्र, वाणिज्यिक, वैयक्तिक संस्थानों, प्रतिष्ठानों की भाषा और दुकानों की भाषा में भी पर्याप्त भिन्नता होती है। पर इन्हें अलग–अलग विश्लेषित न कर एक साथ ही रखकर विवेचन की अपेक्षा होती है उनकी भाषा प्रायः एक घिसे–पिटे ढर्रे पर चलती है। उसे सर्जना या मौलिकता का अवकाश कम होता है। किन्तु सामान्य जनता के बीच प्रयुक्त भाषा जहां जनता से सीधे जुड़ती है, वहीं कार्यालयों में व्यवहार में एक अलग भाषा की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप यहां भी अनुवाद की आवश्यकता महसूस की जाती है। तात्पर्य यह कि कार्यालय वाणिज्यिक संस्थान, वैयक्तिक प्रतिष्ठान, दुकानें अनुवाद का तीसरा क्षेत्र हैं।

आज अनुवाद विज्ञान का चौथा क्षेत्र सामाजिक विज्ञान, दर्शन विज्ञान को माना जाता है। भाषा अपने अर्थ के धरातल पर समाज और दर्शन सापेक्ष होता है। मनुष्य का मन अविवेच्य है, किन्तु मन को अभिव्यक्त तो भाषा ही करती है, भले ही वह पूर्ण न हो। और भाषा को भी अर्थ तो मन ही देता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अन्य क्षेत्रों या अन्य देशों में हो रहे सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक विकास की रेखाएं भाषा में प्रायः उपलब्ध रहती हैं। आज हर भाषा–भाषी दूसरे समाज से संपर्क कर उसके सामाजिक गुणों को आत्मसात करने के लिए आतुर है। इसीलिए अतीत से लेकर अद्यतन तक विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से तालमेल बैठाने तथा उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए तदुनुरूप अपने में परिवर्तन–परिवर्द्धन हेतु विभिन्न समाजों के सामाजिक परिवर्तनों, धर्म, दर्शन आदि का ज्ञान अपेक्षित होता है। यहां भी साथ देता है – अनुवाद।

आज परस्पर विवाद मनुष्य की नियति है। उसके समाधान के लिए उसे न्यायालयों का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। यहां आवश्यकता पड़ती है – विधिक ज्ञान की। भारत के ही संदर्भ में देखें तो भारत का समूचा संविधान, उसके नियम , उपनियम धारा–उपधारा सभी अंग्रेजी में प्रस्तुत हैं। यद्यपि इनके हिन्दी अनुवाद भी हुए हैं। किन्तु उच्च एवं उच्चतम न्यायालयों की अंग्रेजी परस्ती के कारण अंग्रेजी का ही बोलबाला है। फलस्वरूप सामान्य जनता को भी न्याय के लिए और अपने दायित्व तथा अधिकारों के ज्ञान हेतु अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की अपेक्षा होती है। निश्चय ही यह सहज संभव नहीं। यहां साथ देता है – अनुवाद। वस्तुतः अनुवाद भाषा का अनुप्रयुक्त पक्ष है इसलिए जहां उसका प्रयोग होगा वहां–वहां उसके पक्ष का प्रसार होगा। विधिक अनुवाद, अनुवाद का पांचवां क्षेत्र है ।

भारत एक बहुभाषी देश है। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने इसे महामानव का समुद्र कहा है। विभिन्न प्रकार के मनुष्यों और विभिन्न भाषा के मनुष्यों, विभिन्न जाति, धर्म संप्रदाय के मनुष्यों का संगम है – यह देश। आधुनिक सभ्यता के बढ़ते चरण में हमारी परस्पर दूरी कम कर दी है। फलस्वरूप एक समुदाय का मनुष्य दूसरे समुदाय से, एक प्रांत का मनुष्य दूसरे प्रांत से, एक प्रदेश के लोग दूसरे प्रदेश के लोगों से सांस्कृतिक आदान–प्रदान के लिए इच्छुक रहते हैं। यह आदान–प्रदान भी विभिन्न भाषाओं के साहित्य के अनुवाद के सहारे ही संभव है। इस प्रकार सांस्कृतिक आदान–प्रदान अनुवाद का छठा क्षेत्र है।

विज्ञान तकनीकी और औद्योगिक में संसार ने अभूतपूर्व प्रगति की है। आज हर देश का व्यक्ति दूसरे देश के विज्ञान, तकनीकी और प्रौद्योगिकी विकास से परिचित होना चाहता है। यह परिचय अनुवाद के सहारे ही संभव है। इसलिए अनुवाद का सातवां क्षेत्र है – वैज्ञानिक तकनीकी और प्रौद्योगिकी साहित्य।

जनसंचार माध्यमों को आज लोकतंत्र की तीसरी आंख माना जाता है। विज्ञान और तकनीक के बढ़ते प्रभाव से किसी देश के कोने में बैठे हुए व्यक्ति को किसी भी देश में घट रही घटना की जानकारी उपलब्ध हो जाती है बशर्ते वह अनुवाद कला में पारंगत हो। भारत देश को ही देखें। उसके हर क्षेत्र, हर कोने, चाय की दुकानों से लेकर विभिन्न स्थलों पर समाचार पत्रों के इर्द–गिर्द हर वर्ग की जनता दिखाई देती है। साथ ही दूरदर्शन पर आ रहे समाचारों को या विभिन्न वृत्तचित्रों को देखने के लिए भी सामूहिक रूप में जन–समूह एकत्रित होता है। समाचार–पत्र देश की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध है। ठीक यही स्थिति दूरदर्शन के समाचारों तथा वृत्तचित्रों की भी है। यदि इसकी पृष्ठभूमि में झांके तो विभिन्न भाषाओं की देश–विदेश की सूचना और सामग्री प्रस्तुत करने में अनुवाद ही सहायक होता है। आज यही कारण है कि अनुवाद का क्षेत्र बढ़ ही नहीं रहा है, अपितु जीवन का एक अनिवार्य माध्यम हो गया है। अस्तु जनसंचार माध्यमों से अनुवाद प्रयोग अनुवाद का आठवां क्षेत्र है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्थापना में भी अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक देश के नेता, विद्वान, वैज्ञानिक दूसरे देश के लोगों के साथ अपनी बात प्रायः अनुवाद के माध्यम से करते हैं और यह अनुवाद कार्य करता है – द्विभाषी अर्थात् अनुवादक। निश्चय ही यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र अनुवाद का नवां क्षेत्र है।

विज्ञापन आज हमारे जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है और विज्ञापन के अनुवाद की तकनीक अन्य अनुवादों से विरल है। इसीलिए विज्ञापन–अनुवाद को अनुवाद का दसवां क्षेत्र माना जाता है।

सच यह है कि अनुवाद का क्षेत्र वहीं प्रारंभ हो जाता है, जहाँ द्विभाषिक की स्थिति उत्पन्न होती है इसीलिए अज्ञेय ने हर रचना को अनुवाद माना है। यहां तक कि हर व्यक्ति की अभिव्यक्ति को भी अनुवाद माना गया है।

धार्मिक साहित्य से अनुवाद प्रारंभ होकर आज श्रेष्ठ साहित्य की प्रस्तुति में अनुवाद की सक्रिय भूमिका स्वीकार की जाती है। हिन्दी के अनेक रचनाकारों की रचनाओं का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। साथ ही अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, बंगला, चीनी, फ्रेंच आदि संसार की अनेक भाषाओं के साहित्य का भी हिन्दी में निरंतर अनुवाद हो रहा है। दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'भारतीय साहित्य' (साहित्य आकदमी) तथा अन्य पत्र–पत्रिकाएँ और पुस्तकें इसके प्रमाण हैं। ऊपर अनुवाद क्षेत्रों का निर्णय विषय के आधार पर प्रस्तुत है। किन्तु अनुवाद में भाषा की भूमिका भी प्रधान होती है। सच तो यह है कि अनुवाद भाषिक धरातल पर ही पूरा हो पाता है। इसलिए भाषा के सभी अंगों को अनुवाद का क्षेत्र स्वीकार किया जाना चाहिए। भाषा के अंग हैं – ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ और प्रतीक तथा लिप्यांकन और लिप्यांतरण।

अनुवाद का एक पक्ष है – उसकी समीक्षा। समीक्षा से तात्पर्य अनुवाद की सार्थकता, सफलता, सहजता आदि से है। पाठक स्वयं समीक्षक होता है। अनुवाद को पढ़ते समय ही उसका परीक्षण भी करता जाता है। और इस कसौटी पर खरा उतरने पर ही अनुवाद की सफलता मानी जा सकती है।

सारांश

विद्यार्थियो! उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अनुवाद का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। मनुष्य को जिस भी क्षेत्र में इसकी आवश्यकता होगी वह अनुवाद का क्षेत्र होगा। साहित्य और साहित्येतर दोनों अनुवाद के क्षेत्र हैं जहाँ विभिन्न उद्देश्यों को परिपूर्ण करने हेतु अनुवाद किया जाता है।

14.4 कठिन शब्द

1. वैयक्तिक 2. द्विभाषिकता 3. प्रकार्य 4. अभिविन्यास 5. प्रतिष्ठान 6. कार्यालयों

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. काव्यानुवाद को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....

....

....

2. नाटकानुवाद की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

3. विधिक अनुवाद से आप क्या समझते हैं, स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अनुवाद सिद्धांत और समस्याएं, डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव एवं डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी (संपा.), आलेख प्रकाशन, दिल्ली
2. अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
3. अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं अनुप्रयोग, डॉ. नगेन्द्र (संपा.) , हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाषन, दिल्ली।

अनुवाद प्रक्रिया

15 रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 अनुवाद प्रक्रिया

15.3.1 पाश्चात्य चिन्तकों के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया

15.3.1.1 नाइडा के अनुसार

15.3.1.2 न्यूमार्क के अनुसार

15.3.1.3 बाथगेट के अनुसार

15.3.2 भारतीय चिन्तकों के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया

15.3.2.1 पाठ पठन

15.3.2.2 पाठ विश्लेषण

15.3.2.3 भाषांतरण

15.3.2.4 समायोजन

15.3.2.5 मूल से तुलना

15.4 सारांश

15.5 कठिन शब्द

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.7 सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

15.1 उद्देश्य

विद्यार्थियो! इस अध्याय के अध्ययनोपरांत आप

- अनुवाद प्रक्रिया को समझ सकेंगे
- अनुवाद प्रक्रिया संबंधी पश्चिमी विद्वानों के सोपानों को समझ सकेंगे
- अनुवाद प्रक्रिया संबंधी भारतीय विद्वानों के सोपानों को समझ सकेंगे

15.2 प्रस्तावना

अनुवाद एक विशिष्ट प्रकार का भाषा व्यवहार है। विशिष्ट होने के कारण अनुवाद सरल न होकर एक जटिल कार्य है। 'अनुवाद' शब्द की व्युत्पत्ति पर नजर डालें तो 'अनुवाद' शब्द संस्कृत की 'वद्' धातु में 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से बना है। 'वद्' का अर्थ है – बोलना या कहना और 'अनु' का अर्थ है – बाद में या पीछे। अंग्रेजी में 'ट्रान्सलेशन' में भी यही हैं यह शब्द लैटिन के 'ट्रान्सलेटम' से बना है, जिसमें 'ट्रांस' का अर्थ है 'पार' या 'दूसरी ओर' और 'लेटम' का अर्थ है 'ले जाना' अर्थात् एक भाषा सामग्री को दूसरी भाषा में ले जाना। अर्थात् एक भाषा में कही गई अभिव्यक्ति को दूसरी भाषा में ले जाना। इस प्रकार अनुवाद एक भाषा की सामग्री का दूसरी भाषा में रूपांतरण है। अर्थात् एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव, समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करना ही अनुवाद है।

15.3 अनुवाद प्रक्रिया

एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में समान रूप से अभिव्यक्त करना बहुत सरल कार्य नहीं होता। डॉ. सुरेश कुमार के अनुसार अनुवाद की जटिलता में इसके प्रक्रियागत अनेक विचारणीय पक्ष हैं, यथा– अनुवाद करने वाला (अनुवाद), अनुवाद क्यों किया जाता है (अनुवाद के उद्देश्य), अनुवादक अनुवाद में किन साधनों का उपयोग करता है (अनुवाद के उपकरण, अनुवादक अनुवाद कार्य निष्पादन में युक्तियों का आश्रय लेता है (अनुवाद की युक्तियाँ), अनुवाद कार्य में कैसी–कैसी त्रुटियाँ हो सकती हैं (अनुवाद के दोष), स्रोत भाषा सामग्री के वे बिंदु जिनका अनुवादक अनुवाद नहीं कर पाता (अनुवाद की सीमाएँ), ऐसे लक्ष्य जिन्हें पाने के लिए प्रत्येक अनुवादक प्रयत्नशील रहता है (सफल अनुवाद), अनुवाद की सफलता का परीक्षण कैसे किया जाता है (अनुवाद परीक्षण की विधियाँ), ऐसे तथ्य जिनकी जानकारी होने से अनुवाद कार्य में सफलता मिलती है (अनुवाद के सूत्र), इत्यादि। अनुवाद की प्रक्रिया को व्याख्यायित करने के लिए अनुवाद के सम्बन्ध में दिशा निर्देश पूर्ण कथनों की भरमार मिलती है कि अनुवाद में किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। उदाहरणार्थ –

1. अनुवाद में भाव की जगह भाव होना चाहिए न कि शब्द की जगह शब्द।
2. अनुवाद पूर्णतः बोधगम्य होना चाहिए। अपेक्षित अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए अनुवाद में ऐसे सहायक शब्द जोड़े जा सकते हैं, जो मूल पाठ में नहीं हैं।
3. यदि मूल में कोई ऐसा शब्द है जिसे छोड़ा जा सकता है और जिसका निकटतम समतुल्य भाषा में नहीं है तो उसे पदबंध आदि के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।
4. अनुवादक को स्रोतभाषा एवं लक्ष्यभाषा का सम्यक ज्ञान होना चाहिए।

5. अनुवादक को मूल रचना के भाव एवं लेखक के प्रयोजन से पूर्ण परिचित होना चाहिए।
6. मूल के अर्थ एवं अभिव्यंजना की रक्षा के लिए अनुवादक को शब्दानुवाद से बचना चाहिए। शब्द चयन एवं शब्दक्रम द्वारा मूल रचना के भाव एवं प्रभाव की समग्रता से रक्षा करनी चाहिए।
7. अनुवाद में मूल का संपूर्ण भाव समाहित होना चाहिए तथा अनुवाद को मूल की तरह होना चाहिए। अनुवाद ऐसा होना चाहिए कि उसका वही प्रभाव पड़े जो मूल का उसके पहले श्रोताओं पर पड़ा होगा।
8. अनुवाद स्रोतभाषा की पाठ सामग्री का लक्ष्यभाषा की समतुल्य पाठसामग्री द्वारा प्रतिस्थापन है।
9. अनुवाद का तात्पर्य एक भाषा की पाठ सामग्री के कथ्य को दूसरी भाषा की पाठ सामग्री में यह जानते हुए अंतरित करने से है, कि कथ्य को कथन से पृथक् करना सदा संभव नहीं होगा।
10. अनुवाद का आशय अर्थ को अक्षुण्ण रखते हुए अन्य भाषा में अंतरण से है।

अनुवाद के संबंध में उपर्युक्त कथनों की व्यापक परिप्रेक्ष्य से समीक्षा की जाए तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि उपर्युक्त कथनों में से एक भी ऐसा नहीं है जो अनुवाद की कसौटी के सभी पहलुओं को अपने में समाहित करता हो। अनुवाद में समतुल्यता का महत्व होता है। एक भाषा के शब्द का समतुल्य समानर्थी शब्द दूसरी भाषा में मिल ही जाएगा – यह शत–प्रतिशत होता नहीं है। भाषा चूँकि समाज की सम्पत्ति होती है और प्रत्येक समाज की अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, रूढ़िगत, प्रयुक्तिगत निजी विशेषताएँ होती हैं तथा उनके लिए प्रतीक रूप उसके शब्द होते हैं। अतः स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा की सामाजिक–सांस्कृतिक आदि भिन्नताएँ अनुवाद में समतुल्य शब्द विषयक समस्याएँ पैदा करती है। अतः कहा जा सकता है कि लक्ष्यभाषा में की गई अभिव्यक्ति की समतुल्य स्रोतभाषा की अभिव्यक्ति के अनुरूप जितनी मात्रा में असम होगी, अनुवाद की गुणवत्ता भी उतनी ही कम निखरकर सामने आएगी। अतः अनुवाद स्रोतभाषा के पाठ के कथन और कथ्य की लक्ष्यभाषा में सहज एवं समतुल्य अभिव्यक्ति है।

कोई भी अनुवादक जब अनुवाद करने बैठता है तो उसके द्वारा स्रोतभाषा सामग्री के पठन से लेकर लक्ष्यभाषा में अनुवाद तैयार हो जाने तक के कार्य अर्थात् अनुवादक द्वारा 'अनुवाद कार्य आरम्भ से लेकर अनुवाद कार्य सम्पन्न' – इन दो बिंदुओं के बीच की समस्त प्रक्रिया अनुवाद प्रक्रिया कहलाती है। अनुवाद प्रक्रिया में अनुवाद की वे सब बातें या प्रक्रियाएँ समाहित होती हैं जिनसे होकर एक अनुवादक अपने अनुवाद कार्य के दौरान गुजरता है या जिन्हें साधनस्वरूप इस्तेमाल करके अनुवाद तैयार करता है। अनुवाद प्रक्रिया के विभिन्न चरण हैं। नाइडा, आदि पाश्चात्य विद्वान अनुवाद प्रक्रिया के तीन चरण – 1. पाठ विश्लेषण, 2. अंतरण और 3. पुनर्गठन मानने के पक्षधर हैं। रूसी विद्वानों ने अनुवाद प्रक्रिया के चार चरण 1. पाठ पठन या पाठ ग्रहण, 2. विश्लेषण, 3. अंतरण और 4. संयोजन स्वीकार किए हैं। भारतीय विद्वानों में डॉ. जी. गोपीनाथन ने अनुवाद प्रक्रिया के दो चरण – (1) मूल पाठ्य–सामग्री का विश्लेषण और (2) समुचित समतुल्यता का निर्णय माने हैं। डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने अनुवाद प्रक्रिया के तीन चरण – 1. मूल पाठ का अर्थग्रहण, 2. अर्थांतरण और 3. पुनर्गठन तथा अनूदित पाठ की संप्रेषणीयता की जाँच माने हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अनुवाद प्रक्रिया के पाँच चरण – 1. पाठ–पठन, 2. पाठ विश्लेषण, 3. भाषांतरण, 4. समायोजन और 5. मूल से तुलना स्वीकार किए हैं।

अनुवाद की प्रक्रिया में उपर्युक्त विद्वानों ने जिन–जिन पहलुओं को समाहित किया है, वे अनुवादक द्वारा अनुवाद प्रक्रिया के दौरान गुजरने के साक्षात् चरण हैं। अनुवाद की प्रक्रिया में एक अनुभवी अनुवादक अनुवाद करते समय मुख्य रूप से जिन सोपानों को महसूस करता है, उन्हें यदि शाब्दिक अभिव्यक्ति दी जाए तो हम कह सकते हैं कि अनुवादक स्रोतभाषा से अनुवाद करते समय सर्वप्रथम पाठक की भूमिका निभाता है और स्रोतभाषा सामग्री का अर्थग्रहण करता है। अतः पाठक की भूमिका और अर्थग्रहण अनुवाद प्रक्रिया का पहला सोपान है। अनुवादक द्वारा स्रोतभाषा सामग्री के पठन और उसके अर्थग्रहण के उपरांत वह द्विभाषिक की भूमिका निभाते हुए अर्थांतरण करता है, अतः द्विभाषिक की भूमिका और अर्थांतरण को अनुवाद प्रक्रिया का दूसरा सोपान कहा जा सकता है। अर्थांतरण के पश्चात् अनुवादक स्रोतभाषा सामग्री के स्थान पर लक्ष्यभाषा की समतुल्य सामग्री में अनुवाद करता है तथा अर्थ सम्प्रेषण करता है। अतः अनुवाद प्रक्रिया के तीसरे सोपान को रचयिता की भूमिका और अर्थ सम्प्रेषण कहा जा सकता है। अनुवाद प्रक्रिया का अंतिम चरण समतुल्यता है। अनुवादक तीसरे सोपान से गुजरने के उपरांत स्रोतभाषा से लक्ष्यभाषा में किए गए अनुवाद के समतुल्य शब्दों, पदों, पदबंधों, उपवाक्यों, वाक्यों, वाक्यों का क्रम, अर्थ अन्विति, आदि सभी पहलुओं को दृष्टि में रखकर स्रोतभाषा सामग्री के स्थान पर लक्ष्यभाषा सामग्री की समतुल्यता करता है तथा त्रुटिपूर्ण स्थलों का वह इस सोपान में पता लगाता है तथा लक्ष्यभाषा के जो प्रतीक स्रोतभाषा के अर्थ की समान अभिव्यक्ति नहीं देते, उनके स्थान पर समतुल्य प्रतीकों को खोजकर अनुवाद में स्थान देता है। अनुवाद प्रक्रिया का यह चौथा अर्थात् अंतिम सोपान अत्यंत महत्त्वपूर्ण सोपान है। अधिकांश अनुवादक इस सोपान से बचते रहे, अतः अनुवाद में दोष का अवकाश रह जाता है। अनुवाद कार्य एक जटिल और श्रमसाध्य कार्य है। अतः अनुवादक को अनुवाद करते समय अनुवाद प्रक्रिया के समस्त सोपानों को समान महत्व देना चाहिए। मूल रचना सदैव संपूर्ण होती है, लेकिन किसी भी अनुवाद को संपूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक अनुवाद में कहीं–न–कहीं अनभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति या और अधिक समान अभिव्यक्ति की गुजांइश रहती है। अतः शत–प्रतिशत अनुवाद की जगह आदर्श अनुवाद की बात तो की ही जा सकती है।

शब्दानुवाद कभी भी आदर्श अनुवाद नहीं हो सकता। अतः अनुवादक को अनुवाद प्रक्रिया के समस्त सोपानों को ध्यान में रखकर स्रोत भाषा–पाठकरूपी समुद्र में डुबकी लगाकर समस्त मोती समतुल्य अर्थ के स्तर पर लक्ष्यभाषा में रखने चाहिए। यह ठीक ही कहा गया है, कि अनुवाद एक कस्टम हाउस है जिससे होकर स्रोतभाषा के प्रयोग का विदेशी माल लक्ष्यभाषा में अन्य स्रोतों की तुलना में अधिक आ जाता है, यदि अनुवादक उपेक्षित सतर्कता न बरते। यहाँ तक तो बात नहीं बिगड़ती लेकिन जब अनुवादक अपने शब्दकोशीय ज्ञान के बल पर या फिर शब्दकोशों की मात्र सहायता से अनुवाद जैसे श्रमसाध्य कार्य में जुटता है और शब्दानुवाद का हामी सर्वत्र न होकर कहीं–कहीं हो भी जाता है, तो अर्थ के अनर्थ की गुंजाइश हो ही जाती है। अनुवाद प्रक्रिया के अंतिम चरण समतुल्यता या समायोजना से कतराने वाला अनुवादक अर्थ को अनर्थ कर देता है।

1. अनुवाद प्रक्रिया के विविध सोपानों का विवेचन–विश्लेषण करने से पहले जे.सी. कैटफॉर्ड द्वारा दी गई अनुवाद की निम्नलिखित परिभाषा पर एक नजर डालना आवश्यक होगा। उनके अनुसार – "Replacement of SL textual material by equivalent TL textual material ." (A

linguistic theory of Translation, page-22) अर्थात् "स्रोतभाषा की पाठ्यसामग्री का लक्ष्यभाषा में समानक पाठ्यसामग्री द्वारा पुनर्स्थापन करना अनुवाद है।"

इसी तरह नाइडा और टेबर ने अपने ग्रंथ 'द थ्योरी एंड प्रैक्टिस ऑफ ट्रांसलेशन' में अनुवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है कि–"मूल भाषा के संदेश के समतुल्य संदेश को लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। संदेशों की सममूल्यता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से तथा निकटतम एवं स्वाभाविक होती है।"

न्यूमार्क ने भी इसी तरह के विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि – "अनुवाद एक शिल्प है जिसमें एक भाषा में लिखित संदेश के स्थान पर दूसरी भाषा में उसी संदेश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है।"

इस तरह, स्रोतभाषा की लक्ष्यभाषा में प्रस्तुति ही अनुवाद है। अनुवाद में एक भाषा के संदेश का दूसरी भाषा में परिवर्तन करते समय–कथ्य, शैली और संदर्भ तीनों का ध्यान रखा जाता है।

अनुवाद की प्रक्रिया में स्वयं अनुवादक सबसे पहले और महत्वपूर्ण घटक के रूप में कार्य करता है। हालांकि पाश्चात्य एवं भारतीय अनुवाद चिंतक अनुवाद प्रक्रिया में उसका किसी भी सोपान के रूप में कोई उल्लेख नहीं करते। अनुवादक चूँकि अनुवाद कार्य करता है और अनुवादक ही अनुवाद प्रक्रिया का पालन करता है। अतः उसके एक कार्यान्वयक घटक के रूप में अनुवाद कार्य में भूमिका निभाने के कारण यह अनुवाद प्रक्रिया के समस्त सोपानों को आगे बढ़ाता है। अतः अनुवादक की भूमिका अनुवाद कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अलग–अलग विषय, भाषा एवं अनुभव स्तर के अनुवादकों द्वारा किया गया अनुवाद गुणवत्ता, कोटि, मूलनिष्ठता आदि की दृष्टि से एक समान नहीं हो सकता। दूसरे, अनुवादक जिस क्षेत्र में जितना अधिक अनुभवी एवं घिसा हुआ होगा, उसके द्वारा सम्पन्न अनुवाद उस क्षेत्र के अनुवादों में उत्तम कोटि का होगा। चूँकि अनुवाद प्रक्रिया से गुजरते हुए कोई भी अनुवादक मूल पाठ का पाठक भी स्वयं ही होगा तथा पाठ विश्लेषण एवं भाषांतरण भी वह स्वयं ही करेगा, साथ ही, समायोजन एवं मूल से तुलना करके अनुवाद करने में भी उसकी ही भूमिका होगी। अतः उसका भाषा, विषय, शैली, ज्ञान, अनुभव, अनुवाद साधना का धरातल आदि का व्यक्तित्व उसे इस प्रक्रिया के पालन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। उत्तम या आदर्श अनुवाद के लिए अनुवादक के अनुवादगत व्यक्तित्व का आकलन करना आवश्यक होता है। अतः इस दृष्टि से अनुवाद प्रक्रिया के संयोजक घटक अनुवादक का भी अनुवाद प्रक्रिया के महत्वपूर्ण घटक के रूप में उल्लेचख होना चाहिए।

2. अनुवाद प्रक्रिया की आधारभूत इकाई

अनुवाद की प्रक्रिया की सर्वाधिक आधारभूत इकाई है – मूलपाठ। यह मूलपाठ एक लाइन, एक पैराग्राफ, एक अध्याय, एक ग्रंथ, एक ग्रंथमाला आदि के रूप में एक पंक्ति से लेकर हजारों पन्नों तक का हो सकता है। अनुवादक को पाठ के संदर्भ में तीन बातों का सबसे अधिक ध्यान रखना पड़ता है – (1) पाठ की व्याकरणिक संरचना, (2) पाठ की विषयवस्तु, शैली और संदर्भ वस्तु तथा (3) पाठ की कथ्यगत और शैलीगत विशिष्टता। किसी भी मूल पाठ की संरचना को एक पाठ के रूप में सतही और गहन – दोनों स्तरों पर ग्रहण करके अनुवादक आगे बढ़ सकता है। चूँकि अनुवाद एक भाषा का दूसरी भाषा के अनुवाद में समानक पाठ्य–सामग्री द्वारा प्रतिस्थापन है, अतः मूल भाषा की वस्तु का लक्ष्यभाषा में समानार्थी शब्दों का चयन एवं

विन्यास करना अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। चूँकि स्रोतभाषा एवं लक्ष्यभाषा की संस्कृति, रीति–नीति, आचार–विचार, खान–पान, आदतें, धार्मिक–दार्शनिक आस्थाएँ एवं अन्य सामाजिक संदर्भ समान नहीं होते, अतः उपयुक्त समानार्थी शब्दों की तलाश समतुल्यता के स्तर पर यथासंभव समान रूप में की जा सकती है, उनका समरूप होना संभव नहीं होता।

कैटफॉर्ड ने अनुवाद प्रक्रिया को स्रोतभाषा के अर्थ का लक्ष्यभाषा में प्रतिस्थापन माना है। इसके लिए अनुवादक पहले स्रोतभाषा के पाठ का विश्लेषण करता है और उसके बाद लक्ष्यभाषा में उसके समानार्थी अभिव्यंजक प्रतिमानों की खोज करता है। इस कार्य में अनुवादक स्रोतभाषा की अभिव्यक्ति को उसके संदर्भ और प्रयुक्ति दोनों के संदर्भ में लक्ष्यभाषा की समानार्थी अभिव्यक्ति की तलाश करता है। अतः आदर्श अनुवाद की कसौटी होती है – संप्रेषणीयता अर्थात् कम्यूनिकेशन। जो बात स्रोतभाषा में अभिव्यक्त की गई है, उसे उसी तरह लक्ष्यभाषा में अभिव्यक्त करना सबसे बड़ी उपलब्धि होती है। इसके लिए प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग सबसे पहली आवश्यकता है।

स्रोतभाषा के पाठ में अनुस्यूत सांस्कृतिक संदर्भों को अनुवादक किस तरह ले, यह भी सदैव प्रश्न बना रहता है। प्रत्येक भाषा में अनुभवों का अंकन उसका अपना निजी होता है, अतः उसमें ऐसे शब्द होते हैं जिनका अपना ही सांस्कृतिक धरातल होता है तथा उनके लिए दूसरी भाषा में समतुल्य शब्दों की तलाश करना समतुल्य संस्कृति की तलाश करना ही कहा जाएगा जो संभव नहीं है। एक से ऐसे अनेकानेक शब्दों की संपूर्ण व्यंजनाओं को दूसरी भाषा में संपूर्ण रूप में अभिव्यंजित नहीं किया जा सकता। अतः यथासंभव समान की बात करना स्वाभाविक ही है। इसलिए अनुवादक को कुछ समन्वय करने होते हैं। स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा के शैलीगत वैषम्य के कारण कुछ विस्थापन (shift of expression) करने आवश्यक होते हैं।

3. परकाय प्रवेश

डॉ. जी. गोपीनाथन इस संदर्भ में परकाय प्रवेश की प्रक्रिया के रूप में अनुवाद की परिकल्पना के अंतर्गत 'सांस्कृतिक संदर्भों का एकीकरण', 'अनुवाद – एक व्याख्या' आदि सिद्धान्तों का समाहन करते हैं। उनके अनुसार अनुवाद की इस परकाया प्रवेश की प्रक्रिया में स्रोतभाषा की संस्कृति की आत्मा और शरीर, अर्थ और शैली का अन्य भाषिक संस्कृति के अर्थ एवं शैली का अन्य भाषिक संस्कृति के अर्थ एवं शैली तत्त्वों में अंतरण एवं एकीकरण हो जाता है। यह प्रक्रिया पुनःसृजन की माँग करती है। उन्होंने अनुवाद को वह द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया कहा है, जिसमें स्रोत पाठ की अर्थ संरचना (आत्मा) का लक्ष्यभाषा में अंतरण होता है और स्रोत पाठ की शैलीगत संरचना का लक्ष्य पाठ की शैलीगत संरचना (शरीर) द्वारा प्रतिस्थापन होता है।

डॉ. जी. गोपीनाथन ने अनुवाद की इस प्ररकाय प्रवेश की प्रक्रिया को निम्नानुसार रूप में दिखाया है –

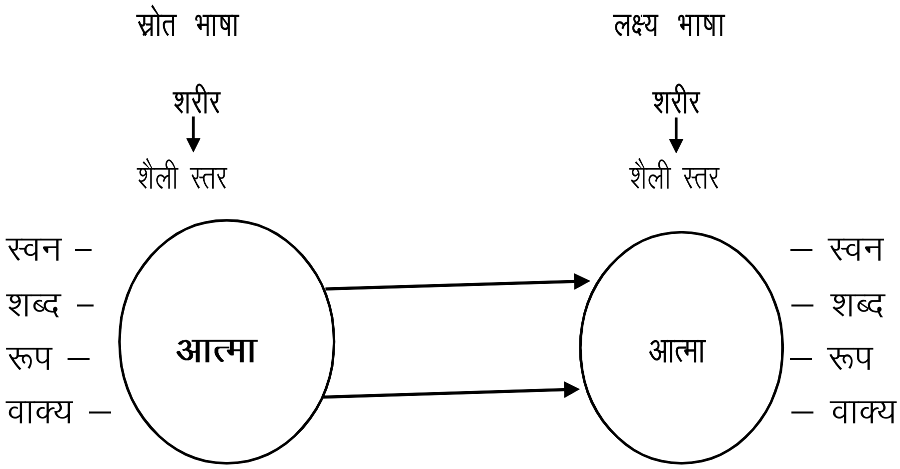

15.3.1 पाश्चात्य चिन्तकों के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया

अनुवाद प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं पर पाश्चात्य विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं तथा अनुवाद प्रक्रिया के विभिन्न प्रारूप प्रस्तुत किए हैं।

15.3.1.1 नाइडा के अनुसार

नाइडा (1984) ने अनुवाद प्रक्रिया के प्रारूप के दो भेद किए हैं : (1) प्रत्यक्ष, और (2) परोक्ष। इन दोनों में उन्होंने आधारभूत अंतर माना है। प्रत्यक्ष प्रक्रिया के प्रारूप के अनुसार मूल पाठ की सतही संरचना के स्तर पर उपलब्ध भाषिक इकाइयों के लक्ष्यभाषा में अनुवाद पर्याय निश्चित होते हैं। अनुवाद प्रक्रिया एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है जिसमें मूलपाठ के हर अंश का अनुवाद होता है। इस प्रक्रिया में एक मध्यवर्ती स्थिति यह भी होती है जिसमें निर्विशेष और सार्वभौमिक भाषिक संरचना रहती है जिसका केवल सैद्धांतिक महत्व होता है। अनुवादक मूल पाठ के संदेश को सीधे लक्ष्यभाषा में ले जाता है, वह इन दोनों स्थितियों में मूलभाषा पाठ और लक्ष्यभाषा पाठ की सतही संरचना के स्तर पर ही रहता है – यह इस प्रारूप की मान्यता है। अनुवाद पर्यायों के चयन और प्रस्तुतीकरण का कार्य एक स्वचलित प्रक्रिया के समान होता है। नाइडा ने इसे निम्नलिखित आरेख द्वारा प्रस्तुत किया है –

क .... (क्ष) .... (ख)

इसमें 'क' मूलभाषा है, 'ख' लक्ष्यभाषा है तथा 'क्ष' वह मध्यवर्ती संरचना है जो दोनों भाषाओं के लिए समान होती है और जो अनुवाद को संभव बनाती है और जहाँ पर दोनों भाषाएँ एक–दूसरे के साथ इस प्रकार से संबद्ध हो जाती हैं कि उनका अपना वैशिष्ट्य कुछ समय के लिए लुप्त हो जाता है।

परोक्ष प्रक्रिया के प्रारूप में नाइडा की धारणा यह है कि अनुवाद पाठ की सतही संरचना तक सीमित न रहकर आवयश्यकतानुसार सदैव पाठ की गहन संरचना में भी जाता है और फिर लक्ष्यभाषा में अनुवाद पर्याय प्रस्तुत करता है। इस प्रारूप में प्रत्यक्ष प्रक्रिया का प्रारूप समाहित हो जाता है। दोनों में विरोध की स्थिति नहीं है। प्रत्यक्ष प्रक्रिया प्रारूप की शर्त यह है कि अनुवाद कार्य सतही संरचना के स्तर पर ही हो जाता है जबकि

परोक्ष प्रक्रिया के अनुसार अनुवाद कार्य पाठ की गहन संरचना के माध्यम से होता है। यद्यपि इस बात की हमेशा संभावना रहती है कि लक्ष्यभाषा में मूल भाषा के अनेक पर्याय सतही संरचना के स्तर पर ही मिल जाएँ। नाइडा ने इसे निम्नानुसार स्पष्ट किया है –

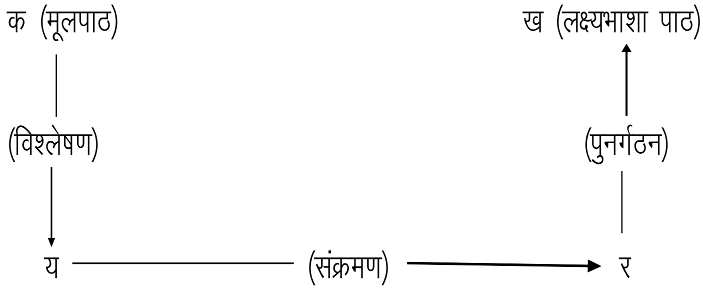

य = भाषा का गहन स्तरीय विशलेषित पाठ

र = लक्ष्य भाषा में संक्रांत गहन स्तरीय पाठ

नाइडा अनुवाद प्रक्रिया के तीन सोपान स्वीकार करते हैं –

(1) अनुवादक सबसे पहले मूलभाषा के पाठ का विश्लेषण करता है, पाठ की व्याकरणिक संरचना तथा शब्दों एवं शब्द शृंखलाओं का अर्थगत विश्लेषण करके वह मूलपाठ के संदेश को ग्रहण करता है। इसके लिए वह भाषा सिद्धांत पर आधारित भाषा विश्लेषण की तकनीकों का उपयुक्त रीति से अनुप्रयोग करता है। असामान्य रूप से जटिल तथा लम्बे और अनेकार्थी वाक्यों, वाक्यांशों और पदबंधों के अर्थबोधन के लिए संभावित कठिनाइयों के हल ढूँढकर मूलपाठ का विश्लेषण करता है।

(2) अर्थबोध हो जाने के बाद अनुवादक संदेश का लक्ष्यभाषा में संक्रमण करता है। यह प्रक्रिया उसके मस्तिष्क में होती है। इसमें वह मूलपाठ के लक्ष्यभाषागत अनुवाद पर्याय निर्धारित करता है तथा दोनों भाषाओं के बीच विभिन्न स्तरों और श्रेणियों में तालमेल बैठाता है।

(3) अंत में अनुवादक मूलभाषा के संदेश को लक्ष्यभाषा में उसकी संरचना एवं प्रयोग नियमों तथा विधागत रूढ़ियों के अनुसार इस प्रकार पुनर्गठित करता है कि यह लक्ष्यभाषा के पाठक को स्वाभाविक प्रतीत होता है या कम–से–कम अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता है।

नाइडा के अनुवाद प्रक्रिया के सोपान

नाइका ने अनुवाद प्रक्रिया के निम्नलिखित तीन सोपानों का उल्लेख किया है –

विश्लेषण – नाइडा ने मूलपाठ के विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित भाषा सिद्धांत तथा विश्लेषण की रूपरेखा अनुवाद प्रक्रिया के विश्लेषण के संदर्भ में प्रस्तुत की है। उनके अनुसार भाषा के दो पक्षों – व्याकरण तथा शब्दार्थ का विश्लेषण अपेक्षित होता है। नाइडा ने व्याकरण को केवल वाक्य या फिर उपवाक्य, पदबंध आदि के गठनात्मक विश्लेषण तक सीमित नहीं माना है। उनके अनुसार व्याकरणिक गठन भी अर्थवान होता है। उदाहरण के लिए कर्तृवाचक संरचना और कर्मवाच्य/भाववाच्य संरचना में मात्र गठनात्मक अंतर ही नहीं, अपितु अर्थ का अंतर भी होता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने अनेकार्थी संरचनाओं की ओर भी संकेत किए हैं।

इसी प्रकार उन्होंने शब्दार्थ की दो कोटियों – वाच्यार्थ और लक्ष्य–व्यंग्यार्थ का वर्णनात्मक विशलेषण भी किया है। नाइडा ने विशलेषण की इस प्रणाली को मूलभाषा पाठ के अर्थबोधन के साधन के रूप में प्रस्तुत किया है।

संक्रमण – अनुवादक मूलभाषा पाठ का विश्लेषण करके उससे प्राप्त अर्थबोध को लक्ष्यभाषा में संक्रांत करता है तथा यह अनुवाद प्रक्रिया का केंद्र स्थित सोपान है। अनुवाद कार्य करते हुए कोई भी अनुवादक विश्लेषण और पुनर्गठन के बीच संक्रमण करता है तथा इस सोपान में अर्थबोधन और अधिक स्पष्ट कर लेता है, ताकि दूसरी भाषा में पुनर्गठन करने में उसे और अधिक सहायता मिल सके। संक्रमण की यह प्रक्रिया अनुवादक के मस्तिष्क में होती है तथा अपनी प्रकृति में त्वरित एवं अंतर्ज्ञानमूलक होती है। अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक का व्यक्तित्व इसी सोपान पर प्रभावी भूमिका निभाता है। विश्लेषण से प्राप्त भाषिक तथा संप्रेषण संबंधी तथ्यों के उपयुक्त अनुवाद प्रायः निर्धारित करने में अनुवादक की कुशलता, दक्षता एवं अनुभवी दृष्टि निहित होती है। विश्लेषण तथा पुनर्गठन के सोपानों पर वह अन्य व्यक्तियों की सलाह भी ले सकता है, लेकिन संक्रमण के इस सोपान पर उसे अकेले ही कार्य करना होता है। अतः संक्रमण के सोपान पर दो बातें अत्यंत प्रभावी भूमिका निभाती हैं : (1) अनुवादक का व्यक्तित्व और (2) मूलभाषा एवं लक्ष्यभाषा के बीच संक्रमणकालीन तालमेल।

अनुवादक के व्यक्तित्व में उसका विषयज्ञान, भाषाज्ञान, प्रतिभा तथा कल्पना – इन चार घटकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। फिर भी, नाइडा के अनुसार प्रतिभा और कल्पना को विषयज्ञान एवं भाषाज्ञान से अधिक महत्व देना होता है। अनुवाद एक व्यावहारिक और क्रियात्मक कार्य है। विषयज्ञान और भाषा ज्ञान की कमी को अनुवादक दूसरों की सहायता प्राप्त करके भी पूरा कर सकता है लेकिन प्रतिभा एवं कल्पना की दृष्टि से वह किसी अन्य पर आश्रित नहीं रह सकता।

साथ ही, स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा के बीच तालमेल बिठाना अनुवाद प्रक्रिया की अनिवार्य एवं आंतरिक आवश्यकता है। भाषांतरण में संदेश प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकता है तथा इस प्रतिकूलता को यथासंभव कम करने के लिए अर्थपक्ष और व्याकरण दोनों दृष्टियों से दोनों भाषाओं के बीच तालमेल की स्थिति लानी होती है। अनेकार्थता, मुहावरे एवं उनका लाक्षणिक प्रयोग, अर्थ की सामान्यता तथा विशिष्टता आदि ऐसे अनेक मुद्दे हैं जिनमें तालमेल बिठाना आवश्यक होता है। व्याकरण की दृष्टि से प्रोक्ति संरचना, वाक्य संरचना, पद संरचना संबंधी कई समायोजन भी अनुवादक को अनुवाद करते समय करने होते हैं।

पुनर्गठन – अनुवादक विश्लेषण की प्रक्रिया में मूल पाठ का अर्थबोध कर लेता है तथा संक्रमण की प्रक्रिया में स्रोतभाषा के संदेश को लक्ष्यभाषा में पूरी तरह से तालमेल बिठाकर निर्धारित कर लेता है तथा पुनर्गठन में उसे लक्ष्यभाषा में अनूदित पाठ का रूप देता है। अतः पुनर्गठन का यह सोपान लक्ष्यभाषा में मूर्त अभिव्यक्ति का सोपान है। इस सोपान में अनुवादक को कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना होता है, जैसे – व्याकरणिक संरचना, शब्दक्रम, सहप्रयोग, भाषा भेद, शैलीगत प्रतिमान आदि। इन सबकी आधारभूत कसौटी लक्ष्य भाषागत उपयुक्तता एवं स्वाभाविकता होती है। अनुवादक को इस सोपान में ध्यान रखना चाहिए कि लक्ष्यभाषा में जो स्वाभाविक एवं उपयुक्त प्रतीत हो तथा लक्ष्यभाषा की परंपरा के पूर्णतया अनुकूल हो, उसके आधार पर ही

उसे लक्ष्यभाषा में संदेश का पुनर्गठन करना चाहिए। इसके लिए अनुवादक को स्वाभाविकता, उपयुक्तता एवं परंपरानुवर्तिता का ध्यान रखना चाहिए।

इस तरह नाइडा ने अनुवाद प्रक्रिया के तीन चरण या सोपान–विश्लेषण, अंतरण एवं पुनर्गठन स्वीकार किए हैं।

15.3.1.2 न्यूमार्क के अनुसार

न्यूमार्क के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया का प्रारूप निम्नानुसार है –

बोधन और व्याख्या अभिव्यक्ति और पुनः सृजन

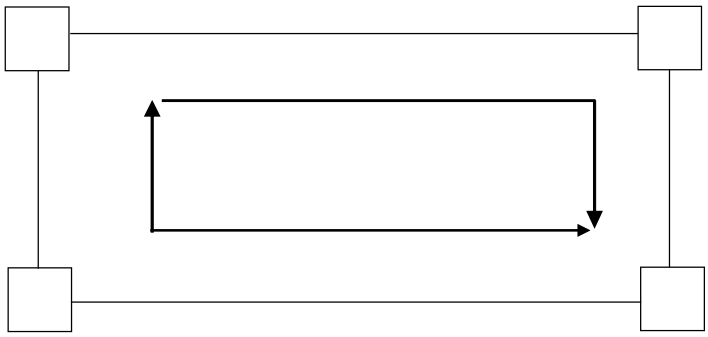

मूलभाषा पाठ शब्द प्रति–शब्द अनुवाद लक्ष्यभाषा पाठ

न्यूमार्क के उपर्युक्त अनुवाद प्रक्रियागत प्रारूप को नाइडा के अनुवाद प्रक्रियागत प्रारूप से मिलान करके देखा जाए तो दोनों में अनुवाद प्रक्रिया संबंधी धारणा में कोई मौलिक अंतर देखने को नहीं मिलता। चूँकि नाइडा बाइबल के अनुवादक रहे अतः उनकी दृष्टि प्राचीन पाठ के अनुवाद की समस्याओं की ओर अधिक रही। इसलिए उन्होंने विश्लेषण, संक्रमण और पुनर्गठन के सोपान अनुवाद प्रक्रिया के लिए निश्चित किए । न्यूमार्क की दृष्टि आधुनिक तथा वैविध्यपूर्ण भाषाभेदों के अनुवाद कार्य की समस्याओं की ओर उन्मुख रही। अतः उन्होंने बोधन एवं अभिव्यक्ति को सोपानों को अनुवाद प्रक्रिया में रखा है। लेकिन उन्होंने मूलभाषा पाठ को लक्ष्यभाषा पाठ से भी जोड़ा है जिससे दोनों पाठों का अनुवाद संबंध तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी संदर्भ में स्पष्ट हो जाता है।

15.3.1.3 बाथगेट के अनुसार

बाथगेट ने अपने अनुवाद प्रक्रियागत प्रारूप को सक्रियात्मक प्रारूप कहा है। उनका यह प्रारूप अनुवाद कार्य की व्यावहारिक प्रकृति से विशेष रूप से मेल खाने के साथ–साथ नाइडा और न्यूमार्क के प्रारूपों से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। उनका अनुवाद प्रक्रियागत प्रारूप निम्नानुसार है –

मूलभाषा पाठ
|
समन्वयन
|
विश्लेषण
|
बोधन
|
पारिभाषिक अभिव्यक्ति
|
पुनर्गठन
|
पुनरीक्षण
|
पर्यालोचन
|
लक्ष्यभाषा पाठ

बाथगेट ने अपने अनुवाद प्रक्रियागत उपर्युक्त प्रारूप में स्रोतभाषा पाठ को लक्ष्यभाषा पाठ के रूप में अंतरित करने के लिए कुल सात सोपानों की बात की है, लेकिन उनके उपर्युक्त सोपानों में पर्यालोचन को छोड़कर बाकी सभी में अतिव्याप्ति का अवकाश है। उनके इस अनुवाद प्रक्रियागत प्रारूप में मूल भाषा पाठ की नब्ज पहचानना और तद्नुसार अपनी मानसिकता का पाठ से तालमेल बिठाना समन्वय है। यह सोपान मूल पाठ के समस्त पहलुओं की धुँधली समझ पर आधारित मानसिक तैयारी का सोपान है जो अनुवाद कार्य में प्रयुक्त होने की अभिप्रेरणा की व्याख्या करता है तथा अनुवाद की कार्यनीति के निर्धारण के लिए आवश्यक भूमिका बनाता है। विश्लेषण और बोधन के सोपान नाइडा और न्यूमार्क के द्वारा प्रवर्तित सोपानों से मूल खाते हैं। पारिभाषिक अभिव्यक्तियों के अंतर्गत बाथगेट उन अंशों को लेते हैं जो मूलपाठ के संदेश की निष्पत्ति में अन्य अंशों की तुलना में विशेष महत्व के हैं और जिनके अनुसार पर्यायों के निर्धारण में विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। पुनर्गठन का सोपान भी नाइडा द्वारा प्रवर्तित सोपान से मेल खाता है। पुनरीक्षण के अंतर्गत अनूदित पाठ की पूरी जाँच–पड़ताल आती है, हस्तलिखित या टंकण की भूलों को दूर करने के अतिरिक्त अभिव्यक्ति में व्याकरणनिष्ठता, परिष्ककरण, श्रुतिमधुरता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, उपयुक्तता, सुरुचि तथा आधुनिक प्रयोग रूढ़ि की दृष्टि से अनूदित पाठ का आवश्यक संशोधन पुनरीक्षण है। वह कार्य अनुवादक से भिन्न व्यक्ति करता है। यदि अनुवादक स्वयं इस कार्य को कर रहा हो तो वह अनूदित पाठ के प्रति कोई भावनात्मक लगाव रखे बिना तटस्थ और आलोचनात्मक दृष्टि से इस कार्य को पूर्ण करे। पर्यालोचन के सोपान में विषय विशेषज्ञ और अनुवादक के मध्य संवाद के द्वारा अनूदित पाठ की प्रामाणिकता की पुष्टि का प्रावधान होता हे।

प्रयोजनमूलक भाषा क्षेत्रों, यथा – कानून, प्रकृति–विज्ञान, समाज विज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि में पर्यालोचन की उपयोगिता स्पष्ट रूप से होती है।

पापोविच द्वारा प्रवर्तित अनुवाद परिवृत्ति

पोपोविच (1976) ने अनुवाद परिवृत्ति के निम्नलिखित पाँच प्रकारों की चर्चा की है –

(1) **संरचनात्मक परिवृत्ति** : दो भाषाओं की संरचना, शैली आदि में मौलिक भिन्नता होने के कारण होने वाली अनिवार्य परिवृत्ति।

(2) **विधा परिवृत्ति** : साहित्यिक विधाओं में होने वाली अनिवार्य परिवृत्ति, जैसे – अंग्रेजी सॉनेटरया ओड का हिंदी में सामान्य प्रगति के रूप में अनुवाद।

(3) **व्यक्तिनिष्ठ परिवृत्ति** : अनुवादक की अपनी शैली के वैशिष्ट्य से निष्पन्न तथा फलस्वरूप मूलपाठ की शैली से विचवलित परिवृत्ति।

(4) **निषेधात्मक परिवृत्ति** : मूल भाषाकी संरचना में अपरिचय या न्यून परिचय के कारण मूल कथ्य में परिवतन।

(5) **सूचनापरक परिवृत्ति** : मूल के सूचनापरक बिंदुओं को किन्हीं कारणों से अनुवाद में परिवर्तित कर देना।

कुछ रूसी विद्वानों ने अनुवाद प्रक्रिया के चार चरण स्वीकार किए हैं –

1. पाठ–पठन या पाठ–ग्रहण,
2. विश्लेषण,
3. अंतरण और
4. संयोजन

इस तरह उपुर्यक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य अनुवाद चिंतक अनुवाद के विविध चरण स्वीकार करते हैं।

15.3.2 भारतीय चिन्तकों के अनुसार अनुवाद प्रक्रिया

अनुवाद प्रक्रिया के विविध पहलुओं पर भारतीय चिंतकों ने भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी अनुवाद प्रक्रिया के पाँच चरण स्वीकार करते हैं : (1) पाठ पठन, (2) पाठ विश्लेषण, (3) भाषांतरण, (4) समायोजन और (5) मूल से तुलना।

15.3.2.1 पाठ पठन

पहले चरण में स्रोतभाषा की सामग्री को पढ़ना या उसका पठन करना होता है। यह पाठ–पठन दो दृष्टियों से किया जाता है – भाषिक अर्थ की दृष्टि से तथा वैषयिक अर्थ की दशष्टि से। पाठ–पठन में हो सकता है कि कहीं भाषा कठिन हो और उसे समझने की आवश्यकता हो। इसके लिए उस भाषा के अच्छे जानकार या कोश आदि की सहायता ली जा सकती है। यह भी संभव है – कि विषय की दुरुहता के कारण कहीं पाठ समझ में न आ रहा हो। इसके लिए विषय के जानकार या विषय की प्रामाणिक पुस्तकों से सहायता ली जा सकती है। अर्थ के निर्धारण में काल, देश, लिंग, वचन, प्रसंग आदि उन बातों पर अवश्य विचार करना चाहिए जो अर्थ निर्धारण के लिए आवश्यक मानी जाती है।

15.3.2.2 पाठ विश्लेषण

दूसरे चरण में अनुवाद की दृष्टि से पाठ का विश्लेषण करते हैं। आवश्यकतानुसार पाठ में इस चरण में निशान लगाए जा सकते हैं। इस विश्लेषण में इस बात पर बल दिया जाता है कि कहाँ शब्द का अनुवाद करना है, कहाँ पदबंध का, कहाँ उपवाक्य का, कहाँ वाक्य का और कहाँ एक वाक्य को एकाधिक वाक्यों में तोड़कर अनुवाद करना है तथा कहीं एकाधिक वाक्यों को एक वाक्य मे मिलाकर अनुवाद करना है। कभी–कभी प्रोक्ति स्तरीय अनुवाद की आवश्यकता भी पड़ सकती है।

15.3.2.3 भाषांतरण

इस तीसरे चरण में दूसरे चरण के पाठ विश्लेषण के आधार पर विभक्त स्रोतभाषा की इकाइयों का लक्ष्यभाषा की इकाइयों में अंतरण करते हैं। यह अंतरण मुख्यतः तीन प्रकार का हो सकता है –

(क) किसी इकाई का समान इकाई में जिसे शब्द–शब्द, पदबंध–पदबंध, उपवाक्य–उपवाक्य, वाक्य–वाक्य, वाक्यबंध–वाक्यबंध अंतरण कह सकते हैं।

(ख) बड़ी इकाई से छोटी इकाई, जैसे – उपवाक्य से पदबंध बनाना।

(ग) छोटी इकाई से बड़ी इकाई, जैसे – पदबंध से उपवाक्य बनाना आदि।

15.3.2.4 समायोजन

यहाँ आकर अंतरित पाठ का लक्ष्यभाषा की दृष्टि से समायोजन करते हैं। इस समायोजन में तीन बातें आवश्यक हैं –

(क) भाषा में सहज प्रवाह हो,

(ख) स्रोतभाषा की छाया न हो, तथा

(ग) अर्थ स्पष्ट हो और यह अर्थ की स्पष्टता दो प्रकार की हो सकती है–भाषिक अर्थ और वैषयिक अर्थ।

15.3.2.5 मूल से तुलना

अनुवादक को चौथे चरण में आकर अपने अनुवाद कार्य की इतिश्री नहीं मान लेनी चाहिए। उसकी अंत में एक बार मूल से तुलना अवश्य कर लेनी चाहिए। यहाँ देखने की बात यह होती है कि अनुवाद मूल से न कम कह रहा हो, न अधिक कह रहा हो और न कुछ हटकर कह रहा हो। अर्थात् वह अर्थ संकोच, अर्थविस्तार तथा अर्थादेश से मुक्त हो तथा यथा संभव उसकी भाषा–शैली भी मूल के अनुरूप हो।

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी ने अनुवादक की भूमिका को ध्यान में रखते हुए अनुवाद प्रक्रिया के तीन चरण माने हैं। इन चरणों में अनुवादक की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है। तीन चरण इस प्रकार हैं –

(1) मूल पाठ के पाठक की भूमिका और अर्थग्रहण की प्रक्रिया,

(2) द्विभाषिक की भूमिका और अर्थांतरण की प्रक्रिया तथा

(3) अनूदित पाठ के रचियता की भूमिका और संप्रेषण की प्रक्रिया।

(1) मूल पाठ के पाठक की भूमिका और अर्थग्रहण की प्रक्रिया

अर्थग्रहण अनुवाद प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा है, क्योंकि सही अर्थग्रहण के अभाव में सही अनुवाद हो ही नहीं सकता। इस चरण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अनुवादक को ही निभानी होती है। इसके लिए अनुवादक को पाठक की भूमिका निभानी होती है। अर्थग्रहण करने के लिए वह सामग्री का पठन और साथ–साथ विश्लेषण करता जाता है। पाठ में स्थित कथ्य को जानने के लिए उसके अभिव्यक्ति पक्ष पर ध्यान देना ही पड़ता है। पाठ के भाषिक पक्ष को भलीभाँति जान लेने से उसमें निहित संदेश अपने आप उभर कर सामने आता है। डॉ. श्रीवास्तव एवं डॉ. गोस्वामी विश्लेषण के दो संदर्भ निश्चित करते हैं –

(अ) भाषिक स्तर पर विश्लेषण, और

(आ) विषयवस्तु के स्तर पर विश्लेषण।

(2) द्विभाषिक की भूमिका और अर्थांतरण की प्रक्रिया

अर्थांतरण अनुवाद प्रक्रिया का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है। अर्थांतरण के लिए एक अनिवार्य शर्त 'अनुवादक का द्विभाषिक होना' है। अनुवादक द्विभाषिक की भूमिका का निर्वाह करता ही है। उसे एक भाषा में अभिव्यक्त बात को दूसरी भाषा में अंतरित कर देना होता हे। अनुवादक को स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा दोनों ही का सही ज्ञान अपेक्षित होता है। तभी वह सही अनुवाद कर सकता है। डॉ. श्रीवास्तव एवं डॉ. गोस्वामी अनुवाद में अर्थांतरण की समस्या का संबंध पुनर्विन्यास की प्रक्रिया के साथ जोड़ते हैं। अतः अनुवाद एक तरह से पुनर्विन्यास ही है। पुनर्विन्यास के भी कुछ प्रकार होते हैं जिनमें से किसी एक को अपनाकर अनुवादक अर्थांतरण की समस्या का समाधान खोज लेता है। यह मुख्यतः चार प्रकार का होता है –

(1) पूर्ण पुनर्विन्यास

(2) विश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास

(3) संश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास, और

(4) संरचनात्मक पुनर्विन्यास।

(1) पूर्ण पुनर्विन्यास

अर्थांतरण में पुनर्विन्यास की स्थिति में भाषिक इकाइयों का अंतरण नहीं होता, बल्कि संपूर्ण अर्थ का ही अंतरण होता है। स्रोतभाषा की अभिव्यक्ति का शाब्दिक स्तर पर अनुगमन संभव नहीं होता। अतः उसे संपूर्ण रूप से नवीन अर्थ में भावार्थ के साथ अंतरित किया जाता है। कहावतों–मुहावरों आदि के अनुवाद में तो पूर्ण पुनर्विन्यास अर्थांतरण की समस्या को चुटकी भर समय में सुलझा देता है। भाव को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए अनुवाद किया जाता है।

(2) विश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास

इस प्रकार के अंतरण में स्रोतभाषा की एक शाब्दिक इकाई को लक्ष्यभाषा में कई इकाइयों द्वारा अभिव्यक्त करना होता है, भाभी के लिए अंग्रेजीं 'Sister in law' या 'Wife of elder brother' या 'Elder brother's wife' के रूप में विश्लेषण के साथ पुनर्विन्यास करना पड़ता है।

(3) संश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास

यह विश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास के ठीक विपरीत है। इसमें स्रोतभाषा की कई शाब्दिक इकाइयों को लक्ष्यभाषा

की एक ही संश्लिष्ट इकाई के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, हिंदी 'पति और पत्नी' के लिए अंग्रेजी में 'spouse' के रूप में विकल्प विद्यमान हैं तथा 'spouse' के रूप में विकल्प रूप में हिंदी में 'दम्पत्ति' विद्यमान है। अंग्रेजी 'Father in law' के लिए हिंदी में एक संश्लिष्ट इकाई 'ससुर' विद्यमान है।

(4) **संरचनात्मक पुनर्विन्यास**

इस प्रकार के अंतरण में किसी व्याकरणिक प्रकार्य को व्यंजित करने वाले प्रकार्यात्मक शब्द को लक्ष्यभाषा की अन्य व्याकरणिक संरचना द्वारा अभिव्यक्त किया जाता हे। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में आर्टीकल a और 'the' के निम्नलिखित प्रकार्य देखिए

There is a cat in the kitchen.

रसोईघर में बिल्ली है।

There is the cat in the kitchen.

बिल्ली रसोईघर में है।

अनुवाद से आशय अंतरण मात्र नहीं है अपितु अर्थांतरण है और यह अर्थांतरण समतुल्यता के सिद्धांत के आधार पर किया जाता है। इसमें अर्थ का प्रतिस्थापन होता है। स्रोतभाषा पाठ में निहित अर्थ के अनुरूप अभिव्यक्ति लक्ष्यभाषा में ढूँढनी होती है और यही खोज अर्थांतरण है।

(3) **अनूदित पाठ के रचयिता की भूमिका और संप्रेषण की प्रक्रिया**

तीसरे चरण में आकर अनुवादक रचयिता की भूमिका का निर्वाह करता है। इसमें अनुवादक से संप्रेषण की उम्मीद की जाती है। अर्थग्रहण और अर्थांतरण से अनुवादक जितना भी कथ्य प्राप्त कर लेता है उसे इस चरण में जाकर अनुवाद का रचयिता बनकर पाठकों तक संप्रेषित करने का प्रयत्न करता है। इसे पुनर्गठन ही कहा जा सकता है। अनुवादक इस चरण में आकर पुनर्गठन करता है, लेकिन पुनर्गठन करते समय अनुवादक ध्यान रखे कि अनुवाद मौलिक कृति नहीं बल्कि मूल का सहपाठ हो। सहपाठ से तात्पर्य है कि अनूदित पाठ ठीक वही प्रकार्य करे जो मूल पाठ करता है। अर्थ के संप्रेषण में न कुछ घटाया जाए और न कुछ बढ़ाया जाए। शत–प्रतिशत संप्रेषण का दबाव अनुवादक पर बना रहता है। वह कुछ स्वतंत्रता ले सकता है लेकिन उसे यह देखना चाहिए कि उसका अनुवाद सहपाठ बना रहे। अनुवाद करते समय उसे अर्थ की ही नहीं बल्कि अभिव्यक्ति की समतुल्यता भी बनाए रखनी होती है ताकि अनूदित पाठ सही अर्थों में मूलपाठ का सहपाठ कहलाए। इस समतुल्यता का संबंध पाठपरक उपादानों के साथ जोड़ा जा सकता है। डॉ. श्रीवास्तव एवं डॉ. गोस्वामी इसे दो रूपों में विभाजित करते हैं –

(1) भाषिक उपादान, और

(2) विधापरक उपाधान

(1) भाषिक उपादान में भाषा शैलियाँ और प्रयुक्ति शैलियाँ शामिल हैं। हिंदी में संस्कृतनिष्ठ हिंदी, उर्दूनिष्ठ हिंदी तथा हिन्दुस्तानी – ये तीन भाषा शैलियाँ प्रचलित हैं। आजकल हिंग्लिश अर्थात् हिंदी+इंग्लिश शैली भी खिचड़ी

शैली के रूप में हिंदी में प्रचलित हो गई है। प्रयुक्तियों की दृष्टि से अनुवादक प्रयुक्ति क्षेत्र (विज्ञान, साहित्य, कार्यालय, आदि की भाषा का), प्रयुक्ति प्रकार (मौखिक, लिखित), प्रयुक्ति शैली (रूढ़िगत, औपचारिक, अनौपचारिक, सामान्य, अंतरंग) पर विशेष ध्यान दें। स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा के प्रयुक्ति संदर्भों में स्थित विषमताओं को ध्यान में रखकर अनुवादक पाठ का भाषिक दृष्टि से पुनर्गठन करे।

(2) पुनर्गठन का दूसरा पक्ष विधा से जुड़ा हुआ है। इसमें विधा (Form) के बाह्य रूप के साथ–साथ उसकी आंतरिक प्रकृति भी देखनी चाहिए। इसमें अनुवादक कुछ स्वतंत्रता बरत सकता है। वह गद्य पाठ को पद्य पाठ में, पद्य पाठ को गद्य पाठ में परिवर्तित कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय उसे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनूदित पाठ हर हालत में मूल के निकट हो। साथ ही, वह इस चरण में रचयिता की भूमिका का निर्वाह भले ही कर रहा हो, फिर भी, उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि वह पाठ का मूल रचयिता नहीं है, बल्कि वह समानांतर पाठ का निर्माण कर रहा होता है। वह जो भी समतुल्यता के आधार पर पाठ तैयार करे वह पाठ लक्ष्यभाषा की प्रकशति के अनुरूप हो। इस प्रकार डॉ. श्रीवास्तव एवं डॉ. गोस्वामी द्वारा प्रवर्तित अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक तिहरी भूमिकाएँ निभाता है। वह पाठक बनकर अर्थग्रहण करता है, द्विभाषिक बनकर अर्थांतरण करता है तथा लक्ष्यभाषा के पाठ का रचयिता बनकर संप्रेषण–सर्जन–पुनर्गठन करता है। डॉ. सुरेश कुमार ने अनुवाद प्रक्रिया के इन सोपानों को क्रमशः विज्ञान, कौशल और कला की श्रेणी में रखकर कहा है कि – "एक सीमा तक तथा कुछ शिथिल रूप में कहा जा सकता है कि अनुवाद प्रक्रिया का प्रथम सोपान विश्लेषण बोधन, विज्ञान है, दूसरा सोपान संक्रमण, कौशल है, तथा तीसरा सोपान पुनर्गठन, अभिव्यक्ति कला है।

इस प्रकार भारतीय चिंतकों के अनुवाद प्रक्रियागत विचारों के आलोक में अनुवाद प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण निश्चित किए जा सकते हैं :

(1) पाठ–पठन, (2) पाठ विश्लेषण, (3) भाषांतरण, (4) समायोजन, (5) मूल से तुलना, (6) पुनरीक्षण तथा (7) अनुवाद–मूल्यांकन।

15.4 सारांश

विद्यार्थियो! उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक सफल और अच्छे अनुवाद हेतु अनुवाद प्रक्रिया को प्रयोग में लाना अति आवश्यक है ताकि अनुवाद में आने वाली कठिनाइयों को साथ–साथ दूर किया जा सके। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों से स्पष्ट है कि पाठ–पठन, पाठ विश्लेषण, भाषांतरण, समायोजन, मूल से तुलना की प्रक्रिया से गुजरते हुए अनुवाद कर्म को सफल बनाया जा सकता है।

15.5 कठिन शब्द

1. भाषांतरण 2. अभिव्यंजना 3. अर्थांतरण 4. पुनर्गठन 5. व्याकरणिक 6. संप्रेषणीयता 7. पर्यालोचना 8. संश्लेषणात्मक 9. पुनर्विन्यास 10. सर्जन

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नाइडा और न्यूमार्क की अनुवाद प्रक्रिया की तुलना कीजिए।

....
....
....
....
....
....

2. अनुवाद प्रक्रिया के चरणों को स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....
....
....

15.7 सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. अनुवाद : प्रक्रिया एवं परिदृश्य, डॉ. रीतारानी पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
2. अनुवाद साधना, डॉ. पूरनचन्द्र टण्डन, अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली, 1998
3. अनुवादशास्त्र : व्यवहार से सिद्धांत की ओर, प्रो. हेमचन्द्र पांडे, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
4. अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं प्रयोग, प्रो. राजमणि शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला

अनुवाद : महत्व और सीमाएं

16 रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 अनुवाद का महत्व

16.4 अनुवाद की सीमाए

16.4.1 भाषापरक सीमाए

16,4.1.1 शिष्ट अभिव्यक्तियाँ

16.4.1.2 निरूपक भाषा के अंश

16.4.1.3 संदर्भ प्रबोधक नाम

16.4.1.4 सामाजिक भाषा शैलियाँ

16.4.2 सामाजिक–सांस्कृतिक सीमाएं

16.4.3 पाठ की प्रकृतिपरक सीमाएँ

16.5 सारांश

16.6 कठिन शब्द

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

16. रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में यदि अनुवाद की उपादेयता एवं महत्त्व को देखें तो विश्व स्तर पर आज अनुवाद की आवश्यकता है। अनुवाद प्राचीन काल से प्रयोग में आता रहा है और आज भूमंडलीकरण के दौर में 'ट्रांसलेशन' ने इसके बहुमुखी उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है। विश्व भर में आज अनुवाद की आवश्यकता महसूस की जा रही है और विभिन्न क्षेत्रों यथा व्यवसाय, धर्म, राजनीति, शिक्षा, साहित्य आदि में इसका महत्त्व स्वयं सिद्ध है। अनुवाद कर्म सरल कार्य नहीं है यह भी पूर्ण रूप से स्पष्ट है। अनुवाद कर्म में अनेक सीमाएं हैं जिससे इस कार्य में कठिनाई होती है। इस पाठ में आप इन बिन्दुओं का पूर्ण अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य

विद्यार्थियो! इस अध्याय के अध्ययनोपरांत आप

– अनुवाद के महत्त्व को समझ सकेंगे

– अनुवाद की सीमाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

16.3 अनुवाद का महत्व

अनुवाद के महत्व को देखते हुए उसे एक सांस्कृतिक सेतु की संज्ञा प्रायः दी जाती है। भारतीय अनुवादवेत्ता जी. गोपीनाथन ने 'अनुवाद : सिद्धांत और प्रयोग' में अनुवाद को विश्व की एक सांस्कृतिक अनिवार्यता मानते हुए कहा है कि 'अनुवाद का तात्पर्य दो भाषाओं की भिन्नताओं की तह में जाकर मानवीय अस्तित्व के समान तत्वों को प्रकाश में लाना होता है। मानव की खोई हुई सार्वभौम सामान्य भाषा की मिथकीय कल्पना यहाँ चरितार्थ होती है। संस्कृति के व्यतिरेक के कारण भाषाओं की संरचना तथा अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न हो जाती है। एकता के बिंदु प्रायः नजर नहीं आते। ऐसी स्थिति में बहुभाषा–भाषी विश्व जनता के बीच अनुवाद एक सुदृढ़ सांस्कृतिक सेतु का कार्य करता है। यह एक ऐसा सेतु है जिसके माध्यम से समय तथा दूरी के अंतराल को पार किया जा सकता है। अनुवाद के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ. रामचंद्र प्रसाद ने दूसरे शब्दों में कहा है कि अनुवाद भाषागत विविधता में एकता का सूत्र स्थापित करता है। एक स्रोत भाषा में लेखबद्ध विचारों और भावों को अन्य (लक्ष्य) भाषा में सुलभ कराता है। भाषा के कारण एक–दूसरे से विच्छिन्न संस्कृतियाँ अनुवादकों के भागीरथ प्रयत्न से अभिसिंचित होने के कारण हरी–भरी बनी रहती हैं और उनके जीवन में प्रवाह और गति, समृद्धि और ऊर्जास्विता निरायास देखने को मिलती है।

अनुवाद के महत्व को रेखांकित करने और उसकी अपरिहार्य आवश्यकता को इंगित करने के लिए पाश्चात्य जगत वाले पवित्र बाइबिल की एक कथा का हवाला देते हैं जिसमें ईश्वर ने संभवतः कुपित होकर समस्त पृथ्वीवासियों की भाषाओं में भिन्नता भर दी। (देखें, देरिदा द्वारा प्रस्तुत इस कथा का युक्ति–युक्त विश्लेषण)। वह मीनार इसीलिए नहीं बन सकी क्योंकि भाषाएँ अनेक हो गई, भाषा एक न रही। बेबेल की मीनार की कथा बताती है कि किस प्रकार समस्त विश्व भिन्न–भिन्न भाषा खंडों में विभक्त हो गया और तब अनुवाद की आवश्यकता आन पड़ी। भाषा की दीवार और भाषाओं की बोधगम्यता तथा अबोधगम्यता को दूर करने के लिए अनुवाद और अनुवादक की आवशयकता रही है। अनुवाद की पाश्चात्य परंपरा का उत्स ग्रीक रोमन युग में देखा जाता है और अनुवाद की भारतीय परंपरा का उदय वैदिक युग में खोजा जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के शिलालेखों, ग्रंथों, ताम्रपत्रों, अभिलेखों, सिक्कों, मुहरों आदि में उत्कीर्ण और लिखित सूचनाओं के अंबार पर दृष्टिपात करने पर अनुवाद कार्य के प्रमाण मिलते हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत के अभिलेख ही नहीं तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि भाषाओं के परस्पर अनुवाद कार्य के प्राचीन दस्तावेज व चीनी, ग्रीक, रोमन तिब्बती भाषाओं में भारतीय ज्ञान का उत्था भी प्रमाण हैं। कई विद्वान यह मानते हैं (देखें, आचार्य बलदेव अपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास) कि प्राकृत काव्य संस्कृत काव्य के उत्तेजना देने वाला प्राचीनतम काव्य है जिसका अनुवाद करके ही संस्कृत भाषा में काव्य जन्मे। ईसा पूर्व के भारतीय जीवन का पश्चिम

से जो संबंध रहा वह व्यापार मात्र न था, सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी था और जिसमें अनुवाद और अनुवादकों का योगदान रहा होगा इसमें सन्देह नहीं। इस इतिहास चर्चा को अन्यत्र देखना चाहिए और यहाँ बस इतना ही कहा जा सकता है कि अनुवाद 'साहित्यिक तथा सांस्कृतिक वैभव का समर्थ मापक' है और केवल एक भाषा के पाठ की दूसरी भाषा में अभिव्यक्ति मात्र नहीं।

अनुवाद के महत्व को तथा उसकी भूमिका को नजर अंदाज करना ठीक नहीं। प्राचीन ग्रीक साहित्य हो या हमारा अपना संस्कृत साहित्य, अनुवाद के सहारे ही यह विश्व व्यापी हुआ। यूँ तो अनुवाद को रोमन लोगों की खोज माना जाता है किंतु पाश्चात्य साहित्य में लैटिन के अनुवाद का भी महत्व रहा। सिसरो और होरेस के अनुवाद चिंतन ने परवर्ती अनुवादकों को मार्गदर्शन दिया। ईसाई मत के प्रचार के लिए अनुवाद का प्रयोग कारगर भी रहा और विवादास्पद भी। बाइबिल के अनुवाद की एक विलक्षण परंपरा रही है और नाइडा इसी परंपरा की अद्‌भुत कड़ी है। यूरोप की उपनिवेशवादी शक्तियों के उत्थान व प्रसार में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना में अनुवाद भी सहायक हुआ। 1798 में ही कालिदास की शकुंतला का अनुवाद हो गया था। मैक्समूलर, शॉपेनहावर, लेगल आदि जर्मन विद्वानों का वर्चस्व अनुवाद के कारण ही है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सामाजिक परिवर्तन की जो हवा चली, उसे अनुवाद ने तेजी दी। भारतेंदु हरिशचंद्र की निम्नांकित पंक्तियां भारतीय जीवन में अनुवाद के महत्व को अंगीकार करती है :

पै सब विद्‌या की कहूँ होय जु पै अनुवाद
निज भाषा में तॉ सबै कॉ लेहें स्वाद
जानि सकैं सब कुछ सबहि विविध कला के भेद
बनै वस्तु, कल कति इतै मिटे दीनता खेद।।

अनुवाद के माध्यम से हीनता ग्रंथि (Inferiority Complex) की जड़ मिट सकती है, यह भारतेंदु ने बताकर अनुवाद के महत्व को प्रतिपादित किया। अनुवाद के द्वारा ही हमारी सोच में परिवर्तन हुआ। यदि हाँ, रामविलास शर्मा मार्क्स की कृति 'दा कैपिटल' का 'पूँजी' के रूप में हिंदी अनुवाद प्रस्तुत न करते तो मार्क्सवाद की गति कैसे बढ़ती? सभी विकसित देशों की तरह भारत में भी अनुवाद के माध्यम से राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक प्रगति हुई है। नई दुनिया, वैश्विक परिवेश और अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में टिके रहने के लिए अनुवाद चाहिए। अब समय आ गया है कि अंग्रेजी के माध्यम से ही नहीं बल्कि भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद के साथ ही अंग्रेजी से इतर भाषाओं से भी सीधे अनुवाद हो। कभी आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जनता में व्याप्त धर्मान्धता, आध्यात्मिक जड़ता, अज्ञानमूलक कठमुल्लावाद आदि बुराइयों को दूर करने के लिए और नई दुनिया और दृष्टि से परिचित कराने के लिए हैकल की पुस्तक 'रिडिल्स ऑफ दि यूनिवर्स' का 'विश्व–प्रपंच' नाम से अनुवाद किया था। हमें दाराशिकोह के उपनिषदों के अनुवाद से लेकर आज तक की परंपरा के महत्व को समझते हुए यह कहने में गर्व होना चाहिए कि इस क्षेत्र में भारतीय

योगदान नगण्य नहीं, अपितु अग्रगण्य है।

अनुवाद के द्वारा विश्व साहित्य के हस्तामलकवत प्राप्त कर हम अलौकिक आनंद प्राप्त कर सकते हैं। एक समय था जब संयुक्त रूस (U.S.S.R) के दो प्रकाशन 'प्रगति प्रकाशन' और 'रादुका प्रकाशन' भारत की अनेक भाषाओं में रूसी साहित्य उपलब्ध कराते थे और प्रेमचंद समेत अनेक पाठक–अनुवादक लाभान्वित होते थे। मार्क्स अनुवाद कला से पूर्णतः परिचित थे और अनुवादकों को परामर्श दिया करते थे। यूनेस्को द्वारा प्रकाशित अनुवादों का महत्व चिरस्मरणीय रहा है। जोजेफ टी. शिप्ले ने 'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर' में लिखा है – श्रेष्ठ रचनाएँ जितनी भाषाओं में उपलब्ध हैं, उतनी भाषाओं का ज्ञान हासिल करना किसी भी मनीषी अध्येता या पेशेवर विद्वान के लिए संभव नहीं है। इसीलिए साहित्यिक अनुवाद परिहार्य है। चूकि हमें रूसी का ज्ञान नहीं, इसलिए ही हम दोस्तेयवस्की के उपन्यास 'क्राइम एंड पनिशमेंट' के अध्ययन से वंचित रह जाए – यह बड़ी भूल होगी। यह वैसी ही भूल होगी जैसी कि हिब्रू न जानने वाले 'बुक ऑफ जॉब' से अपरिचित रह जाए। किसी भी महान कलाकृति की भाषा को सभी पढ़ ही लें, यह कदापि संभव नहीं है। स्पष्ट है कि अनुवाद में मूल लेखक के मनोभाव, उसकी अनुभूतिया, लिखित शब्द और नाद अपना सूक्ष्म संतुलन खो बैठते हैं। परंतु इस घाटे से बचने का सवाल ही पैदा नहीं होता। हाँ, इस हानि से बढ़ा–चढ़ाकर, अतिरंजना के साथ, वर्णित करने की परिपाटी अवश्य ही देखी जाती है। इतालवी कहावत 'अनुवादक–विश्वासघाती' (Traduttore, tradition) किसी भुक्तभोगी लेखक की अतिशयोक्ति के अलावा और कुछ नहीं। ग्रंथों के वैशिष्ट्य, उनके सौंदर्य, भाव–वैभव और प्रतीकों की सटीकता–प्रभ–विष्णुता में सन्निहित होते हैं, न कि उनकी भाषा की ध्वनि में। कृति जितनी ही महान होगी रूपांतरण से उसकी उतनी ही कम क्षति होगी। टॉमस हूड के श्लेषों, स्विनबर्न के अनुप्रासो, 'उलालुम' के गीतों–झूमरों, 'दे बेल्स' की खड़खड़ाहटें, एडवर्ड लियर की 'योगंगी–बोंगी–वो' के विपुल वाद्यवृंदाकरण, को अनूदित नहीं किया जा सकता। लेकिन 'जेनेसिस' की गरिमा (जैसा कि लोंगिनुस ने कई सदी पूर्व कहा था) और 'डिवाइन कामेडी' की प्रगाढ़ता–ऊर्जस्विता अनुवाद की अग्नि परीक्षा से बेदाग निकल आती हैं।' शिप्ले के मत में पाठक पढ़ते समय लेखक की रचनाओं का एक अनुवाद स्वयं भी करता चलता है और उसकी निजी अनुभूतियों के आलोक में एक नए अर्थ की सृष्टि होती है।

सर्जनात्मक साहित्य के क्षेत्र में साहित्य अकादमी द्वारा कराए जा रहे अनुवाद कार्यों का भारतीय जीवन में महत्व है। साहित्येतर अनुवाद के नए आयामों, जिन्हें ज्ञान–प्रधान साहित्य भी कहा जाता है, ने अपना वर्चस्व स्थापित किया है और पारिभाषिक शब्दावली समेत इनकी अनेक समस्याएँ भी हैं। अर्थशास्त्र, वाणिज्य, बैंकिंग, विधि, अभियंत्रिकी, प्रशासनिक, पत्रकारिता, शिक्षा, गणित, विज्ञान, कंप्यूटर, मशीन, आयुर्विज्ञान आदि क्षेत्रों में अनुवाद का महत्व और उपादेयता असंदिग्ध है। यदि हिंदी को विश्व भाषा बनाना है तो अनुवाद से उसे समृद्ध करते रहना होगा। साथ ही हिंदी में ही नहीं हिंदी से भी अनुवाद करने होंगे।

अनुवाद किसी शून्य में अस्तित्व नहीं पाता, इसकी पृष्ठभूमि में एक अनवरत विनिमय का एक साधन है। अनुवाद एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें तमाम तरह की भाषाई और सांस्कृतिक सीमाएँ लाँघी जाती हैं। जैसा

पहले समझा जाता था, अनुवाद कोई निश्छल, निर्विकार और मासूम तथा पारदर्शी कृत्य नहीं। यहाँ काई समानता, समतुल्यता और समदर्शन नहीं। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा (1965) ने कहा था, 'मूल लेखक इस दृष्टि से सदा सौभाग्यशाली रहता है और अनुवादक कितना भी अच्छा क्यों न हो, उसे वह गौरव नहीं मिलता। स्वभावतः प्रथम श्रेणी का अनुवाद प्रस्तुत करने की अपेक्षा द्वितीय श्रेणी का सर्जनात्मक साहित्य प्रस्तुत करने की प्रेरणा बढ़ती है। जब तक अनुवाद के संबंध में हमारी परंपरागत धारणा में परिवर्तन नहीं होता तब तक सफल अनुवादों का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।' ऐसी परंपरागत धारणाएँ अब परिवर्तन की ओर अग्रसर हैं। अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में हुई अधुनातन गवेषणा और लेखन ने यह जोर देकर कहा है कि अनुवाद मूल से कमतर कदापि नहीं। (Recent work in translation studies had challenged the long standing notion of the translation as inferior or the original. Bassnett and Trivedi, Page 2)। प्रसिद्ध साहित्यकार ओक्टवियों पाज ने कहा है कि विश्व की समझ पाने के लिए अनुवाद प्रमुख साधन है। विश्व, वे कहते हैं, हमारे समक्ष पाठों का एक बढ़ता हुआ ढेर (a growing heap of texts) है और समस्त ज्ञान अनुवादों के अनुवाद का अनुवाद है। हर पाठ अपूर्व है और साथ ही किसी अन्य पाठ का अनुवाद भी है। हर पाठ नकल है, कोई टैक्स्ट पूर्णतः 'मूल' या 'मौलिक' नहीं क्योंकि भाषा ही मूलतः पूर्वतः अनुवाद है – भाषा क्या है भावों का लंगड़ाता–सा अनुवाद – भाषा अव्यक्त विश्व का अनुवाद है और हर संकेत और हरेक पद दूसरे संकेत और पद का अनुवाद है। इस मत को आप प्रतिक्रियावादी मानेंगे पर है ऐसा ही, क्योंकि अनुवाद कोई क्षेपकीय या हाशिए पर धरी वस्तु नहीं यह भी 'मूल' है क्योंकि इसके कारण ही 'मूल' 'मूल' कहा जाता है। मौलिकता की दुहाई देने वालों को कारलोस फ्यून्टस (Fuentes 1990 : 70) की पंक्ति स्मरण रखनी चाहिए– मौलिकता एक व्याधि है। (originality is a sickness)। लैटिन अमेरिकी लेखकों से यदि आप परिचित हैं तो जान सकेंगे कि अनुवाद और अनुवाद परंपरा के मठ और मठाधीशों के वर्चस्व को समाप्त करना कितना लाभकारी होता है। उपनिवेशवादी विचारधारा के अनुसार यूरोपीय औपनिवेशिक साम्राज्य के प्रसार और अमेरिकी प्रभुता के प्रसार के रूप में अनुवाद की भूमिका केंद्रीय है। भारतीय अनुवादवेता तेजस्विनी निरंजना तो यहां तक कहती है कि अनुवाद एक ओर तो उपनिवेशवाद के द्वारा एक सांचे में ढलता गया दूसरी ओर उसने उसे साँचे में ढाला भी। (Translation both shapes and takes shape with in the asymmetrical relations of poer that operates under colonialism. 1992 : 2)। उत्तर उपनिवेश काल में, सलमान रुश्दी कहते हैं, हमने अनुवाद लेखन के माध्यम से भी साम्राज्यवादी ताकतों पर पलटवार किया है।

16.4 अनुवाद की सीमाएँ

अनुवाद सीमा का पहला छोर तो स्रोत भाषा पाठ है और दूसरा छोर लक्ष्य भाषा पाठ। यहां अनुवाद की सीमा से तात्पर्य है – अनुवाद प्रक्रिया के क्षणों में अनुवादक के समक्ष आने वाली कठिनाइयाँ। वस्तुतः अनुवादक भले ही दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञाता हो, दोनों भाषाओं की सामाजिक–सांस्कृतिक भाषिक व्यवस्था से पूर्णतया

परिचित हो तो भी भाषिक संरचना एवं सामाजिक–सांस्कृतिक भाषिक संदर्भ हर भाषाओं के इतने जटिल होते हैं कि उनका स्रोतभाषा में पर्याय खोजना आसान नहीं। यहां आकर अनुवादक अपनी शक्ति–सामर्थ्य की सीमा से परिचित होता है। अर्थात् सीमा से तात्पर्य होता है – वह स्थिति जहां कोई विज्ञान या शिल्प अक्षमता अनुभव करे। अनुवाद एक कौशल भी है और विज्ञान भी। कौशल के धरातल पर अनुकरण पूर्ण होना चाहिए और वैज्ञानिक धरातल पर भी उसकी प्रस्तुति सटीक होनी चाहिए। किंतु सच यह है कि स्रोत–भाषा पाठ को न तो पूर्णतया लक्ष्य–भाषा में अनूदित किया जा सकता है और न ही यह कहा जा सकता है कि उसका अनुवाद संभव नहीं है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो किसी कार्य को असंभव नहीं मानता। किंतु अनुवाद के धरातल पर अनुवादक के सामने जहां भाषिक अभिव्यक्ति की समस्या खड़ी होती है वहीं भाषा–परक सामाजिक–संदर्भ–सापेक्ष होती है। हर शब्द अपने भाषिक समुदाय की एक अलग कहानी कहते हैं। ठीक इसी तरह से वे सांस्कशतिक धरातल पर भी एक विशेष संस्कृति के संवाहक होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी के निम्नलिखित शब्दों को लीजिए – 'गाय', 'कर्म', 'लोटा'। 'गाय' का रूपान्तर जानवर विशेष के संदर्भ में तो अंग्रेजी भाषा में 'ब्ू' के रूप में मिल जाएगा किन्तु जिस पूज्य भाव और अर्थ में 'गाय' का प्रयोग हिन्दी–भाषा–समुदाय में होता है? उत्तर होगा – नहीं। ठीक ऐसा ही शब्द है 'कर्म'। 'कर्म' के लिए अंग्रेजी में शब्द हो सकते हैं – action और performance। किन्तु भारतीय संस्कृति में 'कर्म' जहां वर्तमान जीवन में जीवन मुक्ति का माध्यम है, वहीं पूर्वजन्म के संदर्भ हमें वह जीवन का प्रदाता भी है। किन्तु 'बजपवद' और "performance"में यह सांस्कृतिक भाव सन्निहित नहीं हैं। अगला शब्द है – 'लोटा'। यह हिन्दी में सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान का कारक भी है, और साथ–ही–साथ दैनिक जीवन में प्रयुक्त होनेवाली एक वस्तु विशेष भी। अंग्रेजी में इससे कुछ मिलते–जुलते, ऐसे कार्य संपादन में सहायक शब्द हैं – jug, mug तथा pot। किन्तु ये तीनों शब्द न तो लोटा के आकार–प्रकार के हैं और न ही दैनन्दिन जीवन में उस वस्तु के रूप में प्रयुक्त होते हैं जैसे लोटा का प्रयोग हिन्दी भाषी क्षेत्रों में होता है। इस प्रकार भाषिक दशष्टि से 'लोटा' शब्द की अभिव्यक्ति भी अंग्रेजी में संभव नहीं है। यहां अनुवादक को अपनी सीमा का भान होता है। क्योंकि स्रोत भाषा की समस्त भाषिक सामग्री भी उसका साथ नहीं दे पाती। हर भाषा के नाते–रिश्तों की शब्दावलियां भी प्रायः इसी तरह की होती हैं। हिन्दी का ही उदाहरण लें – 'ननद' और 'साली' दोनों के लिए अंग्रेजी रूपांतर है – 'ेपेजमत पद सूं'। हिन्दी जहां दोनों में अन्तर है वहीं अंग्रेजी में अन्तर प्रतीत नहीं होता। 'ननद' एक ऐसी नारी का रूप है जो अपनी भाभी को कष्ट भी देती है और प्यार भी। वहीं 'साली' एक रागात्मक संबंध का परिचायक है। हिन्दी की इस सामाजिक प्रवृत्ति की सूचना का लेशमात्र परिचय या संकेत sister in law में ही नहीं मिलता। 'देवर–भाभी', 'जीजा–साली', जैसी हिन्दी की अभिव्यक्तियां भी अन्य अभारतीय या हिंदूतर–समुदाय की भाषाओं में उपलब्ध नहीं। वस्तुतः भाव की दृष्टि से एक विशेष अर्थ और सांस्कृतिक, सामाजिक सूचना तथा अर्थ को ये शब्द अपने में समेटे हैं। इसे शब्द–धरातल पर नहीं आंका जा सकता। ठीक ऐसे ही शब्द हैं – व्रत, त्यौहार और पर्व के। जैसे – होली, दीपावली, रक्षाबंधन आदि। इन्हें लक्ष्य भाषा में भाषिक रूपान्तर दे पाना संभव नहीं है। विशेषकर अंग्रेजी में। क्योंकि उनके यहां तो ये त्यौहार न तो सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हैं और न ही सांस्कृतिक संदर्भ रखते हैं। इसलिए इन शब्दों के अनुवाद में विशेषकर लक्ष्य भाषा में रूपांतर

की खोज में अनुवादक अपने को असमर्थ पाता है।

एक ऐसा शब्द है – 'भात देना' या 'भात खिलाना'। हिन्दू और हिन्दी समुदाय में यह शब्द भाई–चारे को पुष्ट करने, अथवा पवित्र होने का प्रतीक है। क्या इसका अनुवाद संभव है? उत्तर नहीं में ही होगा।

इन समस्त समस्याओं पर 'कैटफोर्ड' ने विचार किया था। इसीलिए उन्होंने अनुवाद की दो प्रकार की सीमाएं बताई – (1) भाषापरक और (2) सामाजिक–सांस्कृतिक। वस्तुतः भाषापरक सीमा वह सीमा है जहां अनुवादक लक्ष्य भाषा में समतुल्य भाषा स्वरूप प्रस्तुत नहीं कर पाता है। भाषा संरचना का मूलाधार 'शब्द' सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ सापेक्ष्य होता है। वह उसका संवाहक होता है। इसकी अभिव्यक्ति कितनी कठिन है, इसका संकेत ऊपर किया जा चुका है।

'पापोबिच' का मत है कि भाषापरक समस्या दोनों भाषाओं की भिन्न संरचनाओं के कारण उठ सकती है, किन्तु सामाजिक–सांस्कृतिक समस्या सर्वाधिक जटिल होती है। 'पोपोबिच' की यह भी मान्यता है कि भाषापरक और सामाजिक–सांस्कृतिक समस्यायें एक दूसरे के साथ गुंथी हुई हैं। अतः इनका विवेचन एक दूसरे को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। वास्तव में सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों के अलगाव से उत्पन्न समस्याएं अनुवादक की सर्वाधिक जटिल समस्याएँ हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति के 'विवाह' अथवा 'श्राद्ध' का अर्थ न तो क्रमश marriage हो सकता है न तो 'last rite'। क्योंकि भारतीय सन्दर्भ में 'विवाह' एक पवित्र संबंध की सामाजिक–सांस्कृतिक स्वीकृति है। ठीक ऐसा ही किसी की मृत्यु के बाद किया जाने वाला 'श्राद्ध कर्म' भी एक तरफ सामाजिक मान्यताओं से आपूरित है और दूसरी तरफ भारतीय श्रद्धा का तथा रीति–रिवाज और परंपरा का संवाहक भी है। उपर्युक्त रूपांतर द्वारा इन शब्दों का प्रतिस्थान अंग्रेजी या अन्य यूरोपीय भाषाओं में संभव नहीं हो सकता। यही स्थिति भाषा के व्याकरणिक अथवा कोषीय रूपों की भी है। निम्नलिखित उदाहरण को लें – 'पिताजी आ रहे हैं।' इसका अंग्रेजी रूपांतर होगा – Father is coming' व्याकरणिक धरातल पर हिन्दी वाक्य की क्रिया बहुवचन में प्रयुक्त है। भारतीय सामाजिक परिवेश में 'पिता' आदर–सूचक शब्द हैं, यही कारण है कि हिन्दी संरचना में 'पिता' शब्द के साथ प्रयुक्त क्रिया–रूप बहुवचन होगा। इस समस्या के भी प्रयास–अनुवाद वैज्ञानिकों ने समतुल्यता का सहारा लेकर। संदर्भ और सामग्री के समान और उपयोगी अभिलक्षणों की दृष्टि से स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा के पाठों के परस्पर संबंधों को देखा जाता है। पर इस दृष्टि से भी अनेक भाषिक रूपों का अनुवाद नहीं हो पाता है। सामाजिक सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां भी समस्या खड़ी करती हैं। साथ ही पाठक और पाठ की प्रवृत्ति भी अपनी विशेष भूमिका निभाती है जो स्रोतभाषा के पाठ और लक्ष्यभाषा के परस्पर परिवर्तन पर आधृत हैं। इसलिए कहा गया है कि "अनुवाद की समस्या असमाधेय है।"

'कैटफोर्ड' द्वारा बताई गई उपर्युक्त दो सीमाओं के अतिरिक्त पाठ की प्रकृति के आधार पर भी अनुवादक के समक्ष कठिनाई आती है। अतः सुस्पष्ट विवेचन हेतु तीसरी सीमा को स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं है। यह है – पाठ प्रकृति परक। इस प्रकार अनुवाद की तीन सीमाएं हुई – (1) भाषापरक सीमाएँ, (2) सामाजिक–सांस्कृतिक सीमाएँ और (3) पाठ–प्रकृतिपरक सीमाएँ।

16.4.1 भाषापरक सीमाएँ

प्रायः स्रोतभाषा पाठ और लक्ष्यभाषा पाठ की अपनी अलग भाषिक संरचना होती है। इसलिए दोनों भाषिक रूपों में समान अर्थ मिलने की स्थिति बहुत कम होती है जबकि वे एक ही स्थिति में कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए – 1. 'लड़की पढ़ रही है' और 2. 'लड़की पढ़ा रही है।' इन दोनों अभिव्यक्तियों का अनुवाद अंग्रेजी में कैसे संभव होगा। 'पढ़' हिन्दी में जहां स्वयं के लिए प्रयुक्त है, वहीं 'पढ़ा' दूसरे के प्रति की जा रही क्रिया का द्योतक है। अब प्रश्न उठता है कि इसी समान संरचना में लक्ष्य भाषा अर्थात् अंग्रेजी में इसे कैसे प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी तरह से स्रोतभाषा के समान वाक्यों में सूक्ष्म अर्थ की प्राप्ति होती है लेकिन उनका अंतरण लक्ष्य भाषा में कर पाना संभव नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए हिन्दी के निम्नलिखित वाक्यों को लें –

1. उसे पढ़ना चाहिए।
2. उसे पढ़ना ही चाहिए।
3. उसे पढ़ना होगा।
4. उसे पढ़ना ही होगा।
5. उसे पढ़ना ही है।

उपर्युक्त पांच वाक्यों में से केवल प्रथम तीन वाक्यों का अंग्रेजी में अनुवाद संभव है किन्तु अन्य दो वाक्यों का अंग्रेजी में अनुवाद संभव नहीं –

1. He should to read.
2. He should read.
3. He must read.

प्रायः भाषा पक्ष के रूपात्मक गठन के अंतर्गत कुछ ऐसे बिन्दु होते हैं जिनके अनुवाद पर्याय इसलिए नहीं मिलते हैं कि इनका उपयोग मूल लेखक पाठक के लिए करता है। वे हैं – (क) शिष्ट अभिव्यक्तियाँ, (ख) शनिरूपक भाषा के अंश, (ग) संदर्भ प्रबोधक नाम तथा (घ) सामाजिक भाषा शैलियाँ।

16,4.1.1 शिलष्ट अभिव्यक्तियाँ

हर भाषा में ऐसे शब्द होते हैं जो श्लेषात्मक अर्थात् एक से अधिक अर्थ देते हैं : यथा – हिन्दी का शब्द – 'कनक'। कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय' – बिहारी। प्रायः मूल लेखक का लक्ष्य एक कथन द्वारा एक साथ एक से अधिक अर्थों का संप्रेषण होता है, जरूरी नहीं कि दूसरी भाषा में, यह शब्द श्लेषात्मक ही हों। समान स्थिति न मिलने पर अनुवाद में यह अवरोधक बन जाता है।

16.4.1.2 निरूपक भाषा के अंश

कतिपय भाषाओं में कुछ ऐसे षब्द होते हैं। जो एक विशिष्ट व्याकरणिक संदर्भ में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे –

हिन्दी का 'हाथी'। यह पुल्लिंग में प्रयुक्त होगा। अंग्रेजी भाषा में इसका अनुवाद संभव नहीं।

16.4.1.3 संदर्भ प्रबोधक नाम

हर भाषा में कुछ ऐसी व्यक्तिवाचक संज्ञाएं हैं जो सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक संदर्भ का बोध कराती हैं, इनका भी संभव नहीं। जैसे – हिन्दी – जयचंद, विभीषण आदि।

16.4.1.4 सामाजिक भाषा शैलियाँ

हर भाषा के अपने शैलीगत भेद होते हैं। ये भेद कभी भाषा की बोलियों द्वारा उद्घाटित होते हैं और कभी सामाजिक स्थितियों द्वारा। हिन्दी बोलियों के शब्द यद्यपि मानक हिन्दी में भी प्रयुक्त होते हैं किन्तु वहां मानक रूप धारण कर। जबकि बोली के धरातल पर ऐसे शब्द अपना विशिष्ट अर्थ और विशिष्ट टोन अपने साथ सुरक्षित रखते हैं। मानक भाषा में प्रयुक्त होने पर भी ऐसे शब्द अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं। सच यह है कि बोलीगत प्रयोग जितना स्वाभाविक और स्टीक होता है, अंचल विशेष या क्षेत्र विशेष के जनजीवन के चित्र को जितना समग्र और प्रभावी रूप में प्रस्तुत कर देता है, ऐसी प्रस्तुति में भाषा के मानक रूप उतने प्रभावी नहीं बन पाते आंचलिक शब्द जहां अभिव्यक्ति के परिचायक हैं, वहीं वातावरण में स्वाभाविकता का पर्याय भी। बोलियां अपनी भाषा को समृद्ध करती रहती है। साथ ही ये बोलियां अपने क्षेत्रों की विशिष्टता को भी अपने भीतर समेटे होती है। यह प्रवृत्ति ध्वनि, शब्द , वाक्य आदि के स्तरों पर देखी जाती है। कहीं 'पैसा' बोला जाता है तो कहीं 'पाइसा' और कहीं 'पेसा'। कहीं 'औरत' बोला जाता है तो कहीं 'अउरत' और कहीं 'औउरत'। ठीक ऐसी ही स्थिति संबोधनपरक शब्दों में मिलती है – तु, तू, मेरा, मोर, तुम्हारा, तोर, बेटा/बबुआ/भईया, बहु बहुरिया, वधू, दुलनि आदि। पर इनके तेवर अलग–अलग हैं।

16.4.2 सामाजिक–सांस्कृतिक सीमाएं

हर पाठ सामाजिक सांस्कृतिक सूचना का द्योतक होता है। जबकि सामाजिक–सांस्कृतिक सूचना स्रोत–भाषा के समाज और संस्कृति से जुड़ी होती है। लक्ष्य भाषा जो अलग सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप का प्रतीक है उसमें इनका अंतरण सहज नहीं हो पाता। सच यह है कि भाषा और संस्कृति का अटूट संबंध होता है। इससे समाज और उसकी संस्कृति के बारे में काफी सूचना मिल जाती है। माना यह जाता है कि मानव अभिव्यक्ति के रूप में भाषा विशेष में भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक, सांस्कृतिक तत्वों का समावेश हो जाता है जो दूसरी भाषा से भिन्न होते हैं। वस्तुतः स्रोतभाषा के कथ्य को पूर्णतया प्रस्तुत करने में अनुवादक को असमर्थता प्रतीत होती है। हाँ! सम–सांस्कृतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा विषम सांस्कृतिक–सामाजिक परिवेश के भाषाओं की समस्याएँ अधिक रहती हैं। 'लाडो' (1957) ने इस पर विचार करते हुए कहा है – "जब दो संस्कृतियां समान हों या एक–दूसरे से संबद्ध हों, किन्तु भाषाएँ अलग–अलग हों, तब अनुवादक को यह छूट देनी चाहिए कि लक्ष्यभाषा की सांस्कृतिक शब्दावली का स्रोत–भाषा की प्रकृति के अनुसार प्रसंगानुसार बदल दें। यदि विषम संस्कृति हो तब भी प्रसंगानुसार परिवर्तन आवश्यक है अन्यथा उससे सटीक अर्थ की प्रतीति नहीं जा पाएगी।"

हिन्दी के संदर्भ में बंगला, उड़िया, असमिया, तमिल, तेलुगू, मलयालम, मराठी, गुजराती आदि भाषाएं

सम–सांस्कृतिक भाषाओं की श्रेणी में आती हैं। इनके परस्पर अनुवाद में भी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए बंगला में 'जल–खाबो–का प्रयोग होता है जबकि हिन्दी में इसके लिए 'जल पियेंगे' या 'पानी पियेंगे' प्रयोग होता है। हिन्दी में 'खा' क्रिया का प्रयोग खाद्य सामग्री के साथ होता है, पीने वाली वस्तु के साथ नहीं। साथ ही हिन्दी की बोली अवधी में 'खाब' भोजन सामग्री के लिए भी प्रयुक्त होता है। फलस्वरूप सम–सांस्कृतिक भाषाओं की विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण अनुवाद में समस्याएं उत्पन्न होती हैं। अंग्रेजी और हिन्दी का सांस्कृतिक परिवेश भिन्न है। फलस्वरूप अंग्रेजी से हिन्दी या हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद की समस्या विषम सांस्कृतिक परिवेश के कारण बहुत बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए – 'गंग' शब्द लें। 'गंगा' जहां हिन्दी के संदर्भ में एक अलग सांस्कृतिक परिवेश प्रस्तुत करता है वहीं अंग्रेजी में यह परिवेश व्यक्त नहीं हो पाता। ठीक ऐसे ही शब्द हैं – 'संगम स्नान', 'कुंभ स्नान' जिन्हें अंग्रेजी में प्रस्तुत कर पाना आसान नहीं। संस्कशति के संदर्भ में पर्व, त्यौहार, देश–विदेश की वेशभूषा, रहन–सहन आदि की शब्दावली भी अनुवाद कार्य को कठिन बनाती है। यथा – छठ, शिवरात्रि, होली, दीपावली, रक्षाबंधन आदि। हिन्दी क्षेत्र में जहां पुरुष के अधोवस्त्र के लिए 'धोती' शब्द का प्रयोग होता है, वहीं स्त्री के अधोवस्त्र के लिस 'साड़ी' या 'लुग्गा' का। सम्पन्न शिक्षित महिलाएँ 'साड़ी' शब्द का प्रयोग करती हैं तो असंपन्न और अशिक्षित महिलाएँ। 'लुगा', शब्द का। रसोई, चौका, बेलना आदि शब्द भी अपना विशेष संदर्भ रखते हैं। जहां 'रसोई' पवित्रता का प्रतीक है वहीं चौका, बेलना और चिमटा, कलछुल आदि जैसे शब्द रसोई के प्रयोग में आने वाले बर्तनों के लिए हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं। ठीक ऐसी ही स्थिति है – खान–पान से सम्बद्ध शब्दावलियों की। यथा – 'रोटी' निश्चय ही रोटी का अनुवाद 'चपाती', ब्रेड नहीं हो सकता। 'परांठा', 'इडली', 'डोसा', 'हलुआ', 'कढ़ी' का अनुवाद जहां यूरोपीय भाषा में संभव नहीं वहीं यूरोपीय भोजन सैंडविच, बर्गर, पिज्जा का अनुवाद भी हिन्दी में संभव नहीं।

पाठ में सामाजिक सूचना सभी स्तरों पर दी जाती है। शब्द के आधार पर 'उबटन', 'कलश', 'सिंदूर' दान', 'सात फेरे' आदि में सामाजिक सूचना निहित रहती है। इन शब्दों को विभिन्न अर्थों में विभाजित किया जा सकता है। और उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों को उसी के अनुसार विभिन्न प्रकारों से अंतरित किया जा सकता है। 'उबटन' के साथ संस्कृति भी जुड़ी है और भारतीय परंपरा भी। ठीक यही स्थिति 'कलश', 'सिंदूरदान' तथा 'सात फेरे' की है। अंग्रेजी में सम–सामाजिक अभिव्यक्ति के शब्द मिलना संभव नहीं है। और यदि इनके अनुवाद किए जाएं तो भी इनके रूपांतर न तो स्रोतभाषा के व्यापक संदर्भ की सूचना देने में समर्थ हैं और न ही समतुल्य। ऐसे शब्दों के संदर्भ में 'कैटफोर्ड' ने स्पष्ट किया है कि उन्हें उसी रूप में प्रयुक्त किया जाए और नीचे उसकी पाद–टिप्पणी दी जाए या संदर्भगत कोई अर्थ बनता हो तो उसे कोष्ठक में दिया जाए। ऐसी प्रस्तुति से लाभ यह होता है कि समतुल्यता का पता लग जाता है। साथ ही इससे स्रोतभाषा की सांस्कृतिक गंध भी पाठक को मिल जाती है तथा उसे उसकी सांस्कृतिक सूक्ष्मताओं की जानकारी भी हो जाती है किन्तु इसकी भी एक सीमा है। अधिक पाद–टिप्पणियों या मूल भाषा के शब्द लिख देने से भाषा सहज नहीं रह जाती है। और उसकी पाठनीयता कमजोर पड़ जाती है। फलस्वरूप संप्रेषणीयता कमजोर पड़ जाती है। फलस्वरूप संप्रेषणीयता का ग्राफ घट जाएगा क्योंकि अर्थ निकालने में समय लगेगा।

मुहावरे तथा लोकोक्तियां जहां भाषिक अभिव्यक्ति की क्षमता होती है वहीं उस भाषा की सामाजिक सांस्कृतिक और जातीय परम्परा तथा चेतना की कहानी कहते हैं। और उसकी यथार्थता के परिचायक भी होते हैं। मुहावरे और लोकोक्तियां–प्रयुक्त स्रोतभाषा प्रभविष्णुता तथा व्यंजकता की रक्षा का उत्तरदायित्व अनुवादक का होता है। यहां प्रश्न उठता है कि क्या वैसी ही प्रभावशालिनी अर्थ–व्यंजना लक्ष्य भाषा पाठ में अनुवादक प्रस्तुत कर पाता है? वस्तुतः लोकोक्तियों और मुहावरों का सही अनुवाद संभव नहीं। उदाहरण के लिए – 'सिंदूर पुंछ जाना' या 'चूड़ी भिजवान' का अंग्रेजी में अनुवाद होगा – to wipe of vasmillin और to send bangles। पर यह पूर्णता शाब्दिक अनुवाद है। इससे सामाजिक–सांस्कृतिक सूचना नहीं मिल पाती। इसी प्रकार संरचना की दृष्टि से समान लगने वाले वाक्य भी प्रकार की दृष्टि से अलग–अलग अर्थ प्रदान करते हैं। यथा 'देखते–देखते वह चल गया', 'देखते–देखते रात बीत गयीं।' दोनों वाक्यों में 'देखते–देखते' – विपरीत अर्थों का द्योतक है। पहले में जहाँ 'देखते–देखते' में विक्षोम और दुख का भाव अभिव्यक्त है, वहीं दूसरे में समय का पता न लगने की सूचना दी गई है। हिन्दी में सार्वनमिक प्रयोग एक ओर व्याकरणिक अर्थ से संपुष्ट है तो दूसरी ओर इनका सामाजिक अर्थ भी है। उदाहरण के लिए – मैं, हम, तू, तुम यथा आप। इनका अंग्रेजी में अनुवाद कठिन तो है ही साथ ही एकवचन के रूप हम और वह का अनुवाद करना और भी भ्रमपूर्ण हो जाएगा।

इसी प्रकार नाते–रिश्ते की शब्दावली का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कठिन होता है। हिन्दी में चाचा, मामा, ताऊ, फूफा, मौसा आदि शब्द अलग सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ रखते हैं। जबकि अंग्रेजी में इन सबके लिए एक ही शब्द है 'uncle' 'फुफेरी बहन', 'मौसेरा भाई' आदि के लिए 'cousin' शब्द है। 'नदबसम' और 'cousin' शब्द का प्रयोग अनुवाद में भ्रमात्मक स्थिति का जनक होगा। तमिल में लड़कियाँ अपने भाई की पत्नी को 'इनम्मा' कहती हैं और लड़के अपने भाई की पत्नी के लिए 'इतिम्मा', किन्तु हिन्दी में एक षब्द है – 'भाभी'। हिन्दी भाषी के लिए तमिल भाषा के ये दोनों शब्द एक ही अर्थ देंगें, जबकि तमिल भाशा में एक अर्थ नहीं है। ऐसा ही शब्द मणिपुरी भाषा का है 'इजेल इबोई', 'साला', 'ममेरा भाई', 'फुफेरा भाई' सबके लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत उपर्युक्त षब्द भाशा विशेष के पारिवारिक सामाजिक संरचना की जानकारी देते हैं। इस प्रकार यदि शब्दाधृत अनुवाद किया जाए तो या तो अतिव्याप्ति दोष होगा या अव्याप्ति दोष।

हर भाषा की अपनी शैली होती है। साथ ही एक भाषा के धरातल पर भी विभिन्न सामाजिक शैलियां प्राप्त होती हैं। लेखक अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए तत्सम, तद्भव, देश, विदेशी आदि शब्दों का प्रयोग करता है, किन्तु सामाजिक सूचनाओं में संपृक्त इन शैलियों के अनुवाद में समस्या खड़ी हो जाती है। उदाहरण के लिए दया, कृपा, अनुकम्पा जैसे तत्सम शब्द तथा मेहरबानी जैसे आरबी, फारसी शब्द देखने में तो समान दिखते हैं किन्तु उनके अनुवाद में कठिनाई यह आती है कि किन शब्दों का प्रयोग किया जाए ताकि मूल पाठक द्वारा प्रयुक्त किया जाए ताकि मूल पाठक द्वारा प्रयुक्त शैली का सामाजिक संदर्भ रूपायित हो सके।

16.4.3 पाठ की प्रकृतिपरक सीमाएँ

अनुवाद का क्षेत्र आज असीमित हो गया है। कार्यालयों, साहित्यिक, कृषि, वाणिज्यिक, तकनीकी, वैज्ञानिक के साथ–साथ आज चिकित्सकीय, खेल, वैवाहिक संदर्भ, जन–संचार में भाषा का अलग–अलग रूप प्रयुक्त हो रहा है। जहां इनकी प्रयुक्तियों की भाषिक संरचना होती है, वहीं इन सबके अनुवाद में पाठक को भी ध्यान में रखा जाता है। इसका पाठक विशेषज्ञ है या सामान्य व्यक्ति, प्रौढ़ है या बालक, यह भी अनुवाद को ध्यान में रखना होता है। पाठ की प्रकृति सरल है या कठिन उसके आधार पर अनुवाद करना कठिन हाता है। प्राथमिक शब्द 'सैक्शन' और 'अप्रूवल' के अर्थ कई बार संदर्भ के अनुसार एक जैसे लगते हैं। अतः वहां उन दोनों शब्दों में भेद कर पाना संभव नहीं। जीव विज्ञान में 'Benon', 'Poison' शब्दों का अर्थ एक है किन्तु ये अपने विशिष्ट गुणों के कारण भिन्न हो जाते हैं। ठीक ऐसा ही शब्द है : अंग्रेजी का 'Cricket', 'Football, Goal' इन सभी शब्दों का हिन्दी में अनुवाद संभव नहीं है।

विधा का संबंध पाठ के रूप से होता है। यथा – कविता, नाटक, उपन्यास। इन विधाओं के बाह्य रूप के साथ इनकी आंतरिक प्रवृत्ति पर ध्यान देना पड़ता है। साहित्यिक रूप में व्याप्त अलौकिकता और विशिष्टता अनुवाद में प्रायः अदृश्य रह जाती है। छंद–विधान, काव्य की काव्यात्मकता, नाटक की संवाद योजना और नाटकीयता का भी लक्ष्य भाषा में अनुवाद संभव नहीं हो पाता है। नाटक के रंग संकेतों का अनुवाद तो और कठिन हो जाता है।

निश्चय ही हर भाषा की अपनी अलग संरचनात्मक व्यवस्था है और यह व्यवस्था उसकी सुदीर्घ सामाजिक, सांस्कृतिक संस्था से जुड़ी होती है। प्रयोजन की भूमिका उसके स्वरूप का नियामक बनती है। अनुवाद के स्रोत भाषा का या तो न्यूनानुवाद होगा या अधिनुवाद होगा। सटीक अनुवाद संभव नहीं है। हां! भावानुवाद के स्तर पर अनुवादक अवश्य सफल होगा। अनुवादक जहां अपने को असमर्थ पाता है वहीं अनुवाद की सीमा से उसका साक्षात्कार होता है। और वे बिंदु ही अनुवाद की सीमाएँ हैं।

16.5 सारांश

विद्यार्थियो! इस पाठ में आपने अनुवाद के महत्त्व और सीमाओं की पूर्ण जानकारी प्राप्त की है। अतः यह स्पष्ट है कि अनुवाद का सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक आदि प्रत्येक दृष्टि से महत्त्व है। मनुष्य जीवन में भिन्न भाषाओं के पक्षों को समझने हेतु अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान है। अनुवाद सरल कार्य नहीं है इसलिए इसकी अनेक सीमाएं हैं जिसमें अनुवाद कार्य में बाधा आती है किन्तु इन सीमाओं से भली–भांति परिचत होकर बाधाओं का हल करते हुए अनुवाद कर्म किया जा सकता है।

16.6 कठिन शब्द

1. अनुप्रयोग 2. निरूपक 3. बोधगम्यता 4. उत्कीर्ण 5. अभियंत्रिकी
6. निर्विकार 7. अतिव्याप्ति 8. संपकृत 9. प्रयुक्तियों 10. वाणिज्यिक

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अनुवाद के महत्त्व को सिद्ध कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2. अनुवाद की सीमाओं पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. अनुवाद शिल्प : समकालीन संदर्भ, डॉ. कुसुम अग्रवाल, साहित्य सहकार, दिल्ली
2. अनुवाद : अवधारणा और आयाम, डॉ. सुरेश सिंहल, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
3. अनुवाद का सामयिक परिपेक्ष्य, प्रो. दिलीप सिंह एवं प्रो. ऋषभदेव शर्मा (संपा.), दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, 2009

Course Code - 404 **Lesson No. 17**

Unit-IV

पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ परिभाषा और स्वरूप

17 प्रस्तावना

17.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ

17.2 पारिभाषिक शब्दावली की परिभाषा

17.3 पारिभाषिक शब्दावली का स्वरूप

17.4 पारिभाषिक शब्द के प्रकार

17.5 पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताएँ

17.6 परिभाषिक शब्दों के गुण

17.7 शब्दावली की मानकता

17.8 निष्कर्ष

17.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.10 संदर्भ ग्रंथ

17. **प्रस्तावना**–पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण भाषा की आधुनिकीकरण प्रक्रिया का एक अंग है। इसका विवेचन भाषा वैज्ञानिक और समाज भाषा वैज्ञानिक दोनों स्तरों पर संभव है। भाषा वैज्ञानिक स्तर पर पारिभाषिक शब्दावली के भाषिक स्वरूप तथा शब्द निर्माण की युक्तियों पर विचार करना महत्वपूर्ण है। समाज भाषा वैज्ञानिक स्तर पर शब्दावली की मानकता, विकास प्रक्रिया तथा इसका प्रयोग पक्ष विचारणीय है। इन दो आयामों के अलावा भारत में शब्दावली निर्माण संबंधी कार्यों को ऐतिहासिक तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखना जरूरी है। इस प्रपत्र मेंइन सभी आयामों को केंद्र में रखते हुए पारिभाषिक शब्दावली का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया जाएगा। भाषा की लघुतम , स्वतन्त्र और सार्थक कइकाई को शब्द कहते हैं। शब्द की परिभाषा में तीन बातें ध्यातव्य हैं– (1) शब्द भाषा की इकाई होते हैं, (2) शब्द सार्थक होते हैं और (3) शब्द स्वतन्त्र होते हैं अर्थात् उनके लिए उपसर्गया प्रत्यय की तरह किसी अन्य भाषिक इकाई के साथ मिलकर आना अनिवार्य नहीं होता।

17.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थः

पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्द को कहते हैं, जो विषय विशेष में प्रयुक्त हो, जिसकी किसी विषय या सिद्धान्त के प्रसंग में सुनिश्चित परिभाषा हो, जिसका अर्थ सुनिश्चित तथा जो अन्य पारिभाषिक शब्द या शब्दों से अपने अर्थ और प्रयोग में स्पष्टतः अलग हो। भाषिक संरचना की दृष्टि से सामान्य शब्द और पारिभाषिक शब्द में भेद नहीं है, क्योंकि पारिभाषिक शब्दों की रचना–प्रक्रिया का कोई भी नियम सामान्य शब्द रचना प्रक्रिया के नियमों की मर्यादा से बाहर नहीं जा सकता लेकिन अर्थ–सरंचना की दृष्टि से पारिभाषिक शब्द और सामान्य शब्द के बीच भेद है। पारिभाषिक शब्द अभिधार्थ में ही ग्रहण किए जाते हैं, लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ में नहीं जब किसा मान्य शब्द आवश्यकतानुसार अभि लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ किसी भी रूप में ग्रहण किए जा सकते हैं। पारिभाषिक शब्द अर्थात् जो शब्द पूर्ण रूप से पारिभाषिक हो और जो सामान्य रूप में प्रयोग न हो। अतः जब किसी शब्द का प्रयोग एक सुनिश्चित अर्थ में किया जाता है और लक्षणा–व्यंजना में उनका कोई अन्य अर्थ ग्रहण करने की कोशिश नहीं की जाती या उनके अर्थ को पूरी तरह सीमित कर दिया जाता है, तब वह पारिभाषिक शब्द का रूप ले लेता है।

17.2 पारिभाषिक शब्दावली की परिभाषाएंः–

– डॉ. रघुबीर के शब्दों में ''जिन शब्दों की सीमा बाँध दी जाती है, वे पारिभाषिक शब्द हो जाते हैं और जिनकी नहीं बाँधी जाती वे साधारण शब्द होते हैं।''

– डॉ. भोला नाथ तिवारी के अनुसार– ''पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं जोरसायन, भौतिकी, दर्शन, राजनीति आदि विभिन्न विज्ञान या शास्त्री के शब्द होते हैं तथा जो अपने–अपने क्षेत्रों में विशिष्ट अर्थ में सुनिश्चित रूप से पारिभाषिक होते हैं। अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से निश्चित रूप से पारिभाषिक होने के कारण ही ये शब्द पारिभाषिक शब्द कहे जाते हैं।''

– डॉ. गोपाल शर्मा के शब्दों में–"पारिभाषिक शब्द वह शब्द है जो किसी ज्ञान विशेष के क्षेत्र में एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होता हो तथा जिसका अर्थ एक परिभाषा द्वारा स्थिर किया गया हो।''

– डॉ. दंगल झाल्टे के मतानुसार ''जो शब्द सामान्य व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त न होकर ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट किन्तु निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें पारिभाषिक शब्द कहते हैं।''

– महेन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में–''पारिभाषिक शब्द के दो मुख्य गुण होते हैं–नियतार्थता और परस्पर अपर्णिता। परिभाषिक शब्द का अर्थ नियत निश्चित होना चाहिए और एक अर्थ को व्यक्त करने वाला केवल एक ही शब्द होना चाहिए।''

उपयुक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि–

1. पारिभाषिक शब्दों का उपयोग किसी ज्ञान–विज्ञान विशेष के क्षेत्र में होता है ।

2. पारिभाषिक शब्दों का अर्थ सुनिश्चित (निश्चित रूप में) होता है।

3. वैज्ञानिक व शास्त्रीय विषयों से सम्बन्धित परिभाषिक शब्द अपने साथ एक निश्चित रूप में परिभाषा के शब्दों को लिए होते हैं और उन शब्दों के अलावा किसी और रूप में प्रयोग नहीं हो सकते।

17.3 पारिभाषिक शब्दावली का स्वरूप–

17.3.1 पारिभाषिक शब्द के प्रकार

पारिभाषिक शब्द ऐसे भी मिलते हैं, जो विषय विशेष में तो पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु उससे बाहर उनका प्रयोग सामान्य भाषा में सामान्य अर्थ में भी होता है। इस बात को ध्यान में रखकर पारिभाषिक शब्दों को दो भागों में बाँटा जा सकता है

1. **पूर्ण पारिभाषिक**–वे शब्द जो मात्र पारिभाषिक अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग क्षेत्र, ज्ञान–विज्ञान का क्षेत्र ही होता है, सामान्य बोलचाल का नहीं। जैसे–व्याकरण का 'क्रिया विशेषण' दर्शन का 'अद्वैत', नाटय शास्त्र का 'प्रकरी' या गणित का 'दशमलव' आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

2. **अर्द्ध पारिभाषिक**–ऐसे शब्द को कहते हैं, जो एक तरफ तो विशिष्ट विज्ञान या शास्त्र में प्रयुक्त होने पर पूर्ण पारिभाषिक शब्द का कार्य करते हैं, और दूसरी तरफ साधारण व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त होने पर सामान्य शब्द के रूप में आते हैं, जैसे असंगति, शक्ति, अक्षर, आपत्ति, रेखा तथा ध्वनि आदि शब्द इसी प्रकार के हैं, जो क्रमशः अलंकार शास्त्र, भौतिकी, व्याकरण, विधि शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र तथा भाषा विज्ञान में तो पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु साधारण बोल चाल की भाषा में सामान्य अर्थों में भी प्रयुक्त होते हैं। सामान्य या साहित्यिक भाषा–व्यवहार में, प्रभावोत्पादकता के लिए हम सामान्य शब्दों के अर्थ को विस्तारित कर सकते हैं या उनका प्रयोग विचलित अथवा लाक्षणिक अर्थों में कर सकते हैं। 'आशा की किरणें', 'बदचलन इच्छाएँ', 'लँगड़ी मानवता', 'तुम गधे हो', 'तभी भीतर से साइब दहाड़े' जैसी अभिव्यक्तियों में 'किरणें','बदचलन ', 'लँगड़ी ', 'गधे' और 'दहाड़े' शब्दों का प्रयोग अभिधा में न होकर लाक्षणिक या विचलित अर्थों में हुआ है। इसके विपरीत तकनीकी या पारिभाषिक शब्दों में इस प्रकार का विचलन संभव नहीं। भौतिकी में 'किरण' शब्द अपने अभिधार्थ 'प्रकाश की किरण' के अर्थ में ही ग्राह्य है। 'आशा की किरण' के अर्थ में नहीं, प्राणि विज्ञान में 'गधा' शब्द केवल 'जानवर' विशेष के अर्थ में ही ग्राह्य है, बेवकूफ के अर्थ में नहीं । इस प्रकार पारिभाषिक शब्द अपने–अपने विषय क्षेत्रों में सर्वत्र एक ही अर्थ में ग्राह्य होते हैं। विषय सापेक्षता पारिभाषिक शब्दों का एक अन्यतम गुण है । हर पारिभाषिक शब्द किसी न किसी विषय क्षेत्र –शास्त्र , विज्ञान , व्यवहार क्षेत्र से अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है और उस विषय क्षेत्र के संदर्भ में ही उस शब्द का अभीष्ट अर्थ समझा जा सकता है। पारिभाषिक शब्दों की बाह्यसं रचना से जो प्रकट अर्थ व्यक्त होते हैं; उनसे कहीं अधिक तकनीकी अर्थ उनके

गर्भ में निहित होते हैं,जो उन शब्दों की शास्त्र सम्मत परिभाषाओं के आलोक में ही उद्घाटित होते हैं । 'रेखित चेक' 'ओवर ड्राफ्ट' 'चालू खाता', 'ऋण मेला', 'बचत खाता' आदि शब्दों के अभीष्ट अर्थ बैंकिंग व्यवहार क्षेत्र के संदर्भ में ही स्पष्ट होते हैं। 'रेखित चेक' शब्द का सामान्य अर्थ है 'एक ऐसा चेक जिस पर रेखा खींची गई हो' लेकिन बैंकिंग के पारिभाषिक शब्द और उसके अर्थ के बीच संबंध रूढ़ीकरण प्रक्रिया द्वारा स्थापित और विकसित होता है। नई संकल्पना और नए आविष्कारों के लिए उपयुक्त शब्दों की आवश्यकता होती है। ये शब्द मुख्यतः दो प्रकार से प्राप्त होते हैं–भाषा के विद्यमान शब्द भंडार से अनुकूल शब्दों के अर्थ को परिवर्धित कर या नए शब्दों का निर्माण कर, दोनों ही स्थितियों में शब्द में अर्थ का आरोप करने की आवश्यकता पड़ती है। सतत् व्यवहार में बने रहने वाले शब्द अभीष्ट तकनीकी अर्थों में रूढ़ हो जाते हैं। इसके विपरीत जो शब्द व्यवहार और प्रचलन में नहीं आ पाते, वे चयन और व्याकरण की दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी निरर्थक होते हैं और समय के साथ विलुप्त हो जाते हैं।

विभिन्न पारिभाषिक शब्दों में निहित पारिभाषिकता या तकनीकीपन की मात्रा में अंतर हो सकता है। कुछ शब्दों में पारिभाषिकता की मात्रा अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक हो सकती है और कुछ में कम। कुछ शब्द पारिभाषिक तथा अपारिभाषिक दोनों संदर्भों में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं, इसीलिए कभी–कभी पारिभाषिक शब्दों को पूर्ण पारिभाषिक तथा अर्ध पारिभाषिक वर्गों में विभाजित किया जाता है।

17.3 2 पारिभाषिक शब्दों में मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :–

1. उनका अर्थ स्पष्ट और सुनिश्चित होता है।
2. एक विषय या सिद्धान्त में उनका एक ही अर्थ होता है।
3. एक विषय में संकल्पना या वस्तु के लिए एक ही पारिभाषिक शब्द होता है।
4. पारिभाषिक शब्द यथासाध्य छोटा होना चाहिए, ताकि प्रयोग में असुविधा न हो ।
5. पारिभाषिक शब्द को यथासाध्य मूल होना चाहिए, व्याख्यात्मक नहीं जैसे–जीव विज्ञान में 'दीमक' शब्द ठीक है पर 'सफेद चींटी' व्याख्यात्मक है। उसी प्रकार 'अनशन' सटीक शब्द हैपर हड़ताल' (hunger strike) व्याख्यात्मक है।
6. पारिभाषिक शब्द ऐसा होना चाहिए, जिससे सरलता पूर्वक नए शब्द बनाएं जा सकें; जैसे–'मानव' इस शब्द से कई शब्द सरलता से बनाए जा सकते हैं, यथा–मानवता, मानवीय, मानवीयता, मानवीकरण, मानविकी आदि, लेकिन इसके स्थान पर यदि 'नृ' शब्द को लें, तो उससे इस प्रकार शब्द बनाना कठिन होगा, यद्यपि उसका भी अर्थ मानव ही होता है।
7. समान श्रेणी के पारिभाषिक शब्दों में एक रूप तो होनी चाहिए। जैसे, भाषा विज्ञान में स्वनिम, रूपिम, अर्थिम

लेखिम या फिर उपस्वन, उपरूप, उपअर्थ, उपलेख आदि पर इसके विपरीत यदि स्वनिम को ध्वनि ग्राम कहें तो रूपिम आदि के साथ उसकी एक रूपता नहीं रहेगी।

17. 3.3 परिभाषिक शब्दों के गुण–परिभाषिक शब्दों के निर्माण (बनाना) हेतु निम्न गुणों की आवश्यकता है

1. पारिभाषिक शब्दों के अर्थ में संदिग्धता, अस्पष्टता (दुलर्भ रूप में), दुर्बोधता (बात का अर्थ न हो) न हो।

2. एक संकल्पना के लिए एक ही पारिभाषिक शब्द हो ।

3. असमस्त (बिना सब के) पद का अनुवाद (परिवर्तन) सम्भवतः (सम्भावनापूर्वक) सभी पद में होना चाहिए।

4. पारिभाषिक शब्द छोटा व सरल हो, जो हमें स्पष्ट रूप में सरलतापूर्वक याद हो सके।

5. किसी विदेशी भाषा में निर्मित पारिभाषिक शब्द में अर्थ पूर्णता होनी चाहिए।

6. पारिभाषिक शब्दों को बोलने का ढंग, प्रकृति और व्याकरण के नियम उस भाषा के अनुसार हों; जिस भाषा में उसका प्रयोग किया जा रहा हो ।

7. पारिभाषिक शब्दों में उर्वरता हो तथा एक श्रेणी में पारिभाषिक शब्द एक ही प्रकार के हों।

17.4 पारिभाषिक शब्दावली की मानकता

पारिभाषिक शब्दों के साथमानकता का प्रश्न अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है। यदि पारिभाषिक शब्द मानक नहीं हैं, तो वे सही अर्थों में पारिभाषिक शब्द नहीं है। मानकीकरण प्रक्रिया का पहला चरण है–' रूपों की विविधताको कम से कम करना'। मानकता की स्थिति से पूर्व एक ही तकनीकी संकल्पना के लिए एक से अधिक शब्द या रूप प्रचलन में हो सकते हैं या एक शब्द के एकाधिक तकनीकी अर्थ हो सकते हैं। एक ही तकनीकी संकल्पना के लिए एक से अधिक शब्दों या शब्द–रूपों में से एक शब्द या शब्द–रूप का चयन मान की करण प्रक्रिया का पहला सोपान है। इसे हामेन (1966) कोडीकरण (codification) की प्रक्रिया कहते हैं। पिटकार्डर (1950) इसे अंतर्राष्ट्रीयता का गुणकहते हैं। न्यूस्तुप्नी (1970: 77–98) इसे स्थिरीकरण (stabilisation) कहते हैं। कोडीकरण के फलस्वरूप समान विषय–क्षेत्रों में काम करने वाले विशेषज्ञों के बीच, चाहे वे किसी भी दूरस्थ या देश में हों, सफल संप्रेषण संभव होता है। इससे शब्दावली में समरूपता आती है। इसका प्राप्य लक्ष्य है 'एक शब्द एक अर्थ' उदाहरण के लिए director शब्द के लिए विभिन्न हिंदी भाषी क्षेत्रों में 'निदेशक', 'निर्देशक', 'संचालक' तथा 'प्रबंधक' शब्दों का प्रयोग मिलता है। engineer शब्द के लिए 'इंजीनियर''अभियंता'और' तंत्री' शब्द प्रयोग में मिलते हैं। प्रकार पर्यायों की इस विविधता के बीच एक अर्थ के लिए एक शब्द रूप का चयन या निर्धारण शब्दावली की मानकीकरण प्रक्रिया

का पहला सोपान है। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली निर्माण इसी प्रक्रिया का एक अंग है। इसका एक महत्वपूर्ण लक्ष्य पारिभाषिक शब्दावली पर्यायों में यथा संभव समरूपता लाना है।

पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की दिशा में एक शताब्दी पहले ही कोशिश शुरू हो गई थी। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लम्बे समय तक कार्यालयों और प्रशासन में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होता रहा। धीरे–धीरे यह महसूस किया गया कि स्वतन्त्रता से अभिप्राय किसी क्षेत्र विशेष या देश विशेष से नहीं अर्थात् वाणी की स्वतन्त्रता और भाषा की स्वतन्त्रता भी आवश्यक है। इसी उद्देश्य से सन् 1959 में इस दिशा में कदम उठाए गए। धीरे–धीरे अंग्रेजी शब्दों, प्रयोग और कार्यालय में शब्दों का हिन्दीकरण किया गया। अपने देशवासियों को शिक्षित बनाने के लिए भी भारतीय भाषा में पारिभाषिक शब्दावली जैसी आधार भूत सामग्री उपलब्ध कराने के प्रयास शुरू हुए। इस दिशा में दो स्तरों पर कार्य हुए–

1 सरकारी सहायता प्राप्त व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा।

2 शिक्षा तथा समाज कल्याण मन्त्रालय द्वारा गठित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा।

17.5 **निष्कर्षः**–वस्तुतः कहा जा सकता है कि अर्ध पारिभाषिक शब्द वे शब्द हैं जो पारिभाषिक एवं सामान्य दोनों ही अर्थों में व्यवहत होते हैं, किन्तु जब पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तो उनका सामान्य अर्थ नहीं लिया जा सकता, और जब सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तो उनका पारिभाषिक अर्थ अभिप्रेत नहीं होता। इसलिए ये ऐसे शब्द होते हैं जो कभी शास्त्रीय भाषा और कभी सामान्य भाषा दोनों में प्रयुक्त होते हैं। पारिभाषिक शब्द जो शब्द पूर्ण रूप से पारिभाषिक हो और जो सामान्य रूप में न प्रयोग हो। जब किसी शब्द का प्रयोग एक सुनिश्चित अर्थ में किया जाता है और लक्षणा–व्यंजना में उनका कोई अन्य अर्थ निकालने की कोशिश नहीं होती या उनके अर्थ को पूरी तरह सीमित कर दिया जाता है, तब वह पारिभाषिक शब्द का रूप ले लेता है।

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

....

2 पारिभाषिक शब्दावली की विशेषताएँ लिखें।

....

....

....

....

....

....

3 पारिभाषिक शब्दावली के प्रकार स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

....

17.7 संदर्भ ग्रंथ

1 डॉ भोलानाथ तिवारी महेन्द्र चतुर्वेदी, पारिभाषिक शब्दावली कुछ समस्याएं, शब्द का प्रकाशन, दिल्ली

2 डॉ भोलानाथ तिवारी अनुवाद विज्ञान, शब्द का प्रकाशन, दिल्लीं।

3 डॉ अनुज प्रताप सिहं, प्रयोजन मूलक हिन्दी, नमन प्रकाशन नई दिल्ली।

4 दंगल झाल्टे, प्रयोजन मूलक हिन्दी : सिद्धांत और प्रयोग, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

5 डॉ0 दिनेश प्रसाद सिंह, प्रयोजन मूलक हिन्दी और पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

6 डॉ. नगेंद्र ,अनुवाद विज्ञान–सिद्धांत और अनुप्रयोग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

पारिभाषिक शब्द निर्माण के सिद्धान्त

18.0 प्रस्तावना

18.1 पारिभाषिक शब्द निर्माण के सिद्धान्त

18.1.1 राष्ट्रीयता और संस्कृतवादी

18.1.2 शब्द–ग्रहणवादी या अन्तर्राष्ट्रीयता वादी

18.1.3 प्रयोगवादी या लोकवादी

18.1.4 मध्यमार्गी या समन्वय वादी

18.2 निष्कर्ष

18.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.4 संदर्भ ग्रंथ

18.0 **प्रस्तावना** : डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं जोरसायन, भौतिकी, दर्शन, राजनीति आदि विभिन्न विज्ञान या शास्त्री के शब्द होते हैं तथा जो अपने–अपने क्षेत्रों में विशिष्ट अर्थ में सुनिश्चित रूप से पारिभाषिक होते हैं। अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से निश्चित रूप से पारिभाषिक होने के कारण ही ये शब्द पारिभाषिक शब्द कहे जाते हैं।

डॉ. गोपाल शर्मा के शब्दों में–"पारिभाषिक शब्द वह शब्द है जो किसी ज्ञान विशेष के क्षेत्र में एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होता हो तथा जिसका अर्थ एक परिभाषा द्वारा स्थिर किया गया हो।''

18.1 पारिभाषिक शब्द निर्माण के सिद्धान्त

हिन्दी में पारिभाषिक शब्द निर्माण एवं शब्द–ग्रहण के क्षेत्र में कई विचार धाराएँ तथा प्रवृत्तियाँ पनपीं। विभिन्न प्रवृत्तियॉ से उपजी समस्याओं का समाधान करने के लिए हिन्दी में चार प्रकार के मतवादी या सिद्धान्त स्वीकार किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं–

18.1.1 राष्ट्रीयता और संस्कृतवादी :–

इस प्रवृति के लोग हर नए शब्द के लिए संस्कृत के उपसर्ग–प्रत्ययों तथा समास–पद्धति के आधार पर शब्द निर्माण के पक्ष में हैं। इय प्रक्रिया के तहत ऐसे काफी शब्द निर्मित भी किए गए हैं और प्रयुक्त भी किए जा रहे हैं। जैसे–प्रसूति गृह, न्यायालय, कार्यालय, चल चित्र, दूरदर्शन, दूरभाष, दूरमुद्रक, लिपिक, टंकक, मुद्रणालय, आयुक्त, कुलसचिव, निदेशक, व्याख्याता आदि। वस्तुतः इस प्रवृत्ति के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में डॉ– रघुवीर का नाम उल्लेखनीय है। यदि इस प्रवृत्ति को स्वीकार कर लें तब हमारे समक्ष समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।, एक तो यह प्रवृत्ति कि प्रचलित विदेशी शब्दों को हटाकर उनके स्थान पर नए शब्दों के निर्माण के पक्ष में है। जैसे 'रेलवे' के लिए 'संयान' 'फाउण्टपेन' के लिए 'मसीपथ' 'पेंसिल' के लिए 'अंकनी' आदि। इतना ही नहीं, मध्यकाल में गृहीत अरबी– फारसी शब्दों के स्थान पर भी इस प्रवृत्ति के मानने वाले लोग नए शब्दों को प्रयोग में लाना चाहते हैं। जैसे– जमानतदार' के लिए 'प्रतिभू', 'कुर्की' के लिए 'अध्याग्रहण' आदि। दूसरा, इस प्रकार के शब्द बहुत अटपटे हैं। जैसे– कंपाउंडर के लिए 'औषध योजक', 'स्टैंप (के लिए 'मुद्रांक', 'पोस्टेज ' के लिए 'प्रैष' 'टिकट के लिए 'पत्रक', 'पोस्ट ऑफिस' के लिए 'प्रेषगृह' 'ओवरसियर' के लिए 'आधि दर्शक' आदि।

इस मत के लोग भारतीय भाषाओं के लिए समस्त पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत–स्रोत से लेने के पक्ष में है। इनको 'पुनरुद्धारवादी' भी कहते हैं। इस मत के पक्षधरों का मानना है कि–

1. जब यूरोपीय लोगों ने पारिभाषिक शब्द निर्माण के लिए ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं का सहारा लिया तो भारतीयों को संस्कृत जैसी समृद्ध भाषा का आश्रय लेने में क्या मुश्किल है, जिसमें नए शब्दों के निर्माण की बहुत अधिक क्षमता है।
2. विदेशी भाषा पर निर्भर रहकर कितने नए शब्दों को बना सकेंगे।
3. दर्शन, खगोल–शास्त्र, धातु–विद्या आदि में संस्कृत के परिभाषिक शब्दों का भण्डार सुसमृद्ध (पूर्ण रूप से भरा हुआ) है। खण्डन–राष्ट्रीयता या संस्कृत वादी विचारों की सीमाएँ इस प्रकार हैं–

1. संस्कृत की धातुओं के आधार पर बनाए गए सभी शब्द आज के युग के ज्ञान–विज्ञान की सारी संकल्पना के बोधक नहीं बन सकते।
2. संस्कृतवादियों ने अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली की भी अपेक्षा की है, मीटर को 'मान', रेडियो को 'रडार' आदि असंख्य ऐसे शब्द हैं जो जनता द्वारा अपनाए नहीं जा सकते।
3. इन्होंने हिन्दी के तत्सम को तो अपना याकिन्तु तद्भव, देशज, विदेशज शब्दों को अछूता माना।

18.1.2 **शब्द–ग्रहणवादी या अन्तराष्ट्रीयतावादी**:–इस प्रवृत्ति के पक्ष धरों में विज्ञान वेता, इंजीनियर, विधिवेत्ता आदि बहु शिक्षित लोग हैं । उनका मानना है कि जिन संकल्पनाओं और वस्तुओं के लिए हिन्दी में शब्द नहीं हैं, उनके लिए अंग्रेजी से शब्द ले लिए जाएँया आवश्यकतानुसार उनसे निर्मित कर लिए जाएँ। उनका मानना है कि अंग्रेजी का प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है, इसलिए ऐसा करने पर हम अपने शब्दावली के क्षेत्र में न केवल अंग्रेजी बल्कि विश्व की अन्य भाषा ओंजैसेजर्मन, फ्रांसीसी, रूसी आदि भाषाओं से भी जुड़ जाएँगे, जो ऐसे शब्दों का प्रयोग करती हैं। इस प्रवृत्ति को अपना ते हुए हिन्दी ने एक सीमा तक ऐसा

किया भी है । जैसे–मीटर, लीटर, राडार, टन, हेक्टर, रेडियो, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, प्लैटिनम, फोकस आदि शब्दों को हू–ब–हू अपना लिया है। बहुत से नए शब्द भी इन्हीं शब्दों के आधार पर उपसर्ग–प्रत्यय जोड़कर बना लिए गए हैं। जैसे–फोकसन, फोकसित, काडरित, रजिस्ट्रीकृत, अरजिस्ट्रीकृत आदि। कुछ शब्द समास कर के बनाए गए हैं। जैसे–अपीलार्थी, कमीशन, अभिकर्ता, टनधारिता, डेरी उत्पादन, मैटर्निटी होम, मोटर नौका आदि। कुछ ध्वनि–परिवर्तन के आधार पर निर्मित हुए हैं। जैसे–अकादमी, तकनीक, त्रासदी, कामदी, अन्तरिम आदि। अतः इन शब्दों का प्रयोग एक सीमात कही किया जा सकता है। इनमें से कुछ प्रचलित शब्दों को तो लिया जा सकता है या उनसे दूसरे शब्द भी बनाए जा सकते हैं, पर ऐसे शब्दों की संख्या इतनी अधिक है किन तो उन्हें सम्पूर्णता में ग्रहण किया जा सकता है और नही उनसे नए शब्द ही बनाए जा सकते हैं। इस दिशा में विचार करते हुए शब्दावली आयोग ने दो प्रकार के निर्णय लिए हैं :

क) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम के आधार पर बनाए गए हैं उन्हें गृहीत किया जाए । जैसे :
कार्ल मार्क्स मार्क्सवाद ब्रेल कैप्टिम बॉयकाट डॉ– गिलोटिन

ख) ऐसे अन्य शब्द जिन का विश्व की काफी भाषाओं में प्रयोग होता है, उन्हे ग्रहण किया जा सकता है। जैसे–टेलीफोन, लाइसेंस, रॉयल्टी, परमिट ,टैरिफ आदि।

इस विचारधारा के लोगों को आदान वादी या स्वीकार वादी भी कहतेहैं। इस वर्ग को स्वीकार करने वालों का मानना है कि–

1. अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों के प्रयोग से उन सभी विदेशी भाषाओं से जुड़कर इन का प्रयोग किया जा सकता है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली (अंग्रेजी) का प्रचार दुनिया में सर्वाधिक है। इसको स्वीकार करने से अन्य भारतीय भाषा से पारिभाषिक शब्द निर्माण के झंझट से बच जाएगे।
3. भारतीय वैज्ञानिक भी अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली को अपना कर अपनी–अपनी भाषा में ग्रन्थ लिख सकेंगे। नवीन शब्दावली से परिचित होकर ग्रन्थ रचना में अधिक समय लगेगा।
4. अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली ग्रहण कर लेने से वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य के अनुवादकों की कठिनाइयाँ भी दूर हो जाएंगी।
5. विज्ञान निरन्तर प्रगतिशील है, ऐसी स्थिति में कब तक भारतीय भाषाओं में शब्द बनाए जाएँगे।

इस प्रकार इस मतावलम्बियों का कहना है कि नवरचित (नए बनाए) शब्दों की अपनी कोई अन्तर्राष्ट्रीय भूमि नहीं होगी। वे शब्द विदेशों में ही नहीं अपने बहुभाषी देश (भारत) में भी अपरिचित होंगे। अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक भाषाओं की शब्दावली को विकसित और समृद्ध होने में सहायता मिलेगी।

खण्डन– इस मत को स्वीकार करने वाले व्यक्ति प्रथम तो अन्तर्राष्ट्रीय शब्द पर ही प्रश्न चिह्न (मतलब जानने की कोशिश) लगाते हैं। उनका कहना है कि अंग्रेजी भाषा में भी प्रत्येक शब्द अन्तर्राष्ट्रीय नहीं। दूसरे, पूर्व रूप से विदेशी पारिभाषिक शब्दों को अपनाने से हमारे राष्ट्रीय सम्मान और स्वाभिमान को ठेस पहुँचेगी। अंग्रेजी को हिन्दी भाषा कभी भी पूर्णता स्वीकार नहीं कर पाएगी।

18.1.3 **प्रयोगवादी या लोकवादी** :– इस प्रवृत्ति के पक्षधर लोक प्रचलित शब्दों से ही नए शब्द बनाने की वकालत

करते हैं । जैसे–जच्चाघर, डाकघर, काम–घण्टे (वर्किंग आवर्स), आँकने वाला ((अप्रेजर) घरेलू मामले (होम अफेयर्स) बेशर्त (अनकंडिशनल) , बकायादार (डिफाल्टर) , निपटान (डिस्पोजल) आदि। हम ऐसा नहीं कह सकते कि प्रयोग और प्रचलन की दृष्टि से ये शब्द अच्छे नहीं हैं या कि अर्थ की दृष्टि से स्वयं बोधी नहीं हैं, पर कठिनाई यह है किस भी शब्दों के लिए लोक प्रचलित शब्दों से शब्द बनाना कठिन है, खासकर विज्ञान और मानविकी आदि के लिए ऐसी संकल्पनाएँ जो लोक जीवन से दूर हैं, उनके लिए लोक प्रचलित शब्दों का सर्वथा अभाव होने की वजह से शब्द बनाना कठिन है । जैसे–'ग्रच्यूटी' (इसके लिए शब्द बना है उपदान) या 'फेलो' (इसके लिए शब्द बना है अधिसदस्य) आदि। लोक शब्दों के आधार पर इन्हें व्यक्त करना कठिन है।

इनको हिन्दुस्तान वादी कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के लोगों का मत है कि भारत की संस्कृति एक मिली–जुली संस्कृति है। हिन्दी मे ंअनेक स्रोतों (साधन) से आए शब्द रूप अपनाए गए हैं। इसीलिए पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में आवश्यकतानुसार तत्सम–तद्भव रूपो तथा अरबी–फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि साधनों से आए शब्दों का भी उपयोग किया जाना चाहिए। ये शब्दावली (शब्द कोश) निर्माण में नए प्रयोग करने से नहीं हिचकिचाते, भले ही वह शब्द अटपटा एवंबिनामेल का हो।

Chasiman- मनसदी,Government–शासनिया, Emergency—अचानकी आपात स्थिति, Palychology, मनविद्या, Acknowlegement, पावती आदि।

खण्डन :– शब्दों के बनाने के ये प्रयोग हास्यास्पद (हँसी के पात्र) है। मिली–जुली संस्:तिपर बनाई यह खिचड़ी सहन करने योग्य नहीं है।

18.1.4 **मध्यमार्गी या समन्वयवादी** :– इस विचारधारा के लोग राष्ट्रीय वादी, अन्तर्राष्ट्रीयवादी प्रयोगवादी मामलों को अच्छाइयों का समावेश करके पारिभाषिक शब्द निर्माण के पक्ष में हैं। यह अनतिवादी सम्प्रदाय है। इनका रास्ता अतिवादी नहीं है। इनकी दृष्टि से

1. भारतीय मनीषा ने प्राचीनकाल तथा मध्यकाल में विभिन्न विधाओं में अपने विचारों को रूप देने के लिए जिन शब्दो का निर्माण किया, उनको अपनी सम्पत्ति मानकर रक्षित और प्रायोगिक किया जाए।
2. अंग्रेजी सहित उन विदेशी भाषाओ से, जिनके यहाँ वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द–निर्माण पर प्रचार कार्य हो चुका है, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं ने बिना किसी को संकोच चभाव से शब्द अपनाए जाएँ।
3. जो देश, विदेश तथा तद्भव शब्द हमारे देश में खूब प्रचलित है, उनको छोड़कर उनके स्थान पर दुर्बोध (जिनका पता न हो) और दुरूह शब्दों को गढ़ने की प्रवृत्ति को छोड़ दिया जाए।
4. हिन्दी के तद्भव उपसर्ग और प्रत्ययों का उपयोग करके शब्द रचना तो की जाए, किन्तु उसमें अटपटापन न आए।
5. उच्चारण की दृष्टि से कठिन शब्दों का हिन्दी भाषा में सुविधा के अनुसार आवाज को अनुकूल कर लिया जाए।
6. आवश्यकतानुसार एक से अधिक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण कर लिया जाए। जैसे–

Bloting Paper - सोख्ता कागज, स्याही चूस

Comprehensive - विशद, व्यापक, सर्व समावेशी

18.2 **निष्कर्ष–इन** चारो मतों का सार संक्षेप में निम्नलिखित है

1. राष्ट्रीयतावादी––केवल संस्कृत के उपसर्ग, प्रत्ययों और समासों आदि का आश्रय लेकर ही शब्द–निर्माण का आग्रह।

2. अन्तर्राष्ट्रीयतावादी–समग्र विदेशी शब्दों की आयात नीति के पक्ष धर।

3. प्रयोगवादी या लोकवादी–स्वतःहास्या स्पद शब्द निर्माण प्रयोग के समर्थक।

4. मध्यमार्गी–उपयुक्त मतों की सारी अच्छाइयों का समावेश करके पारिभाषिक शब्द–निर्माण के पक्ष धर।

18.3 **अभ्यासार्थ प्रश्न**

1. क्या अन्तर्राष्ट्रीयतावादी विदेशी शब्दों की आयात नीति के पक्ष धर में है ?

....

....

....

....

....

....

2. पारिभाषिक शब्द निर्माण एवं शब्द–ग्रहण के क्षेत्र में कई विचार धाराएँ तथा प्रवृत्तियाँ पनपीं हैं उनका वर्णन करें।.

....

....

....

....

....

....

3. राष्ट्रीयतावादी मत से क्या अभिप्राय है।

....

....

....

....
....
....

18.4 संदर्भ ग्रंथ–

1. डॉ भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी; पारिभाषिक शब्दावली कुछ समस्याएं, शब्द का प्रकाशन, दिल्ली।
2. डॉ भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान; शब्दकार प्रकाशन, दिल्लीं।
3. डॉ अनुजप्रताप सिहं, प्रयोजनमूलक हिन्दी, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. दंगल झाल्टे, प्रयोजन मूलक हिन्दी : सिद्धांत और प्रयोग, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली।
5. डॉ0 दिनेश प्रसाद सिंह, प्रयोजन मूलक हिन्दी और पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. डॉ. नगेंद्र ,अनुवाद विज्ञान–सिद्धांत और अनुप्रयोग
7. डॉ. नसीम–ए–आजाद, प्रयोजन मूलक हिन्दी, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली।

पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की समस्याएँ

19.0 प्रस्तावना

19.1 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की समस्याएँ

19.2 समाधान

19.3 निष्कर्ष

19.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

19.0 प्रस्तावना

पारिभाषिक शब्दावली के विविध स्वरूप हैं। यह शब्दावली व्यावहारिक होती है। इसका स्वरूप प्रयोग धर्मी होता है। मानव सभ्यता के साथ–साथ इसका भी विकास होता है। कला, ज्ञान, विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, धर्म, राजनीति, भाषा, साहित्य और व्यवसाय के लिए नयी शब्दावली की बराबर आवश्यकता पड़ती रहती है। नये सिद्धांतों, आविष्कारों, राजनीतिक प्रणालियों, आर्थिक व्यवस्थाओं, सामाजिक–धार्मिक अवधारणाओं के लिए हजारों शब्द निर्मित हुए हैं। ऐसी शब्दावली तकनीकी या पारिभाषिक शब्दावली कहलाती है। क्षेत्र, विषय के अनुसार शब्दावली का स्वरूप भी होता है।

19.1 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की समस्याएँ

प्रायः अनुवाद के सहारे विश्व भर में पारिभाषिक शब्दावली बन रही है। इसका योगदान सर्वोपरि है पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं–

1. **अर्थपरक समस्याएँ:**–अनुवाद में मुख्य रूप से अर्थ का ही संप्रेषण होता है। मूल रूप का अर्थ ही अनुवाद रूप से व्यंजित होना चाहिए, जबकि कुछ अंतर अवश्य पड़ जाता है। शब्दानुवाद भावानुवाद होता है। कभी–कभी विपरीतता भी आ जाती है। इस दशा में ठीक पहचान के लिए वाक्य, प्रकरण, अर्थ, सामर्थ्य, व्यक्ति

एवं स्वर को देखना आवश्यक होता है। मात्र अभिधार्थ लेने से समस्या अवश्य हो जाती है।

2. **सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याएँ–** अनुवाद में सामाजिक एवं सांस्कृतिक अंतरण में समस्या होती है। दो भाषाओं के अलग–अलग समाज और उनकी संस्कृतियाँ होती हैं। हर शब्द का अपना इतिहास, परिवेश, काल, संदर्भ, संस्कृति और सभ्यता होती है। अलग–अलग मुहावरे, संवाद, वर्णन, उत्सव और समारोह होते हैं। अंग्रेजी, अरबी, जापानी आदि संस्कृतियाँ भिन्न हैं। इस दशा में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं–

(क) पारिवारिक शब्दावली– 1. रिश्ते नाते की शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ। 2. संयुक्त परिवार के शब्दों के अनुवाद की समस्याएं ।

(ख) सामाजिक शब्दावली– 1. सामाजिक व्यवहार के शब्द 2. व्यावसायिक शब्दावली 3. वस्तुओं से संबंधित शब्दावली।

– सामाजिक व्यवहार के शब्द–1. संबोधनात्मक एवं भावाभिव्यंजक शब्दावली,
2. आचारपरक शब्द, 3. सभ्य गालियाँ।

– व्यावसायिक शब्दावली– 1.जातियों से संबंधित शब्दावली, 2. लोकप्रथाओं से संबंधित शब्दावली। आभूषणों से संबंधित शब्दावली

– वस्तुओं से संबंधित शब्दावली– 1. वस्त्र 2 वर्तन 3. दीपक 4. 5. खाद्य पदार्थ से संबंधित शब्दावली की समस्याए।

(ग) धार्मिक शब्दावली– 1. मंदिरों से संबंधित शब्द 2. व्रत त्योहार, उत्सव 3 देवी देवताओं से संबंधित शब्द।

(घ) आर्थिक एवं कृषक संबंधी शब्दावली–1. नाप–तौल 2. कृषक एवं कृषि की शब्दावली।

(च) कला एवं शिल्प संबंधी शब्दावली– 1. कलाओं से संबंधित 2. शिल्प शास्त्र से संबंधित 3. वाद्य यंत्रों से संबंधित 4. युद्ध विद्या से संबंधित।

(छ) अन्य – 1. महीने तथा ऋतु संबंधी 2. अन्य प्रकार की शब्दावली ।

3. **समान शब्दावली में अर्थ की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं**

1. आगत शब्दावली तथा 2. भाषाओं का समान स्रोत। आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाओं में 50% संस्कृत के शब्द मिलते हैं। हिंदी में भी संस्कृत के 50% शब्द हैं।

4. **शैलीपरक समस्याएँ** :–पारिभाषिक शब्दावली में लक्ष्य भाषा में समतुल्य शैलीगत संरचना की आवश्यकता

पड़ती है। इसमें साहित्य के क्षेत्र सा शैली का महत्व नहीं होता है।

15. **भाषा वैज्ञानिक समस्याएँ–इनका प्रारूप इस प्रकार है–**

अर्थपरक समस्याएँ – 1. ध्वनि/व्यंग्यार्थ 2. सामाजिक–सांस्कृतिक अर्थ 3. पारिभाषिक अर्थ 4. समान शब्दावली मे ंअर्थ वैषमय।

शैलीपरक समस्याएँ– 5. ध्वनि स्तर 6. शब्द स्तर 7. रूप स्तर, 8. वाक्य स्तर।

16. अच्छे अनुवादकों की कमी के कारण समस्याएँ।

17. **जटिल या क्षेत्रीय शब्दों के अनुवाद की समस्याएँ**

अंग्रेजी का 'क्लास' शब्द जिस अर्थ में रूढ़ हो चुका है, उसके लिए 'वर्ग' शब्द अक्षम प्रतीत होता है। क्षेत्रीय भाषा का 'तड़ाग' शब्द अन्य भाषा के शब्द इसका सही अर्थ देने में समर्थ नहीं हो सकते। पटवारी, धोती, दालमोट, खिचड़ी, हड़बड़, गड़बड़ तथा लोटा आदि अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनके सही पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में नहीं ढूँढ़े जा सकते हैं। हिंदी के कुछ शब्द–यज्ञ, तपस्या, साधना, आश्रम, अहिंसा, जप, भक्ति, उपनयन, श्राद्धकर्म, पूछताछ आदि शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, उनके वाचक शब्द अंग्रेजी में नहीं मिलते। इसी प्रकार धोती, साड़ी, कुर्ता, मिरजई, पगड़ी टीका, कंठा, हार, कंगन, पायल, घुँघरू, छमछम, चमचम, दमदम आदि शब्दों के अंग्रेजी शब्द बड़ी कठिनाई से मिल सकते हैं। भात, दाल, हलवा, पूड़ी, पुलाव, कचौड़ी, रसगुल्ला, जलेबी, पेड़ा आदि के लिए अंग्रेजी शब्द नहीं ढूँढ़े जा सकते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी के स्टेशन, ब्रेड, चाकलेट, केक, कोट, टाई, ट्रेन, रेल, टार्च आदि के शब्द यथावत हिंदी में नहीं मिलते हैं।

8. **ध्वनि स्तरीय समस्याएँ**

सौंदर्य वृद्धि के लिए ध्वन्यार्थ व्यंजक शब्द, ध्वनि पर आधारित अलंकार, विभिन्न शैलियों के लिए उपयुक्त ध्वनियों आदि का प्रयोग लेखकगण, सोद्देश्य रूप में करते हैं। जिनके लिए लक्ष्य भाषा में समान प्रयोग ढूँढ़ना अनुवादक के लिए जटिल कर्म होता है। हिंदी के 'अंहिसा' शब्द के लिए अंग्रेजी में इस प्रकार का ध्वनि पर एक सौंदर्य युक्त शब्द नही है। हिंदी मेंचीं–चीं, खपड़ा, हौड़ी शब्द का अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया जा सकता है। मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम, उर्वशी, ऋतंभरा आदि के अनुवाद के लिए अंग्रेजी में उपयुक्त शब्द नहीं हैं।

इस दशा में दो समस्याएँ सामने आती हैं–1. लिप्यन्तरण की समस्या 2. विदेशी आगत शब्दों के ध्वन्यानुकूल की समस्या।

9. **ध्वनिमूलक पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद की समस्याएँ**–प्रत्येक भाषा में ध्वनि विशेष के शब्द होते हैं। अन्य भाषा में तद्वत शब्दों का मिलना कठिन होता है, जैसे–झनझनाना, किलकिलाना, कसमसाना,

कुनमुनाना, बुलबुलाना, चमचमाहट, चटकमटक आदि।

10. **अस्पष्ट सरकारी नीति की समस्याएँ**–सरकार कभी सोचती है कि पारिभाषिक शब्दावली कभी भारतीय भाषाओं के आधार पर हो, तो कभी सोचती है कि अंग्रेजी या दूसरी भाषाओं के शब्दों को ज्यों–का–त्यों उसी रूप में ग्रहण कर लिया जाए।

11. **शब्दावली के निर्माण की निश्चित समिति की समस्याएँ**–पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण केंद्रीय समिति द्वारा न होकर अलग–अलग राज्यों द्वारा होता है। फलतः एकरूपता नहीं आ पाती है। अंग्रेजी की प्लानिंग के लिए बंगला में परिकल्पना, हिंदी में योजना, आयोजना आदि शब्द प्रचलित हैं।

विशेष–कुछ शब्दों का निर्माण विभिन्न भाषाओं के मेल से हुआ है, जैसे उप किरायेदारी (ub lelting) इसमें उप संस्कृत उपसर्ग है तो किरायेदारी' फारसी शब्द है। जिलाधीश (collector), अरजिस्ट्रीकृत (unregistered), स्टापित (tamped)।

समासों के आधार पर निर्मित शब्दों में भी यही प्रवृत्ति देखी जाती है 'सूचनाब्यूरो' (Information Bureau) रोजगार अधिकारी (Employment Officer), मिथ्या 'दस्तावेज''(False Document).

समाधानः–इस दिशा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय तथा वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की सबसे अधिक रचनात्मक भूमिका है । यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत की शब्द–निर्माण सामर्थ्य सबसे अधिक है। संस्कृत की लगभग 2000 धातुएँ अनेक शब्दों के निर्माण में सहायक हैं। इसके साथ ही प्रत्यय और उपसर्ग लगाकर नये शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। उपसर्ग, प्रत्यय और धातुओं की सहायता तथा शब्दों के क्रम–परिवर्तन, संधि आदि से लगभग 85 करोड़ शब्द बनाये जा सकते हैं, ऐसा अंदाज है। इसके साथ विडम्बना है कि बहुत शब्द व्यावहारिक जगत में आ ही नहीं पाते हैं। शिक्षा और साहित्य में भी नहीं प्रयुक्त होते हैं। इसी से शब्द निर्माण की प्रक्रिया मिले–जुले सिद्धांतों के अनुसार चलायी जाती है। अनेक शब्द चलनजगत्से बाहर हो गये हैं। अतः प्रशासनिक कार्य–क्षेत्र में चलने के लिए शब्दावली का व्यावहारिक, स्वाभाविक, सरल रूप ही सम्मानित हो सकेंगे। अन्य भाषाओं को लेते समय भी इनका ध्यान रखना चाहिए।

शब्दावली आयोग की जिन मुख्य सिफारिशों को समिति ने स्वीकार किया है, वे ये हैंः–

1. शब्दावली तैयार करने में मुख्य लक्ष्य उसकी स्पष्टता, यथार्थता और सरलता होनी चाहिए।

2. अंतरराष्ट्रीय शब्दावली अपनाई जाए, जहाँ भी आवश्य कहो, उसको अनुकूल कर लिया जाए।

3. सभी भारतीय भाषाओं के लिए शब्दावली का विकास करते समय लक्ष्यय होना चाहिए कि उसमें जहाँ तक हो, एक रूप ता हो।

4. हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली के विकास के लिए जो प्रयत्न केंद्र और राज्यों में हो रहे हैं, उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए समुचित प्रबंध किये जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त समिति का यह मत है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सभी भारतीय भाषाओं में जहाँ तक हो सके एक रूपता होनी चाहिए। इस दृष्टि से समिति ने यह सुझाव दिया कि इस क्षेत्र में विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये गए काम में समन्वय स्थापित करने और उसकी देख–रेख के लिए तथा सभी भारतीय भाषाओं में प्रयोग में लाने की दृष्टि से एक प्रामाणिक शब्द को शनिकाल ने के लिए एक ऐसा स्थायी आयोग कायम किया जाये, जिसके सदस्य मुख्यतः वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक हों।

निष्कर्ष–अतः कहा जा सकता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वे शब्द जिनका प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में होता है, कम–से–कम परिवर्तन के साथ अपना लिए जाएँ अर्थात मूल शब्द वे होने चाहिए, जो कि आजकल अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली में काम आते हैं। उनसे व्युत्पन्न शब्दों का जहाँ आवश्यक हो भारतीयकरण किया जा सकता है।

ख–विज्ञान और तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए समिति के सुझाव के अनुसार स्थायी आयोग का निर्माण किया जा, ।

19.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की समस्याओं पर प्रकाश डालें ।

....

....

....

....

....

....

(2) पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में आने वाली सामाजिक–सांस्कृतिक समस्या पर टिप्पनी कीजिए।

....

....

....

....

....

....

(3) पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में आई समस्याओं के समाधान पर चर्चा करें ।

....

....

....

....

....

....

19.5 संदर्भ ग्रंथ–

1 डॉ भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी; पारिभाषिक शब्दावली कुछ समस्याएं , शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली

2. डॉ भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्लीं।

3 डॉ अनुजप्रताप सिहं, प्रयोजन मूलक हिन्दी, नमन प्रकाशन नई दिल्ली।

4. दंगल झाल्टे, प्रयोजन मूलक हिन्दी : सिद्धांत और प्रयोग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

5. डॉ0 दिनेश प्रसाद सिंह, प्रयोजन मूलक हिन्दी और पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

6. डॉ. नगेंद्र ,अनुवाद विज्ञान–सिद्धांत और अनुप्रयोग

अनुवाद और पारिभाषिक शब्द का संबंध

20.0 रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना

20.2 अनुवाद और पारिभाषिक शब्द का सम्बन्ध

20.3 अन्यासार्थ प्रश्न

20.4 पठनीय पुस्तकें

20.1 प्रस्तावना

पारिभाषिक शब्द वे हैं जो सामान्य व्यवहार की भाषा के शब्द न होकर भौतिकी, रसायन, प्रणिविज्ञान, दर्शन, गणित, इंजीनियरी, विधि, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, भूगोल आदि ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के विशिष्ट शब्द होते हैं तथा जिनकी अर्थ सीमा सुनिश्चित व पारिभाषित होती है। इसलिए ज्ञान–विज्ञान की किसी भी शाखा या व्यवहार क्षेत्र संबंधी सामग्री का अनुवाद करते समय पारिभाषिक शब्दावली विशेष महत्वपूर्ण होती है। पारिभाषिक शब्दावली के ज्ञान के अभाव में अनुवादक सामग्री का उपयुक्त अनुवाद नहीं कर सकता ।

20.2 अनुवाद और पारिभाषिक शब्द का सम्बन्ध

अनुवाद एक भाषा में उपलब्ध पाठ सामग्री को दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ–सामग्री में रूपांतरित करने की प्रक्रिया और उसकी परिणति है। रूपातंरण की यह प्रक्रिया कोई सरल–सुगम प्रक्रिया नहीं है। इस प्रक्रिया में अनुवादक के लिए उस समय अनुभव को फिर से जीना आवश्यक होता है, जिस अनुभव से होकर लेखक लेखन की प्रक्रिया में गुजरा हो। अपने इस प्रयास में अनुवादक को लेखक की मानसिक पर्तों को चीरते हुए भरसक अधिक–से–अधिक गहरे पैठना होता है और उसकी पूरी मनो प्रक्रिया का पुनर्निर्माण करना होता है। समतुल्यता की सिद्धि प्रायः (मृगमरीच्बिका) चिका सिद्ध होती है क्योंकि एक ओरतो किसी भी भाषा में प्रयोग होते होते हर शब्द के साथ (फिर चाहे वे शब्द सामान्य हों अथवा पारिभाषिक या अर्द्ध पारिभाषिक) कुछ ऐसी अर्थ छायाएं और अर्थ च्छवियां अधिक जुड़ती चली जाती है कि उन्हें उनकी समग्रता में दूसरी किसी भी भाषा का कोई शब्द उजागर नहीं कर पाता। दूसरे, अर्थ की स्थिति व्यष्टि और एकल शब्द में उतनी नहीं होती,

जितनी शब्द या शब्द समूह (अथवा वाक्य) में और अर्थ प्रकरण तथा वक्ता की मानसिकता दोनों से कहीं न कहीं जुड़ा होता है तथा ये दोनों ही व्यष्टि शब्द की परिधि में नहीं समा पाते। फिर इस शब्दगुंफ या शब्द समूह (अथवा वाक्य) में भी संपूर्ण मंतव्य की अभिव्यक्ति हो, यह भी आवश्यक नहीं, बल्कि और स्पष्ट कहें तोवक्ता या लेखक के चेतना स्तर पर जो कुछ घटित होता है वह अभिव्यंजना के स्तर तक आने में प्रायः सदा ही अपना कुछ–न–कुछ तत्व या अंश खो चुका होता है और इस क्षति का प्रतिकार करना भी अनुवादक के कर्तव्य कर्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है । अंततः, अनुवाद 'समतुल्यता' की ही साधना है। इस समतुल्यता की सिद्धि जितनी अधिक होती है अनुवाद उतना ही सफल कहा जाएगा–दोनों में प्रत्यक्ष आनुपातिकता होती है लेकिन शब्दों की अर्थ च्छायाओं, छवियों तथा अभिव्यक्ति की वक्रताओं, शिलष्टता आदि के तथा वाक्य–रचना–वैभिन्न्य के अनेक बाधा–बंधनों के कारण हम जिसकी उपलब्धि अनुवाद में कर पाते हैं वह सन्निकटन (approximation) ही होता है। पूर्ण 'समतुल्यता' की सिद्धि एक आदर्श ही बनी रहती है, यथार्थ नहीं बन पाती ।

अनुवादक अनूद्य पाठ सामग्री से उसके स्वरूप से जुड़ा हुआ होता है। पाठ–सामग्री जैसी होती है उसी के हिसाब से अनुवाद करने में उसे कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शास्त्रकार एवं वैज्ञानिक के मंतव्य को नियत निश्चित अर्थ देने वाली भाषा का स्वरूप भी विशिष्ट होता है। काव्य की भाषा में जैसी तरलता, सुकुमारता, शिलष्टता तथा मार्दव होता है, शास्त्र की भाषा उससे अपना काम नहीं चला सकती। शास्त्र बौद्धिक और विचारात्मक लेखन होता है, अतः उसकी भाषा में स्वभावतः अधिक नियतार्थकता और निश्चयार्थकता होती हैं और उसमें पारिभाषिक शब्दावली का बड़ा योगदान होता है। शास्त्र या विज्ञान का मूलमंतव्य निश्चय ही

सूचना देना या संप्रेषित करना होता है परंतु वह सूचना बिना माध्यम के संप्रेषित नहीं हो सकती, उसका माध्यम भाषा होती है। अतः भाषा के स्वरूप की महत्ता वैज्ञानिक लेखन में अनिवार्य है। भाषा शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक चितन को मूर्त रूप देकर उसे संप्रेषणीय बनाती है। इस दृष्टि से देखें तो हमारे वैज्ञानिक लेखकों–मनीषियों और अनुवादकों का भाषा के प्रति जो उदासीन भाव है, वह न केवल भाषा के स्वरूप को विकृत कर रहा है वरन् वैज्ञानिक चिंतन–मनन की भी क्षतिक रहा है।

काव्य–भाषा अनुभूतियों और भावनाओं की वाहिका होती है और वह अपने समस्त उपादान अपने पारिवेशिक दैनंदिन जीवन से जुटाती है। फलतः काव्य–भाषा में पारिभाषिक शब्दावली की गुंजाइश नहीं होती। दूसरी ओर हम अपने देश और भाषा के संदर्भ में जब वैज्ञानिक लेखन की बात करते हैं तो प्रकारांतर से उसका अर्थ वैज्ञानिक कृतियों के अनुवाद से ही होता है क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो हिंदी में आज जो भी वैज्ञानिक साहित्य आ रहा है वह पोषित या अघोषित रूप में अनुवाद ही है। कहीं–कहीं तो कोई मूल के नाम का उल्लेख कर देता है पर कहीं मूल कृतिकार के कृतित्व को अपने ढंग से रूपांतरित करके उसका नामोल्लेख करना भी आवश्यक नहीं समझता। अस्तु, वैज्ञानिक–शास्त्रीय कृतियों में पारिभाषिक शब्दावली की जितनी

आवश्यकता मूल कृति कार को होती है उतनी ही आवश्यकता अनुवादक को उसके समकक्ष लक्ष्य भाषा की पारिभाषिक शब्दावली की होती है। पारिभाषिक शब्दों के समुचित पर्यायों के बिना लक्ष्य भाषा मेंमूल कृतिकार का मंतव्य व्यक्त करना असंभव प्राय होता है। अगर इस समकक्ष शब्दावली का अभाव है तो यह दोष अनुवादक का नहीं होगा, यह लक्ष्य भाषा की कमी है। स्रोतभाषा में किन्हीं वस्तुओं, विचारों अथवा व्यापारों के संप्रेषण के लिए जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया हो, उनके समानांतर समानार्थक शब्द यदि लक्ष्य भाषा में न हों तो अनुवाद में अवितथता एवं परिशुद्धता ले आना असंभव हो जाता है ।

पारिभाषिक शब्द के दो प्रमुख गुण होते हैं: (1) नियतार्थता और (2) परस्पर–अपवर्जिता (mutual exclusiveness) पारिभाषिक शब्द का अर्थ निश्चत होना चाहिए और एक (प्रमुख) अर्थ को व्यक्त करने वाला केवल एक ही शब्द होना चाहिए पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में यह असह्य होता है कि दो शब्दों की अर्थ सीमाएँ एक–दूसरे से टकरायें या एक–दूसरे के अर्थ वृत्तों को काटें। वैज्ञानिक भाषा से जिस परिशुद्धता की अपेक्षा होती है, उसमें द्वयर्थकता या संदिग्धार्थ के लिए अवकाश नहीं होता पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता उनकी प्रगति के अनुरूप निरंतर बढ़ती रहती है। ज्यों–ज्यों ज्ञान–विज्ञान के चरण आगे बढ़ते हैं, उनकी नयी उपलब्धियों को मूर्त रूप देने के लिए पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। पारिभाषिक शब्द का जन्म एक सीमित बौद्धिक वर्ग में होता है और वह एक खास सीमा के नीचे या बाहर कभी नहीं जाता और वह सीमा होती है, ज्ञान एवं बौद्धिकता के प्रसार की सीमा ।

इस दृष्टि से पारिभाषिक शब्दावली बौद्धिक तंत्र की उपज है और जहाँ तक इस तंत्र की सीमा है, वहीं तक उसका प्रसार होता है,। इस संदर्भ में जो लोग पारिभाषिक शब्दों के 'आमफहम' या 'सर्वजन सुलभ एवंसरल' न होने की शिकायत करते हैं, वह उचित प्रतीत नहीं होता। किसी भी भाषा में समुचित पारिभाषिक शब्दावली की विद्यमानता उस भाषा भाषी वर्ग के बौद्धिक उत्कर्ष एवं संपन्नता की परिचायक होती है और उसका अभाव बौद्धिक दरिद्रता का सूचक है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर एक सामान्य निष्कर्ष यह निकालता है कि विशेषी कृत और विशिष्ट बौद्धिक लेखन पारिभाषिक शब्दावली के अभाव में संभव नहीं होता, जहाँ जितनी अधिक विचारात्मकता और बौद्धिकता अपेक्षित होगी, वहाँ उतना ही अधिक पारिभाषिक शब्दों का सहारा लेना पड़ेगा ।

पारिभाषिक शब्दों को भी स्थूलतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– एक वर्ग में वे शब्द आते हैं जो किसी वस्तु अथवा पदार्थ के द्योतक होते हैं और दूसरे वर्ग में वे शब्द होते हैं जो किसी व्यापार, प्रक्रिया अथवा संकल्पना के प्रति इंगित करते हैं। पहले प्रकार के शब्दों को हम सामान्यतः 'पदार्थवाची' (ऑब्जेक्टिव) और दूसरे प्रकार के शब्दों को संकल्पनावाची' (कंसेप्चुअल) कहते हैं। पहले प्रकार के शब्द प्रायः मूर्तवाची होते हैं और दूसरे प्रकार के अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और अमूर्तवाची होते हैं। पदार्थवाची शब्दों का संबंध विविध प्रकार की भौतिक वस्तुओं से होता है और प्रायः प्राकृत विज्ञानों की परिधि में ऐसे शब्दों का बाहुल्य होता है। इन विज्ञानों का क्षेत्र विविध चराचर रूपों का अध्ययन है और इनमें प्रायः वर्णनों–विवरणों की बहुलता

रहती है–प्राणि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भू विज्ञान, भौतिकी, खगोल विज्ञान, रसायन आदि इसी प्रकार के विज्ञान हैं। दूसरी ओर वे विज्ञान हैं जो बहिरंग जगत की अपेक्षा मनुष्य के अंतरंग जगत का तथा समष्टि के रूप में उसके कार्यकलाप का अध्ययन–विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। स्पष्टतः उनका क्षेत्र अधिक सूक्ष्म और अधिक अबूझ–रहस्यमय होता है, अंतरंग जगत की गतिविधियों के विश्लेषण में कहीं अधिक गहराई अपेक्षित होती है। इसका क्षेत्र उतना स्थूल नहीं होता और फलतः जिस शब्दावली का उसमें सहारा लिया जाता है, वह भी उतनी ठोस नहीं होती । इसके अंतर्गत मनोविज्ञान, दर्शन, अर्थ शास्त्र, राजनीति, वाणिज्य, भाषा विज्ञान, आलोचना आदि मानविकीय विषयों का समावेश किया जा सकता है। स्वभावतः इन विषयों के लेखन में विवेचनात्मकता और विचारात्मकता अधिक होती है और लेखक संकल्पनावाची शब्दों का अधिक सहारा लेने के लिए बाध्य होता है ।

जिस लेखन में संकल्पनावाची शब्दों का सहारा अधिक लिया जाता है, उसका स्वरूप उस लेखन की अपेक्षा अधिक गहरा और सूक्ष्म होता है जिसमें पदार्थवाची शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। यहाँ एक प्रकार के लेखन से दूसरे प्रकार के लेखन की श्रेष्ठता या उत्कृष्टता सिद्ध करना कतई अपेक्षित नहीं है, केवल दोनों के सापेक्षिक स्वरूप की ओर इंगित करना अभीष्ट है। अनुवादक की दृष्टि से सहज और कठिन विषय की श्रेणियां बनाई जायें तो कहना होगा कि सबसे कठिन काव्य (साहित्य) का अनुवाद है, उससे कम कठिन मानविकीय विषयों का अनुवाद करना होता है और क्रम में सबसे कम कठिन कार्य होता है वैज्ञानिक अनुवाद। वैज्ञानिक तोविशेषणही ऐसा है जिसका अर्थ है–व्यवस्थितक्रमबद्ध, तर्क बुद्धिग्राह्य और स्पष्टता। फलतः वैज्ञानिक लेखन में भी विज्ञान के ये निहित गुण समाविष्ट होते हैं और अनुवाद कभी ऐसे लेखन का अनुवाद करते वक्त कहीं अधिक आत्मविश्वास से समतुल्यता की निकटतम सीमाओं में प्रवेश करने का प्रयत्न कर सकता है।

पारिभाषिक शब्द अपने विशिष्ट पारिभाषिक रूप और अर्थ में ही प्रयुक्त हों– यह आवश्यक नहीं। अरस्तु ने अपने 'काव्य शास्त्र' में कहा है कि एक ही शब्द अलग–अलग प्रकरणों में पारिभाषिक भी हो सकता है और सामान्य भी । इस प्रकार के शब्दों को वस्तुतः वैज्ञानिकों ने एक तीसरी श्रेणी में परिगणित किया है और उसे 'अर्धपारिभाषिक' विशेषण दे दिया है। ये शब्द दोनों की सीमा–रेखा पर होते हैं और अपने भीतर दोनों ओर सरक जाने की संभावनाओं को समाये रहते हैं । अनुवादक से ये शब्द थोड़ी सावधानी की अपेक्षा करते हैं क्योंकि अर्धपारिभाषिक शब्द भी हमारे दैनंदिन जीवन के अंग ही होते हैं और उनके अटपटे पर्याय हमारे भाविक संस्कारों पर चोट करते हैं। यह कतई आवश्यक नहीं होता कि हम ऐसे पारिभाषिक शब्दों के लिए सदा ठेठ पारिभाषिक पर्यायों का ही प्रयोग करें (भले ही पारिभाषिक शब्द–संग्रहों में इनका समावेश हो और उनके पर्याय भी दिये गए हों।) ऐसे अर्धपारिभाषिक शब्दों के संदर्भ में अनुवादक को स्वतंत्रता होती है और वह परंपरागत शब्दों के माध्यम से अगर अर्थ की सही अभिव्यक्ति कर सके तो उसे वैसा ही करना चाहिए। कुछ अत्यंत प्रचलित शब्दों के पारिभाषिक पर्यायों का प्रयोग लक्ष्य भाषा के पूरे वाक्य को झक झोर देता है। मैं इस प्रकार के कुछ उदाहरण देकर अपनी बात स्पष्ट करना चाहूँगा। मेरे सामने एक अनूदित पुस्तक है : 'शिक्षा मनोविज्ञान के तत्त्व' (लेखक–हाफ–टाइटिल पर सी० ई० स्कीनर तथा भूमिका में चार्ल्स ई० स्किनर; और अनुवादक

: श्रीमती जी० पी० शेरी, श्री शंभुनाथ उपाध्याय, श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त प्रकाशक–उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ एकादमी)। इसमें एक बहुप्रयुक्त शब्द है– 'अधिगम', जो अनेक अध्यायों के शीर्षकों–उपशीर्षकों में आया है : 'अधिगम के सामान्य पहलू', 'अधिगम प्रक्रिया', 'अधिगम की प्रकृति एवं परिभाषा', 'अधिगम की गत्यात्मकता' अनुवादकों ने पाठक के साथ एक मजाक यह किया है कि कहीं भी हिंदी–अंग्रेजी शब्द सूची नहीं दी ताकि उसकी मदद से पाठक हिंदी शब्दों के सही अर्थ जानने का प्रयत्न कर सके। इस अनुवाद का कोई भी पृष्ठ खोलकर आप पढ़ें 'अधिगम' से पाला जरूर पड़ेगा। कुछ नमूने पेश हैं : समस्त प्राणी उस समय अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अधिगम करते हैं जब वे अच्छी भावावस्था में होते है' (पृ० 270) य 'अधिगम के दूसरे सिद्धांत को साधारण कहावत' अभ्यास पूर्ण बनाता है' के द्वारा दृष्टांतित किया जा सकता है'; 'शारीरिक गति–संबंधी अधिगम के अतिरिक्त

अधिगम के लिए अभ्यास ही केवल महत्वपूर्ण तत्व नहीं है, कुशलताओं के अधिगम में भी प्रभावशाली अधिगम के लिए अभ्यास के अतिरिक्त भी ओर कुछ अधिक की आवश्यकता है' (पु० 271) । 'अधिगम' के लिए मैंने बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रह के अथाह जल मेंडुबकी लगाईतो पता चला यह समंतदपदह का एक पर्याय है–दूसरे पर्याय हैं 'सीखना' तथा विद्वता'। मैं समझता हूँ इनमें अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ 'सीखना' शब्द बखूबी काम दे सकता है और उसका प्रयोग करते हुए अगर वाक्य थोड़ा घुमा–फिरा कर रचना पड़े तो भी बुरा नहीं क्यों कि कम–से–कम अर्थ तो पाठक के पल्ले पड़ जायेगा। उदाहतण स्वरुप, your approach to this problem is prejudiced का अनुवाद एक सज्जन ने किया इस समस्या के प्रति आप का उपागम पूर्वाग्रह ग्रस्त है ।' इसी प्रकार attitude के लिए अनेक प्रसंगों में 'रवैया', 'रुख' शब्द कहीं अधिकसटीक प्रतीत होते हैं, अभि–वृत्ति' नहीं । अतः इन अर्ध पारिभाषिक शब्दों के पर्याय चुनते वक्त अनुवादक को बहुत सावधान रहना चाहिए।

ठेठ पारिभाषिक शब्दों के संदर्भ में अनुवादक को यह स्वतंत्रता नहीं होती– यह ठीक है पर उसका प्रयोग वाक्य में कैसे करने से वाक्य सबसे अधिक सरल और सहज बन जाता है, इस बात का ध्यान अनुवादक को अवश्य रखना होगा। अकसर अनुवादों में वाक्यों के साँचे ऐसे होते हैं कि वे लक्ष्य भाषा की प्रकृति को खंडित करके मंतव्य को दुर्बोध बना देते हैं। स्वीकृत पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हुए अनुवादक को यह नहीं भूलना चाहिए कि उससे यह भी अपेक्षा होती है कि वह हिंदी को हंदी ही बनी रहने दे, कोई और भाषा न बना डाले। सबसे बड़ी आवश्यकता यह समझ लेने की होती है कि अनुवाद में वाक्यों का बुनियादी साँचा सदा लक्ष्य भाषा का रहना अनिवार्य है

अनुवाद में वाक्य–रचना के प्रश्न के संदर्भ में एक और समस्या उभरती है, आदत्त या आगत शब्दों के लिंग निर्णय की। इन आदत्त शब्दों में तो कुछ अंग्रेजी के तथा अन्य भाषाओं के ऐसे शब्द हैं जो चिरकाल से हिंदी में प्रयुक्त हो रहे हैं और जिन कालिंग रूढ़ि अथवा प्रयोग से निर्धारित हो चुका है। हिंदी में लिंग–निर्णय का कोई एक सर्व सम्मत आधार नहीं, कही उच्चारण में अंत्य स्वर के आधार पर लिंग निर्धारित हो जाता है, कहीं आदत्त शब्द के हिंदी पर्याय अथवा उसके निकटवर्ती अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाले हिंदी शब्द के आधार

पर होता है परंतु सर्वथा निर्विवाद कोई आधार नहीं है। यही कारण है कि हिंदी के शब्द–भंडार में पहले ही ऐसे शब्दों की कोई कमी नहीं जिनके प्रयोगों में लिंगगत अव्यवस्था विद्यमान रही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे शैलीकार कहीं 'सिंह की सटा' लिखते हैं और कहीं सिंह के सटा' (चारु चंद्रलेख)। परंतु इन आदत्त पारिभाषिक शब्दों ने तो इस समस्या को सहसा विराट् रूप दे दिया है। इस प्रकार के असंख्य शब्द हैं जिनके प्रयोग में लिंगगत अव्यवस्था होने की पूरी संभावनाएँ हैं, उदाहरणार्थ–सिरोसिस (cirrhosis), सिस्टेला (cistella), (citronella), सिरोपेडिया (cirripedia), सिरस (cirrus), सिरसनोडोसस (cirrus nodosus), सरसंक्स (cirsak), सिसंम्पीलीस पेरिस (cissampelos pareira), सिसाइड (cissoid), सिटे (cite), सिट्रकोनेट (citraconate), सिट्रल (citral), सिट्रेट (citrate), सिट्रिन (citrin), सिट्रीनिन (citrinin), सिट्रोमाइसीस पिफेरिमस (citromyce pfefferiamus), साइट्रोमाइसिटिन (citromycetin), सिट्रोनेलेल (citronellal), सिट्रोनेलॉल (citronellol), सिट्रलस वल्गैरियस (citrullus vulgaris), सिट्रस (citrus), सिट्स औरें–शियम (citrus aurantium), सिट्रस डेकूमाना (citrus decumane). ये सारे शब्द बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रह–विज्ञान (खंड 2) के एक पृष्ठ (पृ० 337) पर हैं और इन 23 पारिभाषिक शब्दों में से हरेक ऐसा है जिसके लिंग–निर्धारण में कोई भी दस हिंदी भाषी लेखक/अनुवादक अपने एक ही प्रयत्न में व्यापक अव्यवस्था को जन्म दे सकते हैं। हम एक प्रयोग करें तो शायद इनमें से एक भी शब्द ऐसा नहीं निकलेगा, जिसे दस के दस लोग निरपवादरूप से एक ही लिंग मे ंप्रयुक्त करें। अतः वैज्ञानिकों और भाषाविदों–अनुवादकों के एक प्रबुद्ध दल को पारिभाषिक शब्दों के लिंग निर्णय का कार्य तुरंत कर देना चाहिए। अव्यवस्था की गुंजाइश जितनी कम हो उतना ही हिंदी के लिए अच्छा रहेगा ।

एक बहुत बड़ी समस्या और रह जाती है, लिप्यंरतण की या कहें नागरीकरण की। इस समस्या के दोपहलू हैं, एक तो उन द्विपद–नामों के लिप्यंतरण की समस्या है जिनका एक अंतर्राष्ट्रीय ढर्रा बन गया है और जिनके उच्चारणो में एक देश और दूसरे देश में बहुत कम भेद है और भेद है तो वह किसी देश–विशेष के निवासियों के उच्चारण–यंत्र के वैशिष्ट के कारण है । पहला प्रश्न तो यही है कि (जीव विज्ञानों से संबंधित) इन अंतर्राष्ट्रीय द्विपद–नामों को नागरी अक्षरों में लिखा भी जाए या रोमन अक्षर ही इनके लिए अधिक उपयुक्त हैं। कुछ वैज्ञानिक इन्हें रोमन अक्षरों में ही लिखने के पक्ष में हैं। नागरी अक्षरो में लिखने का निर्णय करते ही एक समस्या और सामने आती है कि–द्विपद नामावली में जीनस–नाम को बड़े अक्षर (capital letter) से लिखना आरंभ करते हैं और स्पीशीज नाम को छोटे (small) अक्षर से (जैसे Citrus aurantium,Citromyces pfefferiamus)। नागरी में यह छोटे और बड़े अक्षरों का भेद कैसे किया जाएगा? यह विचारणीय प्रश्न है जिस पर वैज्ञानिकों को हर दृष्टि से विचार करके निर्णय लेना होगा।

इससे थोड़ा हटकर एक और प्रश्न है। उच्चस्तरीय वैज्ञानिक लेखन में संदर्भ–ग्रंथों की सूचियों के अंतर्गत अकसर अंग्रेजी के अलावा फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, डच, रूसी आदि कई भाषाओं के ग्रंथों का उल्लेख रहता है। इन्हें नागरी में लिखने के लिए इन सभी भाषाओं के जानकारों की सुविधाएँ उपलब्ध होना आवश्यक है,

तभी उनका लिप्यंतरण संभव है। ये प्रायः व्यक्ति के लिए तो दुर्लभ होती है, संस्थाओं के लिए भी उतनी सुलभ नहीं होती और फिर विविध भाषाओं के नागरीकरण के लिए पहले यह आवश्यक होगा कि नागरी में कुछ और प्रतीक चिह्न जोडे जाएं क्योंकि इन भाषाओं में अनेक ध्वनियां ऐसी है जो नागरी की परंपरागत वर्णमाला के द्वारा लिप्यंतरित नहीं की जा सकतीं। यह भी एक अहम् सवाल है कि इन सबका लिप्यंतरण होना भी चाहिए या नहीं और अगर होना चाहिए तो उनके लिए प्रतीक चिह्नों की व्यवस्था का क्या रूप हो ? – इस सवाल पर भी वैज्ञानिको ंतथा भाषाविदों को मिलकर कुछ सैद्धांतिक निर्णय लेना होगा। आज यह निर्णय अनुवादकों के संदर्भ में लिया जाएगा, कल को यही मौलिक लेखन के संदर्भ में भी लागू होगा।

अब प्रश्न रहता है द्विनामपदों से भिन्न उन अन्य विदेशी शब्दों का जो हम अपनी शब्दावली में ग्रहण करते हैं। पारिभाषिक शब्दावली के विकास की विविध पद्धतियों में' आदान' भी एक स्वीकृत पद्धति है परंतु इस प्रकार के शब्दों के लिप्यंतरण की समस्या सदा ही सामने आती है। अनेक शब्द कहीं तो पारस्परिक संपर्क के फलस्व रूप सहज रूप मेंढल जाते हैं अर्थात् घुल–मिल जाते हैं। जब हिन्दी में वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली बनाने के प्रयास शुरू हुए और पुस्तकें लिखने–लिखाने का उपक्रम हुआ तो यह प्रक्रिया गति पकड़ उठी। ऑक्सीजन, मलेरिया, कंगारू, स्पुतनिक, टेलीविजन, बोल्ट, रेडियो आदि शब्द हमारी भाषा में खप चुके हैं क्योंकि इनके लिए पर्याय गढ़ लेना सहज नहीं और ये इतने अपने बन गए हैं कि इन्हें निकाल देना भी सम्भव नहीं।

पारिभाषिक–वैज्ञानिक शब्दावली के संदर्भ में आदत–आयातित शब्दों के लिप्यंतरण की समस्या पर विश्वविद्यालय–शिक्षा–आयोग ने 1948–49 ई० में विचार किया था और उसने सिफारिश की थी किन शब्दों को भली भांति आत्मसात् करने के लिए उच्चारणों को भारतीय भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था के सांचे में ढालना होगा और उनकी वर्तनी को भी भारतीय लिपियों के ध्वनि–प्रतीकों के अनुरूप बनाना होगा। ऊपर जो प्रश्न उठाया है उसका एक जवाब शिक्षा आयोग की सिफारिशों की इस पंक्ति में निहित है जो भावी विचार विमर्श का आधार बन सकता है। इसी बात की पुष्टि आगे चलकर उक्त सिफारिशों पर विचार करेन वाले राजभाषा आयोग ने की थीः ''अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को अंगीकृत किया जाए या भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप ढालकर ग्रहण किया जाए।'' परंतु 1951 ई० में शिक्षा मंत्रालय द्वारा नियुक्त भाषाविद्–समिति ने इन प्रश्न पर दूसरा रुख अपनाकर ''आधुनिक युग में जन्मे या नए बने शब्दों को, जिनका प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पारिभाषिक शब्दों के रूपमें होता है–हिंदी तथा अन्य भाषाओं में उस रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए जिस रूप में वे अंग्रेजी पुस्तको ंमें प्रयुक्त होते हैं जैसे gas, penicillin, quinine, plastic, merceri.

स्पष्ट है कि इन दोनों मतों में एक विदेशी ध्वनियों के भारतीकरण के पक्ष में है और दूसरा ध्वनियों के अंग्रेजीवत् लिप्यंतरण के लिए लिपियों के विकास–विस्तार के पक्ष में। वस्तुतः कोई भी भाषा विदेशी शब्दों को ज्यों–का–त्यों ग्रहण नहीं कर पाती। उसके अपने ध्वनि–तंत्र के अनुरूप शब्दों के उच्चारण अवश्य ही रूपांतरित हो जाते हैं। मूलभाषाओं के उच्चारण का अनुसरण करने की बात अगर कही जाये तो वह युक्ति

युक्त लगती है, अंग्रेजी में किसी भाषा के शब्दों का जो उच्चारण स्थिर हो गया है उसे ज्यों–के–त्यों ग्रहण करना तो सर्वथा अवैज्ञानिक होगा। इस संदर्भ में रोमी दूतावास के प्रो० गेलांते ने (जो सांस्कृतिक सहचारी थे तथा इतिहास के भूत पूर्व प्रोफेसर एवं मूर्धन्य विद्वान थे) ग्रीकनामों के लिप्यंतरण के संदर्भ में एक बात कही थी अंग्रेजी भाषी तो हर देश के नामों को भ्रष्ट रूप देने में माहिर हैं और भ्रष्टता का अनुसरण करना कोई समझदारी नहीं।" संस्कृत और ग्रीक उच्चारणों की समता और समानांतरता को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा था कि मथुरा' को 'मुद्रा' और मेरठ को 'मीरट' लिखना तथा भारत के प्रेजीडेंट को 'राजेंद्र प्रसाड' कहा जाना क्या आपको बुरा नहीं लगता ? वे स्पष्टतः या तो मूल उच्चारण के अंगीकरण के पक्ष में थे या उसे भारतीय ध्वनि–तंत्र के अनुरूप ढाल कर इस्तेमाल करने के और यही सहज बुद्धि–गम्य, संतुलित, युक्ति युक्त दृष्टि कोण है तथा व्यवहार्य भी है।

20.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 पारिभाषिक शब्द किसे कहते हैं ?

....

....

....

....

....

....

प्र.2 अनुवाद में पारिभाषिक शब्दावली का क्या योगदान रहता हैं ?

....

....

....

....

....

....

प्र.3 अनुवाद और पारिभाषिक शब्द का संबंध स्पष्ट करें ।

....

....

....

....

....

....

20.4 पठनीय पुस्तकें

1 डॉ भोलानाथ तिवारी महेन्द्र चतुर्वेदी, पारिभाषिक शब्दावली कुछ समस्याएं, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली

2 डॉ भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्लीं।

3 डॉ अनुज प्रतापसिहं, प्रयोजन मूलक हिन्दी, नमन प्रकाशन नई दिल्ली।

4 दंगल झाल्टे, प्रयोजन मूलक हिन्दी : सिद्धांत और प्रयोग, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

5 डॉ दिनेश प्रसाद सिंह, प्रयोजन मूलक हिन्दी और पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

6 डॉ नगेंद्र, अनुवाद विज्ञान–सिद्धांत और अनुप्रयोग